THE BOOK WAS DRENCHED

Tight Binding Book

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178535
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. [illegible] Accession No. H3121

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रन्थाङ्क—१३३

आधुनिक
हिन्दी हास्य-व्यंग्य

सम्पादक

केशवचन्द्र वर्मा

VIDYA PRAKASHAN
V.P.
HYDERABAD.

भा र ती य ज्ञा न पी ठ • का शी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६१
मूल्य चार रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

अनुक्रम

●

माई लार्ड	बालमुकुन्द गुप्त	९
वकील	बालकृष्ण भट्ट	१५
दाँत	प्रतापनारायण मिश्र	१९
मै हज्जाम हूँ	शिवपूजन सहाय	२३
अपना परिचय	अन्नपूर्णानन्द	२७
मेरा मकान	गुलाबराय	३५
दवाई	ज़हूरबख़्श	४४
डाँग्डर मोंगाराम	अमृतलाल नागर	५८
दाढ़ी और प्रेम	कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब'	६६
मुग़लोंने सल्तनत बख़्श दी	भगवतीचरण वर्मा	७०
कुछ वर्गवाद	कुट्टिचातन	८०
कालिदासके समधी [?]	अलबर्ट कृष्ण अली	८८
आर्यसमाजी श्वसुर	मोहनलाल गुप्त	९८

धर्म-संकट	शिक्षार्थी	१११
बोर : एक दर्शन	हरिशंकर परसाई	१२०
समयका व्यापार	विजयदेवनारायण साही	१२६
सुकवि सदानन्दके संस्मरण	श्रीलाल शुक्ल	१३९
कौन बड़ा है ?	नामवर सिह	१४६
विज्ञापन युग	मोहन राकेश	१५५
गीतकी खोज	भारतभूषण अग्रवाल	१६२
गुलिवरकी तीसरी यात्रा	डा० धर्मवीर भारती	१७७
चिमिरखीने कहा था	शारदाप्रसाद श्रीवास्तव भुशुंडि	१९४
ग्रीष्म वर्णन	मदन वात्स्यायन	२०६
प्रोफ़ेसर राही : सौन्दर्यके मूडमे	लक्ष्मीकान्त वर्मा	२१९
सुरखाबके पर	शान्ति मेहरोत्रा	२२५
बक़ौल	सैयद शफ़ीउद्दीन	२३४
सम्पादकके नाम एक पत्र	चस्वराचार्य	२४३
मीरा : एक प्रगतिशील कवयित्री	केशवचन्द्र वर्मा	२४७

यह संकलन

- आदरणीय नानाजी
  [यानी 'बच्चन'जी को]

- आदरणीय मामाजी
  [यानी मामा बरेरकरको]

- सहज बन्धु
  [यानी विश्वम्भर'मानव'को]

सौंपना चाहता हूँ।

एक पक्षधर वक्तव्य

•

इस युगमे लेखक होना ही पूर्व जन्मके कुकर्मोका फल है और फिर उसमें हास्य-व्यंग्यका लेखक होना तो पूर्वजन्मके कुकर्मोके साथ निकृष्ट योनिका भी स्पष्ट संकेत देता है। इस देशकी विशिष्ट परम्परा यह रही है कि जो भी बात कहनी हो उसे दाढ़ी लगाकर, मुँह लटकाकर, इस सजधज के साथ कहा जाय कि श्रोता डरके मारे ही सब कुछ सुन ले! जिन लेखकों ने अपना कथ्य प्रस्तुत करनेके लिए हास्य या व्यंग्यका माध्यम चुना उन्हे स्पष्ट ही अपनी इस रुचिका (यानी 'मेक-अप' करके न उतरनेका !) पूरा मूल्य चुकाना पड़ा ! अपने पाठकोंमे हास्य-व्यंग्यका लेखक भले ही सर्वप्रिय रहा हो लेकिन साहित्यके क्षेत्रमे उसे केवल ऐसा हल्का माध्यम अपनानेके कारण सदा सौतेलेकी तरह 'ट्रीट' किया गया है। एक तो ईमानदार-आलोचक यूँ ही सहाराका नखलिस्तान बन गया है पर जो है भी वह सदासे 'दाढ़ीदार चेहरों' का ही वक्तव्य सुननेका आदी रहा है। उसने कभी यह परखनेकी आवश्यकता नहीं समझी कि आजका हास्य-व्यंग्य एक मनोरजनात्मक शैलीमात्र बनकर रह गया है अथवा उसके माध्यमसे जीवनके किसी विशिष्ट संदर्भको पकड़नेका यत्न किया जा रहा है। मानव व्यापारके व्यापक सन्दर्भमे, जहाँ 'कथनी' और 'करनी' का भेद सहज ही व्यंग्यको जन्म देता रहता है, इस माध्यमकी जितनी नई सम्भावनाएँ विकसित हुई है, उसका आकलन साहित्यिक धर्मके अन्तर्गत अभी तक नही आ सका है। जिन्होंने इस सम्बन्धमे कुछ भी लिखा है वह एहसान जताते हुए लिखा है तथा हास्य-लेखकोंसे 'आजन्म-ऋणी' का पट्टा लिखवानेका परोक्ष सकेत भी किया है। कुछ 'आचार्यो' ने इस सम्बन्धमे अपने विचार देते हुए इन लेखकोंके मनमे एक हीन-भावनाको जन्म देनेकी भी चेष्टा की है! हास्य-व्यंग्यके लेखकोंके प्रति इस प्रकारका दृष्टिकोण अपने देश तक ही सीमित नहीं था। अन्य

योरोपीय देशोंमें भी लगभग इसी प्रकारकी समानान्तर स्थितियाँ रही है किन्तु वहाँकी जटिल विषमताओंने 'दाढीदार-चेहरों' के बहुप्रचारित-भ्रमका शीघ्र ही निराकरण कर दिया। हास्य-व्यंग्यकी उत्कृष्टतम रचनाओंके अनेकानेक ख्यातिप्राप्त सकलन इस बातके प्रमाण है कि वे जीवनकी कुरूपताओं को पहिचान रहे है और उन्हे हँसकर सँवारनेके लिए कृतसंकल्प है !

× × ×

'हास्य'के साथ एक कठिनाई रही है। दार्शनिकोंसे लेकर चिकित्सकों तकने इस विषयपर अपने मत प्रकट किये है और कुल मिलाकर केवल एक महान् 'उलझाव' ('कन्फ्यूजन') पैदा करनेके अतिरिक्त कुछ नहीं कर सके हैं ! अरस्तू, बर्गसाँ, फ्रायड, लूकास—जिसे देखिए उसे ही हास्यके बारेमे कुछ-न-कुछ कहना है। इस सम्बन्धमें मानवके शरीर-विज्ञानसे लेकर उसके मस्तिष्क-विज्ञानकी समस्त 'शल्य-क्रियाएँ' हो चुकी हैं, किन्तु जहाँपर हास्य (या व्यंग्य भी !) मानवीय जीवनके जटिल जीवन संदर्भ को नया अर्थबोध देता है, उस प्रक्रियाको साहित्यिक परिप्रेक्ष्यमें रखकर देखनेका यत्न विशेष नहीं हो पाया ! हास्य हमारे संस्कृत व्यक्तित्वकी सहजता, ऋजुता एवं पवित्रताका द्योतक रहा है जो समस्त कलमषको अपनी 'सुरसरिधारा'मे नहलाता हुआ, 'सब कहँ हित' करता हुआ प्रवहमान होता रहता है। विषमताओं, अपूर्णताओं, दुर्बलताओं और अनकही किन्तु स्वीकृत रूढ़ि-परम्पराओंके विरुद्ध अपने समस्त आक्रोशको जो मुसकानोंकी सीमाओंसे बाँधकर नई मानवताके स्वागतके लिए चेतना जाग्रत करते हैं, उन्होंने ही हास्यके शुभ्रतम रूपको पहिचाना है। अत: हास्यका शुद्ध रूप जाननेके लिए उन्हें पढ़ना ही श्रेयस्कर होगा। 'हास्य' और 'व्यंग्य'का शास्त्रीय विवेचन करना न तो यहाँ अभीष्ट ही है और न उसकी आवश्यकता ही !

× × ×

यह संकलन हिन्दी हास्य-व्यंग्यका प्रतिनिधि संकलन होनेका दावा नहीं कर सकता। पहिले तो इसमें बहुतसे ऐसे हास्य-लेखकोंकी रचनाएँ छूट गई

हैं जो हो सकता है कि हिन्दीके ऐतिहासिक-हास्य लेखक हों किन्तु जिनकी रचनाएँ न मुझे 'हास्य'के नामपर आकृष्ट कर सकी हैं और न 'आधुनिकता'के नामपर ही ! दूसरे, इसमें ऐसे बहुतसे लेखक है जिनके नाम 'हास्य-व्यंग्य लेखकोंकी स्वीकृत सूची'मे है ही नहीं। 'वर्गभेद'के नामपर उन्हें 'सीरियस-रस'का लेखक माना जाता रहा है। इन लेखकोंने वस्तुत: जहाँ इस माध्यमको पकड़ा है वहाँ उसकी नई शक्ति विकसित हुई-सी लगती है। अतः मैंने इस संकलनमें उन्हें रखना चाहा है। तीसरे ऐसे भी हैं जिनकी कुछ चीज़ें प्रकाशमें आई थीं किन्तु किन्हीं कारणोंसे जन्मते ही वे विस्मृतिके गर्भमें समा गई। उन्हें फिरसे सामने लानेका मेरा आग्रह स्पष्ट है। संकलित सभी रचनाओंमें वे तत्त्व सहज ही मिल सकेंगे जो आजकी 'आधुनिकता' की उपलब्धि हैं ! इसीलिए 'आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य'मे उनके संकलनकी सार्थकता है। किन्तु फिर भी यह संग्रह प्रतिनिधित्वका दावा नहीं करता। यदि करता भी है तो केवल मेरी 'संकीर्ण-अभिरुचि'का !

× × ×

सात-आठ वर्ष पूर्व संकलन करनेका काम प्रारम्भ किया था केवल 'आनन्द'के लिए। विदेशी संकलनोंको देखकर मोह हुआ कि हिन्दीमें भी इस प्रकारका एक संग्रह हो ! अच्छा तो वह होता कि यह काम किसी दूसरे 'भले मानुस'ने किया होता कि मैं यहाँ तो अपनी 'पक्षधरता'से मुक्ति पा जाता। पर इस युगमें जहाँ सबके पास केवल अपनी ही 'ढपलियाँ' हैं जिनपर केवल उन्हींका राग अलापा जा सकता है वहाँ अपनी 'ढपली'को भी 'ढपली'की संज्ञा दिलानेके लिए यदि शोर मचाना ही पड़े तो मेरा गला सबसे आगे रहेगा। मैं उन समस्त लेखकोंका बहुत आभारी हूँ जिन्होंने इस संकलनमें अपनी रचनाएँ देकर एक 'टोन' बनानेमें मेरी सहायता की है !

प्रयाग
पहिली जनवरी, १९६१

—केशवचन्द्र वर्मा

माई लार्ड

•

बालमुकुन्द गुप्त

माई लार्ड ! लड़कपनमें इस बूढ़े भङ्गड़को बुलबुलका बड़ा चाव था। गाँवमें कितने ही शौक़ीन बुलबुलबाज़ थे। वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे। बालक शिवशम्भु शर्मा बुलबुलें लड़ानेका चाव नहीं रखता था। केवल एक बुलबुलको हाथपर बिठाकर ही प्रसन्न होना चाहता था। पर ब्राह्मण कुमारको बुलबुल कैसे मिले ? पिताको यह भय था कि बालकको बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी। अथवा उसके हाथसे बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा। बहुत अनुरोधसे यदि पिताने किसी मित्रकी बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घण्टेसे अधिक नहीं रहने पाती थी। वह भी पिताकी निगरानीमें !

सरायके भटियारे बुलबुलें पकड़ा करते थे। गाँवके लड़के उनसे दो-दो तीन-तीन पैसेमें ख़रीद लाते थे। पर बालक शिवशम्भु तो ऐसा नहीं कर सकता था। पिताकी आज्ञा बिना वह बुलबुल कैसे लावे और कहाँ रखे? उधर मनमें अपार इच्छा थी कि बुलबुल ज़रूर हाथपर हो। इसीसे उड़ती बुलबुलको देखकर जी फड़क उड़ता था। बुलबुलकी बोली सुनकर आनन्दसे हृदय नृत्य करने लगता था। कैसी-कैसी कल्पनाएँ हृदयमें उठती थीं। उन सब बातोंका अनुभव दूसरोंको क्या होगा, आज यह वही शिवशम्भु है, स्वयं इसीको उस बालकालके अनिर्वचनीय चाव और आनन्दका अनुभव नहीं हो सकता।

बुलबुल पकड़नेकी नाना प्रकारकी कल्पनाएँ मन-ही-मनमें करता हुआ बालक शिवशम्भु सो गया। उसने देखा कि संसार बुलबुल-मय है। सारे गाँवमें बुलबुलें उड़ रही हैं। अपने घरके सामने खेलनेका जो मैदान है, उसमें सैकड़ों बुलबुलें उड़ती फिरती हैं। फिर वह सब ऊँची नहीं उड़ती हैं। उनके बैठनेके अड्डे भी नीचे-नीचे हैं। वह कभी उड़कर इधर जाती हैं और कभी उधर, कभी यहाँ बैठती हैं और कभी वहाँ, कभी स्वयं उड़-कर बालक शिवशम्भुके हाथकी उँगलियोंपर आ बैठती है। शिवशम्भु आनन्दमें मस्त होकर इधर-उधर दौड़ रहा है। उसके दो-तीन साथी भी उसी प्रकार बुलबुलें पकड़ते और छोड़ते इधर-उधर कूदते फिरते हैं।

आज शिवशम्भुकी मनोवाञ्छा पूर्ण हुई। आज उसे बुलबुलोंकी कमी नहीं है। आज उसके खेलनेका मैदान बुलबुलिस्तान बन रहा है। आज शिवशम्भु बुलबुलोंका राजा ही नहीं, महाराजा है। आनन्दका सिलसिला यहीं नहीं टूट गया। शिवशम्भुने देखा कि सामने एक सुन्दर बाग़ है वहींसे सब बुलबुलें उड़कर आती हैं। बालक कूदता हुआ दौड़कर उसमें पहुँचा। देखा, सोनेके पेड़-पत्ते और सोने ही के नाना रङ्गके फूल हैं। उनपर सोने-की बुलबुलें बैठी गाती हैं। और उड़ती-फिरती हैं। वहीं एक सोनेका महल है। उसपर सैकड़ों सुनहरी कलश हैं। उनपर भी बुलबुलें बैठी हैं। बालक

दो-तीन साथियों-सहित महलपर चढ़ गया। उस समय वह सोनेका बगीचा सोनेका महल और बुलबुलों-सहित एक बार उड़ा। सब कुछ आनन्दसे उड़ता था। बालक शिवशम्भु भी दूसरे बालकों-सहित उड़ रहा था। पर यह आमोद बहुत देर तक सुखदायी न हुआ। बुलबुलोंका ख़याल अब बालकके मस्तिष्कसे हटने लगा। उसने सोचा—हैं! मैं कहाँ उड़ा जाता हूँ? माता-पिता कहाँ? मेरा घर कहाँ? इस विचारके आते ही सुख-स्वप्न भंग हुआ। बालक कुलबुलाकर उठ बैठा। देखा और कुछ नहीं, अपना ही घर और अपनी ही चारपाई है। मनोराज्य समाप्त हो गया!

आपने माई लार्ड! जबसे भारतवर्षमें पधारे हैं, बुलबुलोंका स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करनेके योग्य काम भी किया है? खाली अपना ख़याल ही पूरा किया है या यहाँकी प्रजाके लिए भी कुछ कर्त्तव्य पालन किया? एक बार यह बातें बड़ी धीरतासे मनमे विचारिए। आपकी भारत-में स्थितिकी अवधिके पाँच वर्ष पूरे हो गये। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूदमें, मूलधन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिए, नुमायशी कामों-के सिवा कामकी बात आप कौन-सी कर चले हैं और भड़कबाजीके सिवा ड्यूटी और कर्त्तव्यकी ओर आपका इस देशमें आकर कब ध्यान रहा है? इस बारके बजटकी वक्तृता ही आपके कर्त्तव्यकी अन्तिम वक्तृता थी। जरा उसे पढ़ तो जाइए। फिर उसमें आपकी पाँच सालकी किस अच्छी करतूत-का वर्णन है? आप बारम्बार अपने दो अति तुमतराकसे भरे कामोंका वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया-मिमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली-दर्बार। पर ज़रा विचारिए तो यह दोनों काम "शो" हुए या "ड्यूटी"? विक्टोरिया-मिमोरियल हाल चन्द पेट-भरे अमीरोंके एक-दो बार देख आने-की चीज़ होगी। उससे दरिद्रोंका कुछ दुःख घट जावेगा या भारतीय प्रजा-की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे।

अब दरबारकी बात सुनिए कि क्या था। आपके ख़यालसे वह बहुत

बड़ी चीज़ थी। पर भारतवासियोंकी दृष्टिमें वह बुलबुलोंके स्वप्नसे बढ़कर कुछ न था। जहाँ-जहाँसे वह जुलूसके हाथी आये, वहीं-वहीं सब लौट गये। जिस हाथीपर आप सुनहरी झूलें और सोनेका हौदा लगवाकर छत्र-धारणपूर्वक सवार हुए थे, वह अपने क़ीमती असबाब सहित जिसका था, उसके पास चला गया। आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं। दरबारमें जिस सुनहरी सिंहासनपर विराजमान होकर आपने भारतके सब राजा-महाराजाओंकी सलामी ली थी, वह भी वहीं तक था और आप स्वयं भली-भाँति जानते हैं कि वह आपका न था। वह भी जहाँसे आया था, वहीं चला गया। यह सब चीज़ें ख़ाली नुमायशी थीं। भारतवर्षमे वह पहले ही से मौजूद थीं। क्या इन सबसे आपका कुछ गुण प्रकट हुआ? लोग विक्रमको याद करते हैं या उसके सिंहासनको, अकबरको या उसके तख़्तको? शाहजहाँकी इज़्ज़त उसके गुणोंसे थी या तख़्तेताऊससे? आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषके लिए यह सब बातें विचारनेकी हैं।

चीज़ वह बननी चाहिए, जिसका कुछ देर क़याम हो। माता-पिताकी याद आते ही बालक शिवशम्भुका सुख-स्वप्न भंग हो गया। दरबार समाप्त होते ही वह दरबार-भवन, वह एम्पीथियेटर तोड़कर रख देनेकी वस्तु हो गया। उधर बनाना, इधर उखाड़ना पड़ा! नुमायशी चीज़ोंका यही परिणाम है। उसका तितलियोंका-सा जीवन होता है। माई लार्ड! आपने कछाड़के चायवाले साहबोंकी दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहाँ नित्य है और हमलोग कुछ दिनके लिए। आपके वह 'कुछ दिन' बीत गये। अवधि पूरी हो गई। अब यदि कुछ दिन और मिलें, तो वह किसी पुराने पुण्यके बलसे समझिए। उन्हींकी आशापर शिवशम्भु शर्म्मा यह चिट्ठा आपके नाम भेज रहा है, जिससे इन माँगे दिनोंमें तो एक बार आपको अपने कर्त्तव्यका ख़याल हो।

जिस पदपर आप आरूढ़ हुए, वह आपका मौरूसी नहीं। नदी-

नाव संयोगकी भाँति है । आगे भी कुछ आशा नहीं कि इस बार छोड़ने बाद आपका इससे कुछ सम्बन्ध रहे । किन्तु जितने दिन आपके हाथमें शक्ति है, उतने दिन कुछ करनेकी शक्ति भी है । जो आपने दिल्ली आदिमें कर दिखाया, उसमें आपका कुछ भी न था, पर वह सब कर दिखानेकी शक्ति आपमें थी । उसी प्रकार जानेसे पहले, इस देशके लिए कोई असली काम कर जानेकी शक्ति आपमे है । इस देशकी प्रजाके हृदयमें कोई स्मृति-मन्दिर बना जानेकी शक्ति आपमें है । पर यह सब तब हो सकता है कि वैसी स्मृतिकी कुछ क़दर आपके हृदयमें भी हो । स्मरण रहे, धातुकी मूर्तियोंके स्मृति-चिह्नसे एक दिन क़िलेका मैदान भर जायगा । महारानीका स्मृति मन्दिर मैदानकी हवा रोकता था या न रोकता था, पर दूसरोंकी मूर्तियाँ इतनी हो जावेंगी कि पचास-पचास हाथपर हवाको टकराकर चलना पडेगा । जिस देशमे लार्ड लैंसडौनकी मूर्ति बन सकती है, उसमें और किस-किसकी मूर्ति नहीं बन सकती ? माई लार्ड ! क्या आप भी चाहते हैं कि उसके आस-पास आपको भी एक वैसे ही मूर्ति खड़ी हो ?

यह मूर्तियाँ किस प्रकारसे स्मृति-चिह्न है ? इस दरिद्र देशके बहुतसे धनोंकी एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती । एक बार जाकर देखनेसे ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष-पक्षियोंके कुछ देर विश्राम लेनेके अड्डेसे बढ़कर कुछ नहीं है । माई लार्ड ! आपकी मूर्तिकी वहाँ क्या शोभा होगी ? आइए, मूर्तियाँ दिखावें । वह देखिए, एक मूर्ति है, जो क़िलेके मैदानमें नहीं है, पर भारतवासियोंके हृदयमें बनी हुई है । पहचानिए, इस वीर पुरुषने मैदानकी मूर्तिसे इस देशके करोड़ों ग़रीबोंके हृदयमे मूर्ति बनवाना अच्छा समझा । वह लार्ड रिपनकी मूर्ति है और देखिए, एक स्मृति-मन्दिर यह आपके पचास लाखके संगमरमरवालेसे अधिक मज़बूत और सैकड़ों गुना क़ीमती है । यह स्वर्गीया विक्टोरिया महारानीका सन् १८५८ ई० का घोषणा-पत्र है । आपकी यादगार भी यही बन सकती है, यदि इन दो यादगारोंकी आपके जीमें कुछ इज़्ज़त हो ।

मतलब समाप्त हो गया। जो लिखना था, वह लिखा गया। अब खुलासा बात यह है कि एक बार शो और ड्यूटीका मुक़ाबिला कीजिए। शोको शो ही समझिए। शो ड्यूटी नहीं है। माई लार्ड! आपके दिल्ली-दर्बारकी याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जावेगी, जितनी शिवशम्भु शर्माके बालकपनके उस सुख-स्वप्नकी है!

वकील

•

बालकृष्ण भट्ट

यह जानवर ब्रिटिश राज्यके साथ-ही-साथ हिन्दुस्तानमें आया है। पुराने आर्योंके समय इनका कहीं पता भी नहीं लगता। मुसलमानोंकी सल्तनतमें वकील वही कहलाते थे जो छोटे राजा या रईसोंकी ओरसे किसी चक्रवर्ती बड़े राजाके दरबारमें रहा करते थे पर किसी न्यायकर्ताके सामने वादी प्रतिवादीकी ओरसे अबके समान वादानुवादसे उस वकीलको कोई सरोकार न था। वास्तवमें अँग्रेज़ी शासनने इस पेशेको बड़ी उन्नति दिया। सच पूछो तो यह एक परम स्वच्छन्द व्यवसाय है और बड़ी बुद्धिका काम है। कोई ऐसा विषय नहीं है जिसको कभी-न-कभी वकीलको अच्छी तरह जान लेना नहीं पड़ता। कभी इसे राजकीय विषयोंमें घुसना पड़ता

है कभीको वाणिज्य और तिजारतको ऐसा जानना पड़ता है जैसा किसी-ने जन्म-भर वही काम किया हो। कभी ज़मींदारीका रस बिना अंगुल-भर ज़मीन अपने अधिकारमे रखनेके भी उसको चखना या अनुभव करना पड़ता है। इस पेशेकी आमदनीका कुछ ठिकाना नहीं है जिसकी दूकान चल गई लक्ष्मी उसके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है। जिसकी न चली उसको रोज़ रोज़ा रखना पड़ता है रोज़ी उसको दुर्लभ हो जाती है। जिसका काम चलता है नहीं भी चलता उसका वह हाल रहता है जैसा जुआरीका। दाँव पडता गया नया गहनापाती खाना-कपड़ा सभी कुछ बढ़ियेसे-बढ़िया तैयार हो गया। न पड़ा तो पेटमें चूहे उछला किये। किसीको मुँह दिखानेमें शरम होती है। बहुतोंकी समझ है कि इस काममें पुलिसकी नाईं झूठ ज़रूर बोलना पड़ता है। पर यह किसी तरह सच नहीं है। हमने अच्छे-अच्छे तजरिबेकार वकीलोंसे सुना है कि वकीलोंकी विजय नामवरी और प्रतिष्ठा सत्य हीसे होती है। बहुत लोग कहते हैं इस पेशेमें मेहनत नहीं करना पड़ता है यह भी मिथ्या है। मन और मस्तिष्क दोनोंको बड़ा परिश्रम पड़ता है। दूसरेका दुःख अपना समझ उसको दूर करनेके लिए भिड़ जाना पड़ता है। मसल है एक गड़रियेके ऊपर भेड़ चुरानेका अभियोग लगाया गया। गड़रियेके वकील साहबने जजके सामने बहस कर उसे छुड़ा लिया। गड़रिया और उसका मित्र दोनों घर लौटे आते थे मित्रने पूछा—भाई, सच बतलाओ तुमने भेड़ चुराया था या नहीं? उसने कहा—भाई, चुराया तो था पर जबसे वकील साहबकी बात सुनी तबसे मनमे सन्देह है कि हमने सचमुच चुराया था या नही।

वैद्योंने निश्चय किया है वीर्यके क्षयसे भी वाणीका क्षय अधिक निर्बल करता है। सो वकालतके पेशेमें कितना बकना पड़ता है इसकी कोई हद नहीं है तब वकीलोंके परिश्रमका क्या कहना? सच तो यों है कि जिन लोगोंने अदालतकी सैर की है वे जान सकते हैं कि वकील कितनी मेहनत करते हैं और कितना मुअक्किलका उपकार अदालतमें

इनसे होता है। जब दो वकील तीतर-बटेरसे लड़ते हैं तब जो सुननेवाले होते हैं वे प्रायः दो तरहके होते हैं या तो वादीसे उनका सम्बन्ध रहता है या निरे तमाशबीन होते हैं जो केवल दिल-बहलाव और सैरके लिए अदालत गये थे। जो दो फ़रीकमें किसी एकके संबन्धी होते हैं वह अपने वकीलकी तक़रीर सुन प्रसन्न हो जाते हैं। उसके प्रत्येक शब्दको वेद वाक्य मानते है और प्रतिवादीके वकीलकी तक़रीर बड़े क्रोधसे सुनते हैं यहाँ तक कि बस चलै तो मार बैठे। जो सैर-सपाटेके लिए गये हैं वे अचम्भेमें आ जाते हैं कि दोनों देखनेमे प्रतिष्ठित है पर सच्चा दोमें कौन है। फौजदारी हो चाहे दीवानी हो अपने मुअक्किलकी बात पुष्ट कर देना और सत्यको चमका देना वकील हीका काम है। इंगलैंडमे एक राजवधूने राजकुमारपर अभियोग किया। राजवधूके वकीलने अपनी वक्तृतामे कहा हम लोगोंका काम शुद्ध और पवित्र है हमको केवल अपने मुअक्किलोंकी बात सिद्ध करना है। यद्यपि मैं इस समय इस देशके राजकुमारपर अधिक्षेप कर रहा हूँ इसका मुझे कुछ चित्तमें संकोच नहीं है जिसका मैं वकील हूँ उसके फ़ायदेपर मेरी दृष्टि है चाहे देश विरुद्ध हो जाय तो मैं उसे कुछ ख्याल न करूँगा।

सच तो यों है देशके उद्धारक इस समय वे वकील ही देखे जाते हैं। बड़े-बड़े राजकीय विषयोंके समझने और उसपर तर्क-वितर्क, ऊहा-पोह करनेवाले यही तो देखे जाते हैं वैसे ही इनका स्वच्छन्द व्यवसाय भी है कि औरोंके समान ये गवर्नमेट या कर्मचारियोंके बाधित नहीं हो सकते। धैर्य, हिम्मत, साहस ये तीन बातें इस पेशेकी जान है। अच्छा लायक़ वकील चलता-पुरजा वही होगा जिसमें ये तीनों बातें होंगी। गवर्नमेंट क़ानून हिन्दीकी चिन्दी निकालते हुए मुल्ककी तरक्क़ीमें मानो जहर-सा घोल रही है उसका "ऐण्टीडोट" प्रतीकार ये वकील ही है। बड़े-बड़े शहरोंकी शोभा हैं। जो चलते बनै तो औवल दरजेकी प्रतिष्ठाका द्वार है। पर सोच होता है जब ख़याल करो कि बन्दरके हाथमें मणिके समान कितने

इस पेशेको ऐसा बिगाड़ रहे हैं कि वकील झूठको सच, सचको झूठ कर देनेके लिए बदनाम हो रहे है सो न किया जाय तो वकालत आदमीको अपनी इज़्ज़त बनानेके लिए बड़ा उमदा ज़रिया है। वह ज़माना गया जब वकीलोंकी तवायफ़के साथ तुलना दी जाती थी। अब इस समय सभ्य सुशिक्षित जिन्होंने अंग्रेज़ीकी उमदा तालीम पाई है उनको अपने उत्तम गुण कौशल्य, संजीदगी, सच्चाई, ईमानदारीके प्रगट करनेको यह काम एक मात्र सहारा है और अंग्रेज़ी राज्यमें बड़ी उत्तम जीविका है चलते बन पड़े तो। इत्यादि।

दाँत

•

प्रतापनारायण मिश्र

इस दो अक्षरके शब्द तथा इन थोड़ी-सी छोटी-छोटी हड्डियोंमें भी उस चतुर कारीगरने यह कौशल दिखलाया है कि किसके मुँहमें दाँत हैं जो पूरा-पूरा वर्णन कर सके। मुखकी सारी शोभा और यावत् भोज्य पदार्थोंका स्वाद इन्हींपर निर्भर है। कवियोंने अलक (ज़ुल्फ), भ्रौं (भौं) तथा बरुनी आदिकी छबि लिखनेमें बहुत-बहुत रीतिसे बालकी खाल निकाली है, पर सच पूछिए तो इन्हींकी शोभासे सबकी शोभा है। जब दातोंके बिना पुपला-सा मुँह निकल आता है, और चिबुक (ठोढ़ी) एवं नासिका एकमें मिल जाती हैं उस समय सारी सुघराई मिट्टीमें मिल जात है।

कवियोंने इसकी उपमा हीरा, मोती, माणिकसे दी है। वह बहुत ठीक है, वरंच यह अवयव कथित वस्तुओंसे भी अधिक मोलके है। यह वह अंग है जिसमें पाकशास्त्रके छहों रस एवं काव्यशास्त्रके नवों रसका आधार है। खानेकौ मज़ा इन्हींसे है। इस बातका अनुभव यदि आपको न हो तो किसी बुड्ढेसे पूछ देखिए, सिवाय सतुआ चाटनेके और रोटीको दूधमे तथा दालमे भिगोंके गलेके नीचे उतार, देनेके दुनिया-भरकी चीज़ोंके लिए तरस हीके रह जाता होगा। रहे कविताके नौ रस, सो उनका दिग्दर्शन मात्र हमसे सुन लीजिए :—

शृङ्गारका तो कहना ही क्या है। अहा हा ! पान-रङ्ग-रँगे अथवा योंही चमकदार चटकीले दाँत जिस समय बातें करने तथा हँसनेमे दृष्टि आते है उस समय नयन और मन इतने प्रमुदित हो जाते है कि जिनका वर्णन गूगेको मिठाई है। हास्य रसका तो पूर्ण रूप ही नहीं जमता जब तक हँसते-हँसते दाँत न निकल पड़ें। करुण और रौद्र रसमें दुःख तथा क्रोधके मारे दाँत अपने होंठ चबानेके काम आते है एवं अपनी दीनता दिखाके दूसरेको करुणा उपजानेमे दाँत दिखाये जाते है। रिसमे भी दाँत पीसे जाते हैं। सब प्रकारके वीर रसमें भी सावधानीसे शत्रुकी सैन्य अथवा दुःखियोंके दैन्य अथवा सत्कीर्तिकी चाटपर दाँत लगा रहता है। भयानक रसके लिए सिंह-व्याघ्रादिके दाँतोंका ध्यान कर लीजिए, पर रातको नहीं, नहीं तो सोतेसे चौंक भागेंगे। बीभत्स रसका प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो किसी तिब्बती साधुके दाँत देख लीजिए, जिनकी छोटी-सी स्तुति यह है कि मैलके मारे पैसा चिपक जाता है। अद्भुत रसमें तो सभी आश्चर्यकी बात देख-सुनके दाँत बाय, मुँह फैलायके हक्का-बक्का रह जाते है। शान्त रसके उत्पादनार्थ श्री शङ्कराचार्य स्वामीका यह महामंत्र है—

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।

सच है, जब किसी कामके न रहें तब पूछे कौन ?

दाँत खियाने खुर घिसे, पीठ बोझ नहिं लेइ।

जिस समय मृत्युकी दाढ़के बीच बैठे है, जलके कछुए, मछली, स्थलके कौआ, कुत्ता आदि दाँत पैने कर रहे है, उस समयमें भी यदि सत्चित्तमें भगवान्का भजन न किया तो क्या किया ? आपकी हड्डियाँ हाथीके दाँत तो हुई नहीं कि मरनेपर भी किसीके काम आवेंगी । जीते जी संसारमे कुछ परमार्थ बना लीजिए, यही बुद्धिमानी है । देखिए, आपके दाँत ही यह शिक्षा दे रहे हैं कि जब तक हम अपने स्थान, अपनी जाति (दन्तावली) और अपने काममे दृढ़ है तभी तक हमारी प्रतिष्ठा है । यहाँ तक कि बड़े-बड़े कवि हमारी प्रशंसा करते है, बड़े-बड़े सुन्दर मुखारविन्दोंपर हमारी मोहर 'छाप' रहती है । पर मुखसे बाहर होते ही हम एक अपावन, घृणित और फेंकने योग्य हड्डी हो जाते हैं—

"मुखमें मानिक सम दशन बाहर निकसत हाड़"

हम जानते है कि नित्य यह देखके भी आप अपने मुख्य देश भारत और अपने मुख्य सजातीय हिन्दू-मुसलमानोंका साथ तन-मन-धन और प्रान-पनसे क्यों नहीं देते ? याद रखिए—

'स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते ,
दन्ताः केशा नखा नराः ।'

हाँ, यदि आप इसका यह अर्थ समझें कि कभी किसी दशामें हिन्दुस्तान छोड़के विलायत जाना स्थान-भ्रष्टता है तो यह आपकी भूल है । हँसनेके समय मुँहसे दाँतोंका निकल पड़ना नहीं कहलाता, वरञ्च एक प्रकारकी शोभा होती है । ऐसे ही आप स्वदेश-चिन्ताके लिए कुछ काल देशान्तरमे रह आयें तो आपकी बड़ाई है । पर हाँ, यदि वहाँ जाके यहाँकी ममता ही छोड़ दीजिए तो आपका जीवन उन दाँतोंके समान है जो होठ या गाल कट जानेसे अथवा किसी कारण-विशेषसे मुँहके बाहर रह जाते हैं और सारी शोभा खोके भेड़िये जैसे दाँत दिखाई देते हैं । क्यों नहीं, गाल और होंठ दाँतोंका परदा है । जिसके परदा न रहा, अर्थात् स्वजातित्वकी

गैरतदारी न रही, उसकी निर्लज्ज ज़िंदगी व्यर्थ है। कभी आपको दाढ़की पीड़ा हुई होगी तो अवश्य यह जी चाहा होगा कि इसे उखड़वा डालें तो अच्छा है। ऐसे ही हम उन स्वार्थके अन्धोंके हकमें मानते हैं जो रहें हमारे साथ, बनें हमारे ही देश-भाई, पर सदा हमारे देश-जातिके अहित हीमें तत्पर रहते हैं! परमेश्वर उन्हें या तो सुमति दे या सत्यानाश करे। उनके होनेका हमें कौन सुख? हम तो उनकी जैजैकार मनावेंगे जो अपने देशवासियोंसे दाँत काटी रोटीका बर्ताव (सच्ची गहरी प्रीति) रखते हैं। परमात्मा करे कि हर हिन्दू-मुसलमानका देशहितके लिए चावके साथ दाँतों पसीना आता रहे। हमसे बहुत कुछ नहीं हो सकता तो यही सिद्धान्त कर रक्खा है कि—

'कायर कपूत कहाय,
दाँत दिखाय भारत तम हरौ'

कोई हमारे लेख देख दाँतों तले उँगली दबाके सूझ-बूझकी तारीफ़ करे, अथवा दाँत बायके रह जाय, या अरसिकतावश यह कह दे कि कहाँकी दाँताकिलकिल लगाई है तो इन बातोंकी हमें परवाह नहीं है। हमारा दाँत जिस ओर लगा है, वह लगा रहेगा, औरोंकी दाँतकटाकटसे हमको क्या?

× × ×

अतः हम इस दन्तकथांको केवल इतने उपदेशपर समाप्त करते है कि आज हमारे देशके दिन गिरे हुए हैं। अतः हमें योग्य है कि जैसे बत्तीस दाँतोंके बीच जीभ रहती है वैसे रहें, और अपने देशकी भलाईके लिए किसीके आगे दाँतोंमें तिनका दबाने तक मे लज्जित न हों तथा यह भी ध्यान रक्खें कि हर दुनियादारकी बातें विश्वास-योग्य नहीं है। हाथीके दाँत खानेके और होते हैं दिखानेके और।

मैं हज़ाम हूँ

●

शिवपूजन सहाय

मैं हज्जाम हूँ। अच्छी हजामत बनाता हूँ। जी लगाकर बना दूँ तो केश पखवारे तक न पनपें—रोएँ भी न अंकुरें। मगर जी लगता नहीं जब तक मेरे छुरेको छप्पन छुरा कोई छैल-छबीला नहीं मिलता। मिल गया तो छुरा रसे-रसे चलने लगता है। अगर संयोगसे कोई गंडपाताली मिल गया तो छुरा छूटकर चल पड़ता है। इसलिए कपोल पाताली मेरे ढिग फटकते नही। मेरी उन्मादिनी उँगलियाँ जब गालोंको गुदगुदाने लगती हैं तो रसज्ञोंको नींद आने लगती है।

नीति शास्त्रानुसार शस्त्रधारी कभी विश्वसनीय नहीं होता, किन्तु मेरे शस्त्र संज्जित लोखरको देखकर भी बड़े-बड़े राजा—रईस और सेठ-साहू-

कार बड़ी आस्थाके साथ मेरे छुरेके आगे गर्दन झुका देते है। जो सारी दुनियाको उलटे छुरेसे मूड़ते है उन्हे मैं सीधे छुरेसे ही मूड डालता हूँ। मनमाने पैसे भी गिना लेता हूँ और मनमना कर ठोठ भी मसल देता हूँ।

किसी सशस्त्र व्यक्तिके हाथमे कोई विश्वास-पूर्वक अपना सिर नही सौंपता, पर मेरे 'विश्वसनीयमायुध'के सामने सबके-सब स्वतः आत्म-समर्पण कर देते हैं—मेरे स्पर्श सुखावह छुरेको अपना गला सौंपनेमें कोई कभी हिचकता नहीं, यहाँ तक कि मेरी इच्छाके विरुद्ध कोई रंच-मात्र भी टससे मस नहीं होता।

जिस समय मन चाहा व्यक्ति मिल जाता है उस समय मेरी नृत्य-शीला उँगलियाँ मन्थर गतिसे अपना लोच दिखाने लगती है। मेरी अँगुलि-अँगनाओंके अभिनयके लिए कमनीय कपोल ही रमणीय रंगमंच है। मेरी भाव-भंगिमा भरी कनक-शलाका-सी उँगलियोंके लिए चित्त चोर चिबुक ही 'सुचिर चिर कसौटी' है।

किन्तु मैं कपोलानन्दी होकर भी सर्वथा निर्लिप्त और अनासक्त हूँ, इसलिए मैं प्रमदाओंका प्रतिद्वन्द्वी, नही कहला सकता। हाँ, ठग और चोरके बीचका ठाकुर अवश्य हूँ, इसलिए ठसकके साथ कहता हूँ कि ठाकुरका भोग कभी जूठा नही कहलाता, प्रसाद कहा जाता है। न भौंरा फूलको जूठा करता है, न चींटी चीनीको। यदि सोच-समझकर देखिए तो मै ललनागणकी सुख-वृद्धिका साधक हूँ।

याद रहे मैं हाथरसका हज्जाम हूँ। मगर रहता हूँ बनारसमें। ब्रज-बसिया और बनरसिया होनेके कारण ही तो रसिया हूँ। सचमुच मेरे हाथोंमें ही रस है। टटका-टटका टे दूँ तो टकटकी बँध जाय और टटोल-टटोल टीप दूँ तो बिरहीकी हराम नींद भी चुपकेसे चली आवे।

मैंने जैसे स्पृहणीय श्वाँस सौरभोंका रसास्वादन किया है वैसे तो बहुतोंको नसीब न होंगे। जिन माननी मूँछों तक बड़े-बड़ोंके हाथ नहीं

पहुँच सकते उनको कुकुर पूँछ बनानेके लिए मेरे हाथ बड़े कौशलके साथ सरसते-विलसते हैं। हाँ, जनाब, लौखर लिये फिरनेके कारण मुझे निरा लोफर ही न समझिए।

नेत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और त्वगिन्द्रिय—तीनोंका (त्रिविध) सुख मैं एक साथ ही लूटता हूँ, इसलिए मैं सौभाग्य-शाली भी किसीसे कम नहीं हूँ। मेरी अनुभूतियाँ यदि किसी कविके हाथ लग जायँ तो उसमें बिहारी लालकी आत्मा चहक उठे।

'आदमीमे नौआ, पंछीमें कौआ'—इस प्रसिद्ध कहावतके अनुसार मेरी धूर्तता भी जग-जाहिर है। इसलिए वर्तमान युगमें सर्वत्र ही मेरी जातिका बोल-बाला है। सभी देशों और सभी क्षेत्रोंमे मेरी जातिके लोग पाये जाते है। भले ही वे जन्मना हज्जाम न हों पर कर्मणा तो निश्चय ही हैं। मेरे छुरेसे घुटी हुई दाढ़ी तो पनपती भी है, पर कर्मणा हज्जाम—क्षौर व्यवसायी 'मुण्डन मर्चेण्ट'—जिसकी हजामत बनाते हैं उसकी चाँद गंजी कर डालते हैं : एक-एक खूँटी उखाड़ लेते हैं। फिर उसके सफ़ाचट चेहरेपर बाल उगते ही नहीं। मानव-जातिके भाग्यके हरे-भरे क्षेत्रको चर जानेवाले ये 'वैशाखनन्दन वस्तुतः दूर्वाकन्दनिकन्दन' है। इनकी चरी हुई खेती कभी फलती नहीं, इनके मूड़े हुए सिर सदाके लिए 'लुण्ड मुण्ड' बन जाते हैं।

आज-कल हजामतका पेशा बहुतोंने अपना लिया है। आँखें खोलकर चारों ओर देख लीजिए। यदि कोई नई उमंगका नेता है तो निस्सन्देह नापित भी है, क्योंकि जनताकी हजामत बनाना ही उसका धंधा रोजगार है। दुनियाकी सरकारें प्रजाकी हज़ामत बनाती हैं। निरंकुश लेखक भाषाकी हजामत बनाता है। स्वयंभू कवि छन्दोंकी, डाक्टर मरीज़ोंकी, वकील मुवक्किलोंकी, टिकट चेकर मुसाफ़िरोंकी, दुकानदार ग्राहकोंकी, पण्डा तीर्थ-यात्रियोंको, समालोचक लेखकोंकी, सम्पादक पुरस्कारकी, प्रकाशक पाठकोंकी और अनुवादक मूल भावोंकी हजामत बनाता है। कहाँ तक

गिनाऊँ, सब तो हज्जाम ही हज्जाम हैं, तब भी विज्ञापनदाताओंसे बढकर होशियार हज्जाम नहीं नजर आता। इन लोगोंने कचहरीके अमलोंके भी कान काट लिये हैं। हाँ, ऊँचे इजलासकी कुर्सी तोड़नेवाले भी अब न्याय-को खूब मूड़ रहे हैं—निगोड़ी तोपें भी क़िलोंकी वैसी कपालक्रिया नहीं कर सकतीं। ये लोग अफ़गानोंके हज्जाम है। स्वनाम धन्य बाबू रामचंद्र वर्माने अपनी अच्छी-हिन्दी पुस्तकमें एक स्थलपर लिखा है कि अफ़गान लोग हज्जामको सरतराश कहते है और उनके यहाँ हज्जामकी दुकानोंकी तख्तियोंपर 'हेड कटर' लिखा रहता है।

बलिहारी है शेविंग स्टिक और ब्लेडके आविष्कर्ताकी, जिसने सभी सुशिक्षितोंको हज्जाम बना दिया है। इससे मेरी जातकी रोजीमें खलल जरूर पड़ा है, लेकिन एक काम बड़े मजेका हुआ है। कामिनियाँ विशेष लाभान्वित हुई हैं—वे ही असीसती होंगी आविष्कर्ताको। मूँछ तो अब मर्दानगीकी पूँछ मात्र है। इस युगमें भला मूँछकी मर्यादा ही क्या है? जब थी तब थी। अठारहवीं सदीके आरम्भमे मरमी कविने ठीक कहा था—

जिन मुच्छन धरि हाथ, कछु जग सुजस न लीनों।
जिन मुच्छन धरि हाथ, कछू पर काज न कीनों॥
जिन मुच्छन धरि हाथ, दीन लखि दया न आनी।
जिन मुच्छन धरि हाथ, कबौं पर पीर न जानी॥
अब मुच्छ नहीं वह पुच्छ सम, कवि मरमी उर आनिए।
चित दया दान सनमान नहिं, मुच्छ न तेहि मुख जानिए॥

अपना परिचय

•

अन्नपूर्णानन्द

आरम्भसे ही आरम्भ करता हूँ।

मेरी खोपड़ी मेरे शरीरका वह उन्नत भाग है जो अक्सर चौखटोंसे भिड़ा करता है।

इसी शिखरपर एक शिखा है जिसकी चकबन्दी गायके खुरको परकारसे नापकर की गयी थी।

लोगोंका कहना है कि मेरी इस शिखासे मूर्खता टपकती है। लेकिन मेरा कहना है कि मूर्खता भी मूर्खता करती है जो टपकनेके इतने स्थान छोड़ चुटियासे टपकती है।

कुछ साल पहले मैं कुल डेढ़ हड्डीका एक दमटुट और मरजीवा आदमी

था। पूरा व्याधि-मन्दिरम् था। हूल और शूलसे चूल-चूल ढीला पड़ गया था। माजून और मात्राके बलपर शरीर यात्रा हो रही थी।

, उन्ही दिनोंको बात थी कि एक रिक्ताका विज्ञापन देखकर मैंने अरज़ी भेजी और इण्टरव्यूके लिए बुला लिया गया। पर दफ़्तरका बड़ा बाबू मुझे देखते ही चीख़ पड़ा—'अजी तुम्हारा चेहरा तो बिलकुल चमरखसा है।'

'यह एक रही।' मै कुड़बुड़ाया तो, पर बोला नही। उसने फिर कहा 'और तुम्हारी सूरत भी क्या खूब चमरपिलई-सी है।'

अब अति हो रही थी। मै कुछ हूँ टूँ करता पर वह बोलता गया—'नहीं, तुम मेरे मसरफके नही हो। तुम्हारी शकल कहती है कि तुम अनेक लतों और इल्लतोके शिकार हो।'

"जी हाँ, हूँ तो।"—मैने कुढ़कर कहा—"गाँजा पीता हूँ, गँजीफा खेलता हूँ।"

"नहीं, कुश्ता खाया करो, कुश्ती लड़ा करो।" उसने तड़ाकसे उत्तर दिया। था वह एक नम्बरका चटबोल आदमी।

ताव-पेंच खाता मैं उस दिन घर लौटा। उसकी चमरपिलईवाली बात मुझे लग गयी थी। पाठा बननेकी धुन मनमे हवा बाँध रही थी। यह तो मेरा देखा हुआ था कि मिक्सचरसे शरीरका शनिश्चर नहीं जाता, और न चिरायतासे चिरायुता मिलती है। काँटे-से-काँटा तो निकल जाता है लेकिन अरिष्ट-से-अरिष्ट नहीं निकलता। निदान मैंने उसी दिनसे डण्ड पेलना शुरू किया। अब मैं चीरे-चार बघारे पाँच हूँ।

पर मेरी पढ़ाई-लिखाई विशेष लिखने-पढ़नेकी वस्तु नहीं है। बड़ोंने, बूढ़ोंने, लाख सर मारा लेकिन मेरी शिक्षा-दीक्षा अस्ति और नास्तिके बीचकी क्षीण रेखा सदृश रह गयी।

एक तरहसे अच्छा ही हुआ। अधिक पढ़-लिखकर फाजिल होता तो जा दिल्लीमें काजी हो जाता। यों अपनेको और किसी अर्थका न पाकर मैं लेखक हो गया।

और लेखक अपनी लेखनीसे अपने कान खुजलाते हैं, मैं अपनी लेखनी-से औरोंके दिल गुदगुदाता हूँ।

पर इसी लेखनीसे, जवान था तो मैंने पापड़ बेला, अधेड़ हूँ, तो चौका लगा रहा हूँ, वृद्ध हूँगा तो शायद रहीमकी तरह भाड़ भी झोकूँ। सबसे अच्छा बचपन था जब लेखनीसे बस जाँघियोंमें इज़ारबन्द डालना जानता था।

एक बार बौखलाकर मैंने अपनी इसी लेखनीसे कितने गुरुओंको गोरू बना दिया। लोग तब खड़बड़ाकर कहने लगे कि साहित्य-गगनमे यह झाड़ू तारा कहाँसे उदय हुआ।

यों तो मैं सभी अलंकारोंको अपनी लेखनीकी पकड़मे समेट लेता हूँ पर उपमा और उत्प्रेक्षाका मुझे पूरा प्रेत ही समझिए। ऐसे-जैसेका मैं ऐसा अभ्यासी हूँ जैसे माछेर-झोलके बंगवासी। मेर लिए कोई चीज़ सुन्दर है तो काश्मीरकी झीलकी तरह, अनिवार्य है तो मुकदमेमें वकीलकी तरह, प्रिय हैं तो लड़कोंको तातीलकी तरह, आवश्यक है तो चमरौधेमें कीलकी तरह।

लेखकोंमें मैं बूढ़े विधाताको अपना आदर्श मानता हूँ जो एक बार ग़लत-सही जैसा कुछ लिख मारता है, उसके संशोधन-परिवर्तनका फिर नाम नहीं लेता।

अपनी क़लमका मैं ऐसा कलन्दर हूँ कि उसे जैसे चाहूँ नचाऊँ, पर वह खिलखिलाती अगर है तो दूसरोंकी खिल्ली उड़ानेमें। दूसरोंके गुण देखनेमें अन्धा हूँ, दूसरोंके गुण गानेमें वह गूँगी है।

पर मैं खबरदार रहता हूँ कि खुद मेरी खिल्ली कोई न उड़ाये। यही

कारण है कि साहित्यके क्षेत्रमें एक समालोचकोंको छोड़, मेरी हर तरहके लोगोंसे पटरी बैठ जाती है। मेरी समझमे आज तक यह न आया कि साहित्य उपवनमे इन निमकौड़ी बटोरनेवालोंकी आखिर क्या आवश्यकता थी'। मेरी पक्की धारणा है कि नितान्त पञ्चकल्यानी लोग ही साहित्य-सेवाके नामपर यह पुलिस-वृत्ति अख्तियार करते होंगे।

मैं अपने हृदयके पेंदेसे उन बखेड़ियोंकी भर्त्सना करूँगा जो हिन्दी-मे व्याकरण बनाते चले जा रहे हैं। आप अगर चाहते है कि साहित्य खुलकर साँस ले तो व्याकरण रूपी बोआ-नागकी जकड़-बन्दीसे उसे बचाइए। आज व्याकरण बनाइएगा, कल जेल बनाइएगा, परसों व्याकरण न माननेवालोंको उन्हीं जेलोमे ठूँस दिया जायगा। व्याकरणका ज्ञान सच पूछिए तो, केवल वहीं तक अपेक्षित है जहाँ तक हम सन्तरीको सन्तरेका स्त्रीलिङ्ग न समझें, रबड़को रबड़ीका पुल्लिङ्ग न समझें, और भावजको अगर भाभी पुकारते हों तो बड़े भाईको भाभा न पुकारें।

मेरी इन बातोंको पढ़कर मुझे कोई बौड़म पुकारे तो मै उसे क्षमा कर दूँगा, जैसे सूर्य उन लोगोंको क्षमा कर देता है जो उसे पतंग पुकारते है।

मेरा घरेलू जीवन इस अर्थमे बड़ा सुखमय है कि घरकी मालकिन महोदया मुझे काठ-कबाड़ समझकर अधिक छेड़ती नहीं। हाँ, यह ज़रूर है कि मेरा पति-परमेश्वर-पन वे बहुत पनपने नहीं देतीं।

पर इसका अर्थ नहीं कि हम दोकी दुनियामें कहीं कोई दरार है। जीवनकी एकरसताको दूर करनेके लिए कभी कोई झड़प हो जाय—वह दूसरी बात है। यों हम दोनों गणितको व्यर्थ करते हुए १ + १ = १ ही है।

अपने दीर्घ दाम्पत्यके दौरानमे सदा गाँठ बाँध रखनेकी जो बात मैंने सीखी है वह यह है कि यदि आप चाहते हों कि आपकी स्त्री ज्वालामुखी न बने तो उसे आप फुलझड़ी बननेसे रोकें।

मेरे दूषणोंका दफ़्तर खोलकर जब वे मेरे ऊपर स्फुलिंग बरसाने लगती है तब मै खीस काढ़कर खगोल निहारने लगता हूँ।

मैं पूछता हूँ कि उन्हींकी तरह और जो लोग मेरी चिन्दी निकालते हैं वे यह क्यों नहीं सोचते कि मेरे दो ही तो हाथ हैं, उनसे मै क्या-क्या करूँ। एकसे करम ठोंकता हूँ, दूसरेके मुँहकी मक्खी पुकारता हूँ। बाक़ी काम हमारे चतुर्भुजी भगवान् हमारे लिए करें न। उन्हे हमने चार हाथ दे किसलिए रक्खे है ?

पर सच यह नही है कि मैं कुछ करता नहीं। राष्ट्र-सेवा मैं बखूबी कर लेता हूँ। अभी कल ही मैंने कई प्रकारसे राष्ट्र-सेवा की। राष्ट्रीयताके कई विरोधियोका मन-ही-मन विरोध किया, और राष्ट्रीयतापर एक लेख पढता-पढ़ता सो गया।

राष्ट्र-सेवाके अनेक रूप हो सकते है। मैं तो बैठकमें राष्ट्रनायकोंके चित्र लटका लेना भी कम राष्ट्रीयता नही मानता। एक बार एक बड़े नेताके साथ एक ही शतरंजीपर बैठनेका एक संयोग प्राप्त हुआ। उसके कई दिन बाद तक मुझे अपने मस्तकके चारों ओर एक तेजोमण्डल आभास मिलता रहा। बिना राष्ट्र-सेवाकी भावनाके यह कहाँ सम्भव था ?

पुरुष पुरातनकी वधूने मेरी ड्योढ़ी कभी पार नहीं की। इसलिए अपनी शानको मैं पुरवटके धानसे अधिक नहीं समझता। कोई कान पकड़कर थोड़ी देरके लिए हाथी-घोड़ा-जीनपर बिठा भी दे तो मैं अपने करवा और कौपीनको न भूलूँ।

भूख अच्छी लगती है, माँड़ भी बसौंधीका मजा दे जाता है। आज खाता हूँ कलको झंखता नहीं। चरबी इतनी चढ़ती नहीं कि सुबाला और दुशालाका प्रयोग किसी जाड़ेमें आजमानेकी सोचूँ। बाज़ार यहाँ पहलेका लुट चुका है, रमैयाकी दुलहिन अब क्या लूटेगी ?

नीद भी अच्छी आती है, कुकुरझपकी नहीं बल्कि घोड़ा बेच। फर्श-

पर एक टुकड़ा टाट हो तो छप्पर-खटकी बाट न देखूँगा। लोगोंका कहना है कि नींदमें जो मैं संज्ञाहीन होता हूँ सो उसकी संज्ञा है कुम्भकर्णिका।

भोजनके रसोंमे मुझे मधुर अतीव प्रिय है। केवल इस मिष्टान्नपर मै महीनों आनन्दपूर्वक टेर ले जाऊँ। अवश्य ही यह उत्कट संस्कार पूर्वजन्मोंमें बारम्बार ब्राह्मणका चोला पानेसे प्राप्त हुआ होगा। जो हो, मीठा विषयक मेरा प्रेम कमज़ोरीकी हदको भी पार कर गया है। एक तबलीगी मुल्लाने मुझे मुसल्लम-ईमान बनानेके लिए अनेक प्रलोभनोंमें एक यह भी प्रलोभन दिया था कि मरोगे तो तुम्हे शक्करके बोरेमें दफ़नाऊँगा।

रहनी अपनी रहस्योंमे रहित और असाधारण रूपसे साधारण है। अपनेंमे कोई विशेषता नहीं है। यही अपनी विशेषता है। जैसे बन्दरको आदी है, भैसको वीन है, खरको आखर है, वैसे ही अपने लिए साहित्य संगीत और कला है।

पर फुटकर बातोंका ज्ञान मेरा बहुत है। उसमें कोई डाड़ी नहीं मार सकता। मैं जानता हूँ कि लाल स्याही और नमकीन मिठाई कहना ग़लत है। मै जानता हूँ कि बालूसे तेल न निकले पर मिट्टीका तेल बराबर निकलता है। मै जानता हूँ कि तसली धातुकी होती है और तसल्ली बातकी। मैं जानता हूँ कि मैं दिया जलाऊँगा, लम्प भी जलाऊँगा, पर दोनों मिलाकर दम्प नहीं जलाऊँगा। मै जानता हूँ कि मेरे पुरखेने किसी पेशवाको पेशराज पुकारा होता तो क्या होता और मै किसी मल्लको मल्लू पुकारूँगा तो क्या होगा?

दुनियादारीमें, दुनियादारोकी दुनियामें मैं काफ़ी रम चुका हूँ। सहस्रों बातें मैंने देखी हैं, सुनी हैं, समझी हैं और मनोनोट की हैं। अनुभवकी आँचपर मैं पाकठ हो चुका हूँ। घाघकी, सन्त और चण्टकी पहचान कर लेता हूँ। साँटीसे काम नहीं चलता तो बेंवड़ा उठाता हूँ। व्यवहारकी शिक्षा मुझे देना साँभरके इलाकेमें नमक भेजना है।

अद्धा पेटमें हो और अधेली टेटमें हो तो राजाधिराजाओंको भी अपने

पैरोंका धोवन समझूँ। कोई रघुवंशी, सोमवंशी, यदुवंशी रहा हो पर मैं गोवशी हूँ। मेरा आदर्श वह सन्तोष है जो किसी बैलको पूरा भूसा पाने-पर प्राप्त होता है।

एक बार एक दुर्घटना हुई। किसी निराहार व्रतके पारणके अवसर-पर ठाकुरजीको भोग लगाते समय, मन्त्रोच्चारणके लिए मैंने मुँह जो खोला तो नैवेद्यकी थालीमे ही मेरी राल चू पड़ी। तबसे मै व्रत-उपवास भी कभी नहीं करता।

यों अपने धर्म-कर्मसे मैं चौकस रहता हूँ पर दान-दक्षिणाकी विशेष समायी अपनी थोडी कमाईमें है नही। हाँ, एक काम ज़रूर करता हूँ, अपने कर्ज सदैव कृष्णार्पण कर दिया करता हूँ।

और किसीने भगवान्‌को न देखा हो, पर मैंने देखा है। अन्तिम बार जब मेरा उसका साक्षात् हुआ था, वह मेरी आशाओं और अभिलाषाओं-की समाधिपर सुखासन लगाकर बैठा हुआ था। मुझे देखकर उसके सुचिक्कण भालस्थलपर जो सिलवटें प्रकट हुई वे ऐसी कान्त और कमनीय थी जैसे रच-पचकर लगाया हुआ खौर। आमर्ष आयत और आरक्त उसके विलोचन यों खिल रहे थे जैसे अरुणारविन्दके सुन्दर सुरंग दल।

उसके एक हाथकी तर्जनी हेम-दण्डिका-सी मेरी ओर विचलित हो रही थी। कंज कोश-सी बद्ध, दूसरे हाथकी मुष्टिका मेरी ही दिशामें भर-पूर तनी हुई थी। तीसरा हाथ महामनोहारी अर्द्धचन्द्र मुद्रामें मेरे नटवेकी ओर उठा हुआ था। चौथेमें तड़ित्-प्रभायुक्त वह दुरमुस विराजमान था जिससे कई बार कूट-पीटकर वह मुझे मटियामेट कर चुका है।

उसके सब हाथ इस प्रकार फँसे देख मुझे प्रसन्नता हुई कि इस बार भी वह, सदाकी भाँति, झट अपने कानोंमें उँगली तो नहीं डाल सकेगा, और मेरी छोटी-सी प्रार्थना अब उनमें पड़ तो रहेगी। फिर मानना न मानना उसकी मरजी।

अतः मैने, तुरन्त बद्धांजलि होकर, महाकवि चच्चाके शब्दोंमें कह् डाला—

है जलपान समान
तुम्हें हलाहल पान प्रभु।
किन्तु चचा वरदान
चाहत भोजन रुचिर चिर।
सपथ चचाकी सांच
निहचै तारहु नाथ मोंहि।
पै लंघनकी आँच
भव-बन्धन जिन जारियो॥

मेरा मकान

•

गुलाबराय

मुसलमानोंके यहाँ मुसव्वरी करना गुनाह समझा जाता है, क्योंकि चित्रकार एक प्रकारसे ख़ुदाकी बराबरी करनेकी स्पर्द्धा रखता है। शायद इसीलिए अल्लाहताला लेखकोंसे भी नाराज़ रहते हैं क्योंकि वे भी अपने रचनात्मक कार्य द्वारा परमात्माकी होड़ करते हैं। कवियोंने अपनी रचनाको एकदम परमात्माकी सृष्टिसे भी बढ़ा हुआ बतला दिया है। काव्य प्रकाशके कर्ता मम्मटाचार्यने कहा है कि कविकी भारती विधिकी सृष्टिसे परे और शुद्ध आह्लादसे बनी हुई है। भगवान्‌की सृष्टिमें तो शुद्ध आह्लाद बिजलीके प्रकाशमें भी खोजनेपर बड़ी मुश्किलसे मिलता है किन्तु लेखक अपनी कल्पनाकी उड़ानमें उसे सुलभ बना देते हैं। फिर परमात्मा

लेखकोंसे क्यों न रूठे ? यदि लेखक लोग शब्दोंके महल और हवाई क़िलोंके अलावा ईंट-चूनेके मकान बनानेका भी साहस करें तो नीम चढ़े करेलेकी बात हो जाय। ईश्वर मनुष्यकी इस डबल स्पर्द्धाको कहाँ सहन कर सकते ?

मेरे साथ भी कुछ ऐसा हुआ। ठोक-पीटकर लोगोंने मुझे लेखक-राज बना ही दिया और मैं स्वयं भी अपनेको पाँचवें सवारोंमें गिनने लगा। अपनेको बड़ा आदमी समझनेके कारण ही छतरपुरसे नौकरी छोड़नेके पश्चात् दूसरी जगहकी नौकरी न निभा सका। नौकरी करना तो टेढ़ी खीर है। उसमे बड़े आत्म-संयमकी ज़रूरत है किन्तु मैं तो जैन बोर्डिंग हाउसके लड़कोंको क़ायदेके घेरेमें बन्द करनेका बाइज़्ज़त काम भी न सँभाल सका। अब यदि इतनेपर भी सन्तुष्ट रहता तो गनीमत थी— बाप-दादोंकी नहीं, अपनी ही भलमनसाहत लिये बैठा रहता तब तक विशेष हानि नहीं थी।

दूसरे प्रोफ़ेसरोंको कोठियोंमें रहते देख (मैं भी प्रोफ़ेसरोंमें क़रीब-क़रीब बेमुल्क नवाब हूँ) मुझे भी कोठी बनानेका शौक़ चर्राया। मेरे सामने दो आदर्श थे। श्री भोंदारामजी ठेकेदार तो चाहते थे कि अकबर की इस नगरीमे कम-से-कम लाल पत्थरके क़िलेकी टक्करका एक दूसरा क़िला बनवाऊँ और मेरी इच्छा थी कि अपने पड़ोसके काछियोंके अनुकरणमें एक झोपड़ी डाल लूँ। इन्हीं परस्पर विरोधिनी इच्छाओंके फल-स्वरूप मेरा मकान तैयार हो गया जो अभी सामनेसे एक मंज़िल है और पीछेसे दो मंजिला है।

मैं चाहता तो झोपड़ी ही बनाना, परन्तु जिस प्रकार पूर्वजन्मके संस्कारोंपर विजय पाना कठिन हो जाता है उसी प्रकार नीवकी दीवारें चौड़ी चिनकर उनपर झोपड़ी बनाना असंभव हो गया। प्रत्यक्ष रूपसे मूर्ख कहे जानेका भार अपने ऊपर लेनेको तैयार न था। जब लोग इतनी बड़ी बृटिश सरकारको 'टापहैवी' कहनेमें नहीं चूकते तो मेरे मकानको

वाटम हैवी कहनेसे किसका मुँह बन्द किया जाता। टाप हैवीके लिए तो एक बहाना भी है—सिर बड़ा सरदारका—मेरे पास ऐसा कोई बहाना भी न था। मै शहरमें रहकर गँवार नहीं बनना चाहता था। मकान फूससे क्या लकड़ीसे भी न पटा। उसमे डाटें लगाई गयी। उस सम्बन्धमे मेरे छोटे भाई बाबू रामचन्द्र गुप्त तथा मेरी श्रीमतीजीने बड़े भाई लाला कालीचरणजी ठेकेदार महोदयको कई बार डाट-फटकार बतानेका मौक़ा पाया।

अब मै डाटका अर्थ समझ गया—डाट ईट-चूनेकी उस बनावटको कहते है जो सदा अपना भार लिये धूप और मेहके साथ रणमे डटी रहती है। किन्तु उसे डटी रहनेके लिए स्वयं धूप और मेहकी परवाह न करके डटा रहना पड़ता है और समय-समयपर ठेकेदारको भी डाट देनी पड़ती है। इस प्रकार मेरा शब्द-कोश (अर्थ-कोश नहीं) बहुत बढ़ गया है, अब मै कुछ, डाढ़ा, चौरा, हाफ़ सेट, हौल पास, नासिक, चश्मा, ठैवी आदि वस्तुकलाके पारिभाषिक शब्दोंका अर्थ समझने लगा हूँ। एक बात और भी मालूम हो गयी है। आजकलकी सभ्यताकी काट-छाँटका प्रभाव वस्तुकलापर भी पड़ा है। इस युगमें मूँछें कट-छटकर तितली बनीं और फिर तितली बनकर उड़ गयी। कोट आधे हो गये। पैंट भी शौर्ट हो गयीं। कमीज़की बाहे और गले मुख्तसर बनने लगे। जूतोंका स्थान चप्पल और सेण्डलोने ले लिया। नाटक एकांकी ही रह गया। इसी प्रकार मकानोंमें चौखट न बनकर तिखट बनने लगीं। आजकलकी चौखटोंके नीचेकी बाजू नहीं होती। सूरके बालकृष्णको देहली लाँघनेमे जो कठिनाई हुई थी वह मेरे नाती-पोतोंको नहीं होगी।

अर्थ-कोषके क्षयके साथ शब्दकोशकी वृद्धि उचित न्याय है—'एवज़ मावज़ा गिला न दारद।' इधर लेखा उधर बराबर हो गया। और नहीं तो परिवृत्ति अलंकारका एक नया उदाहरण मिल गया है। बेर देकर मोती लेना कहूँ या इसका उलटा ?

जिस प्रकार शुरूमें जनमेजयके नागयज्ञकी तरह ईंट-चूनेका स्वाहा होता था उसी प्रकार पीछे धनका स्वाहा होने लगा, और मैं भी घर फूँक तमाशा देखनेका अस्पृहणीय सुख अनुभव करने लगा। एकके बाद दूसरी पास-बुक चुकती हुई, फिर केश सार्टिफिकेटोंपर नौबत आई, और पीछे रिज़र्व बैंकके शेयर वारण्ट भी जो भाग्यशालियोंको ही मिले थे, अछूते न रहे। वे बेचारे भी काम आये। मैं पुरुष पुरातनकी वधूके मादक संसर्गसे मुक्त हो गया। अस्तु यह थोड़ा लाभ नहीं। कविवर बिहारी लालने कहा है:—

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौराय नर, वा पाये बौराय॥

अब मुझे कनक (धन) मद न सता पायगा और मैं 'बौराया' न कहाऊँगा। दार्शनिकके नाते यदि कोई मुझे पागल कह लेता तो मैं इसे दार्शनिक होनेका प्रमाण-पत्र मानकर प्रसन्न होता किन्तु धन मदसे लांछित होना मैं पाप समझता हूँ। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलपर अनन्त श्रद्धा रखता हुआ भी मैं यह कहनेको तैयार हूँ कि धनके मदसे तो भंग भवानी और वारुणी देवीका मद ही श्रेयस्कर है। इसमें अपना ही अपमान होता है दूसरेका तो नहीं।

एक महाशयने मेरे घरके तहख़ानेको देखकर कहा कि आपके घरमे ठंडक तो खूब रहती होगी ? मैंने उत्तर दिया कि जी, हाँ। जब रुपयेकी गर्मी न रही तब ठंडक रहना एक वैज्ञानिक सत्य ही है। इसपर उन्होंने तहख़ानोंके सम्बन्धमें सेनापतिका निम्नलिखित छन्द सुनाया—

सेनापति ऊँचे दिनकरके चुवति लुवैं
नद नदी कुवैं कोपि डारत सुखाइ कै।
चलत पवन मुरझात उपवन बन,
लाग्यो है तपन डार्यो भूतलौं तपाइ कै।

भीषम तपत रितु, ग्रीषम सकुचि तातैं
सीरक छिपी है तहखाननमें जाइ कैं ।
मानौ सीत कालैं, सीत लताके जमाइवे कौं,
राखे हैं विरंचि बीज धरामें धराइ कैं ।

मैंने कहा भाई साहब वस्तु हाथसे गई, फिर छाया भी न मिले, तो पूरा अत्याचार ही ठहरा। पहलेके लोगोके तहख़ाने धनसे भरे रहते थे, अब छाया ही सही। यदि गेहूँ नहीं तो भूसा ही गनीमत है।

धनका रोना अधिक न रोऊँगा। अब और लाभ सुनिए। बाहर मकान बनानेका सबसे बड़ा प्रलोभन यह होता है कि उसमें थोड़ी-सी खेती-बारी करके अपनेको वास्तवमें शाकाहारी प्रमाणित किया जाय। मेरी खेती भी उन्हीं लोगोंकी-सी है जिनके लिए कहा गया है :

कर्महीन खेती करै, बर्ध मरे या सूखा परै ।

जब घर बनानेके लिए डेढ़ रुपया रोज़ खर्च करके दूसरेके कुएँसे पैर चलवाकर हौज़ भरवा लेता था तब तक ही खेती ख़ूब हरी-भरी दिखलाई देती थी। माली महोदय भी 'माले मुफ़्त दिले बेरहम'की लोकोक्तिका अनुकरण करते हुए पानीकी कंजूसी न करते थे। उन दिनों चाँदीकी सिंचाई होती थी, फिर भी शाक-पातके दर्शन क्यों न होते? पालकके शाककी क्यारी तो कामधेनु सिद्ध हुई। जितनी काटते उतनी ही बढ़ती। वह वास्तविक अर्थमें पालक थी। गोभीके फूल भी ख़ूब फूले। उन्हें अधिकारसे खाया भी क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीतामें फलोंका ही निषेध किया गया है, पत्तों और फूलका नहीं। भगवान्‌ने कहा है—"**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।**" किन्तु जब मकान बन चुका तो अपने-ही-आप पानी देनेकी नौबत आई। अब तो श्रीमद्भगवद्गीताका वाक्य अक्षरशः सत्य होता दिखलाई देता है। दिन-रात सिंचाईके बाद भी पत्र और पुष्प ही दिखलाई देते हैं। खेत सींचनेमें निष्काम कर्मका आनन्द मिलता है।

मेरी खेतीपर मालूम नहीं, अगस्त्य जीकी छाया पड़ गई है कि जलसे प्लावित क्यारियोंमें शामतक पानीका लेशमात्र भी नहीं रहने पाता। बाबा तुलसीदासजीका अनुकरण करते हुए कह सकता हूँ जैसे खलके हृदयमें सन्तोंका उपदेश। भगवान्‌की तरह मै भी कुएँपर खड़ा हुआ रीतोंको भरा और भरोंको रीता किया करता हूँ। मालूम नही भगवान् इस स्पर्द्धाका क्या बदला देंगे ? इतना सन्तोष अवश्य है कि मेरे कुएँका पानी मीठा निकला है। इसमे पूर्वजोंका पुण्य-प्रताप ही कहूँगा। कुएँका जल ऐसा है कि कभी-कभी मुझे क़सम खानी पड़ती है कि यह नलका नहीं है। **"तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति"** अर्थात् बाप-दादोंका कुआँ है ऐसा कहकर कायर पुरुष खारा पानी पीते हैं। सौभाग्यसे मेरी सन्तानके लिए ऐसा न कहा जायगा।

मेरी खेतीमेसे सिर्फ़ इतना ही लाभ है कि मुझे पौदोंकी थोड़ी-बहुत पहचान हो गयी है। मै लौकी और काशीफल, टिण्डे और करेलेके पत्तोमें विवेक कर सकता हूँ। मैं देहली दरवाज़े रहते हुए भी देहलीके उन लोगों-मेंसे नहीं हूँ जिन्होंने कभी अपनी उम्रमे चनेका पेड़ नहीं देखा। बहुत कुछ जमा लगनेपर मैं यह तो न कहूँगा कि कुछ न जमा। जमा सिर्फ़ इतना ही कि मेरे यहाँकी भूमि बन्ध्या होनेके दोषसे बच गयी। जिस प्रकार हज़रत नूहकी किश्तीमें सब जानवरोंका एक जोड़ा नमूनेके तौरपर बच रहा उसी प्रकार मेरी खेतीमें विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिए दो-दो नमूने हर एक चीज़-के मिल जायेंगे और बाबा तुलसीदासजीके शब्दोंमें यह कहना न पड़ेगा—

ऊसर बरसे तृण नहि जामा।
सन्त हृदय जस उपज न कामा।

ज़मीनको क्यों दोष दूँ। मेरी खेतीपर चिड़ियोंकी भी विशेष कृप रहती है, वे मेरे बोये हुए बीजको ज़मीनमें पड़ा नहीं देख सकतीं और ं भी खेत चुग लिये जानेके पूर्व सचेत नहीं होता। फिर पछतावेसे क्या ?

मैं अपनी छोटी-सी दुनियामें किसानोंकी अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभा, शुका सभी ईतियोंका अनुभव कर लेता हूँ। सोचा था वर्षाके दिनोंमें खेतीका राग अच्छा चलेगा किन्तु गढ़ेमें होनेके कारण साधारण वृष्टि भी अतिवृष्टिका रूप धारण कर लेती है। दो रोज़की वर्षामें ही जल प्लावन हो गया। सृष्टिके आदिम दिनोंका दृश्य याद आ गया। मुझे भी अभावकी चपल बालिका चिन्ताका सामना करना पड़ा। पसीना बहकर सींचे हुए वृक्ष, जिन्हें बड़ी मुश्किलसे ग्रीष्मके घोर आतपसे बचा पाया था, जल समाधि लेकर विदा हो गये। जीवन (जल) ही उनके जीवनका घातक बना।

शहरसे कुछ दूर होनेके कारण मेरे नापित महोदय मेरे ऊपर अब कृपा नहीं करते। यद्यपि मेरे नापितदेव धूर्त तो नहीं हैं तथापि नापितको शास्त्रोंमें ऐसा ही कहा है—'**नराणां नापितो धूर्तः।**' इस प्रकार मेरा एक धूर्तसे पीछा छूटा। जो तृतीय श्रेणीके न्यायी ब्राह्मण मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं उनपर कृपा करनेसे मुझे संकोच होता है। अब मैं स्वयं सेवक (स्वयं शेव करनेवाला) बन गया हूँ और देशके हितमें टमाटर और पालकके विटैमिन बाहुल्यसे बने अपने अमूल्य रक्तके दो-चार बिन्दु नित्य समर्पण करना सीख गया हूँ। शायद सर कटनेकी कभी नौबत आय तो इतना संकोच नहीं होगा। सरके बजाय बाल तो दो-चार महीनेमें और नाखून दो-एक सप्ताहमें कटवा ही लेता हूँ। फिर भी लोग कहते हैं बलि-दानका समय नहीं रहा।

मैं अपने मकान तक पहुँचनेके रास्तेके सम्बन्धमें दो-एक बात कहे बिना इस लेखको समाप्त नहीं कर सकता। उससे मुझे जो लाभ हुआ है वह उमर भर नहीं हुआ था। मैंने अपने जीवनमें इस बातकी कोशिश की थी कि दूसरोंको धोखा न दूँ। इसलिए मुझे गालियाँ भी शायद ही मिली हों। लेकिन इस सड़ककी बदौलत मुझे इक्के-तांगेवालोंसे रोज़ गालियाँ सुननी पड़ती हैं। पीठ फेरते ही वे कह उठते हैं—बेईमान दिल्ली दरवाज़े-

की कहकर गाँवके दगड़ेमें खींच लाया है। मैं भी उनके गालियोंका विवाह-की गालियोंके समान आदर करता हूँ और चुंगीके विधायकोंका स्मरण कर लेता हूँ '**कबहुँक दीन दयालके भनक पड़ेगी कान।**' गाँवकी सड़कें भी इसकी प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकतीं। बन जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके सम्बन्धमें तुलसीदासजीने कहा है कि '**कठिन भूमि कोमल पद गामी।**' पवित्र व्रज रज तथा खाके बर्तनसे पूर्ण इस सड़कमें जूते इस प्रकारसे समा जाते हैं जैसे किसी साहबके ड्राइङ्गरूमके कुशनमें शहरके किसी मोटे रईसका सारा शरीर। यदि कहीं जूतोंको धूलि-धूसरित होनेसे बचाकर उनकी शान रखना चाहूँ, तो दूसरोंकी ट्रेन पास करनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। किन्तु इसमें मेरी शान जाती है। दूसरी कोठियोंके लोग वाणीसे नहीं किन्तु कभी-कभी मधुर व्यंग्य द्वारा अवश्य विरोध करते हैं। रात्रिको जब घर लौटता तो कबीरके बतलाये हुए ईश्वर-मार्गकी कनक और कामिनी रूपिणी बाधाओंके समान सूद और लालकी कोठियाँ मिलती हैं। मेरी पगध्वनि सुनते ही उनके श्वानदेव उन्मुक्त कण्ठसे मेरा स्वागत करते हैं। उनके लिए मुझे दण्डधारी होकर कभी-कभी उद्दण्ड होना पड़ता है। अब मुझे इन स्वाभाविक पशुओंके नाम भी याद हो गये हैं। एकका नाम टाइगर है दूसरेका कमलू। नामोच्चारण करनेसे दण्डका प्रयोग नहीं करना पड़ता। जब इन घाटियोंको पार कर लेता हूँ तभी जानमें जान आती है। हमारे घरमें ही बिजलीका प्रकाश है किन्तु रास्तेमें पूर्ण अन्धकारका साम्राज्य रहता है। और मुझे उपनिषदोंका वाक्य याद आता है '**असूया नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता।**' मालूम नहीं उसके लिए कौनसे पापका उदय हो जाता है। '**तमसो मा ज्योतिर्गमय**'की प्रार्थना करता हुआ जैसे-तैसे राम-राम करके घर पहुँचता हूँ। रोज सबेरा होता है और उन्हीं मुसीबतोंका सामना करना पड़ता है।

इन सब आपत्तियोंको सहकर भी बस इतना भी सन्तोष है कि उन्मुक्त वायुका सेवन कर सकता हूँ और बगीचेके होते हुए मुझे यह समस्या नहीं

रहती कि क्या करूँ ? जूतियाँ सीनेसे अधिक श्रेयस्कर काम मिल जाता है। शास्त्रकारोंका कथन है :

'बेकार मुबाश कुछ किया कर
यदि कुछ न हो तो जूतियाँ सिया कर।'

और कुछ नहीं होता तो खुरपी लेकर क्यारियोंको ही निराता रहता हूँ, और चतुर किसानोंमे अपने गिने जानेकी स्पर्द्धा करता रहता हूँ :

'कृषी निरावहिं चतुर किसाना।' पं० रामनरेश त्रिपाठीने सनकी गाँठके आधारपर बाबा तुलसीदासजीको किसनईका पेशेवाला प्रमाणित किया है। इस बातसे मुझे एक बड़ा सन्तोष हो जाता है कि और किसी बातमें न सही तो खेतीके काममे ही भक्त शिरोमणिकी समानता हो जाय।

अब मेरा यह निष्कर्ष है कि मुझ जैसे बेकार, सकल साधनहीन आदमीको, जिसके यहाँ न कोई सवारी शिकारी और न दो-चार नौकर-चाकर हैं, (वैसे तो हमारे उपनिवेशके सभी लोग **'स्वयं दासास्तपस्विनः'** वाले सिद्धान्तके माननेवाले हैं····) कोठी बनाकर न रहना चाहिए।

दवाई

●

जहूरबख़्श

मियाँ रहमतने चेहरेपर तौलिया रगड़ते-रगड़ते फरमाया—'अब तो ख़ुदाके वास्ते बिस्तर छोड़ो। देखती नहीं कितना दिन चढ़ आया है। सहनपर धूप चमक रही है। हाथ-मुँह धो डालो, एक प्याला चाय पी लो, ऊपरसे दो बीड़े खालो, तबीयत तरो-ताज़ा हो जायगी। यों सोनेको दिन-भर सोया करो, सुस्ती ही बढ़ेगी। और तुम्हें है क्या ? जुकाम ही न ? दो-एक रोजमें आप ही पच जायगा। चाहो, तो अण्डेकी एक टिकिया खा लो। मगर तुम्हें समझाये कौन मानो तब न। ज़रा सर दर्द हुआ और खाट पकड़ ली। हमारी अम्मीजान चढ़े बुख़ारमें चक्की पीसा करती थीं। उनका कहना था कि चक्की सौ बिमारियोंकी दवा है। एक तुम हो, जैसे लाज-

वन्तीका पौधा, उँगली दिखलाई और कुम्हला गया। मेरी बात मानो, एक महीना चक्की पीसो, चेहरा मानिन्द सेवके सुर्ख न हो जाये तो मेरा जिम्मा। मज़दूरनियोंको देखो, दिनभर मेहनत-मशक्कत करती हैं, रूखा-सूखा खाती हैं, मगर उनकी तन्दुरुस्ती रश्कके क़ाबिल होती है। तो इसकी वजह क्या ? यही कि....'

बेग़म साहबा शायद छतकी कड़ियाँ गिन रही थीं। एकदम मनमनाकर बैठ गईं और मियाँ रहमतकी तरफ़ तेज़ नज़रसे ताकती हुई बोलीं—'तो तुम्हारी यही मंशा है कि मैं मज़दूरी करूँ, चक्की चलाऊँ ? अच्छी बात है यही करूँगी। मगर एक बात बताओ। जब-जब मेरी तबीयत बिगड़ती है, तुम आपेसे बाहर क्यों हो जाते हो ? मुझे बीमार बननेका शौक़ नहीं है, मगर अपने फूटे नसीबको क्या करूँ ? तीन दिनसे तड़प रही हूँ, जैसे मछली। मारे दर्दके सर फटा जाता है, हड्डी-हड्डी टूटी जाती है, भीतर-ही-भीतर बुखार तमाम जिस्मको तोड़ रहा है। नाकसे साँस लेते तो बनती नहीं, और जुकाम तुम्हारे लेखे कोई मर्ज़ नहीं है। तबीयतका हाल पूछना दूर रहा, दवा-दारूकी फिक्र भाड़में गई, चक्की और मज़दूरीका तराना लेकर बैठ गये। लगे अपनी अम्मीजानकी तारीफ़ मारने। कोई मरे, चाहे जिये, तुम्हारी बलासे। एक मैं हूँ तुम्हारी तबीयत ज़रा बिगड़ जाती है, तो यहाँ दम फूल उठता है। अल्लाहसे दुआ माँगती हूँ, मन्नतें मानती हूँ। मगर तुम्हें इन बातोंसे क्या मतलब। तुम्हारी तो वही मसल है कि अपने लिए पाँचका गण्डा, ग़ैरके लिए तीनका गण्डा। पारसाल ही की बात है, हज़रतको तीन-चार रोज़ बुखार आ गया था। घर-भरको सिरपर उठा लिया था। यह डाक्टर कुछ नहीं जानता, हकीम साहबको बुलाओ। हकीमजी तो पहले दरजेके गधे हैं, दवा करना तो बस, वैदजी जानते हैं। कह दो, मैं झूठ कहती हूँ। कहीं उस वक़्त मालूम होता चक्कीका नुस्खा, तो मैं तुम्हें चक्कीपर ही बिठाती, और फिर बिताती।' यह कहते-कहते बेगम साहबाके होठोंपर मुसकराहट आ गई।

मियाँ रहमत भी मुसकराकर बोले—'ए लो, तुम तो इल्जामपर-इल्ज़ाम लगाने लगीं। मैं, और फिक्र न करूँ, भला कभी ऐसा हुआ है ? ज़रा तो सच बोला करो। तुम्हीं कहो सालमें कितनी मर्तबा हकीमों और वैद्योंकी चौखटोंपर एँड़ियाँ रगड़ा करता हूँ। तुम्हारे ही लिए या किसी ग़ैरके लिए! अच्छा भई, ख़ता माफ़ करो, अभी किसीको बुलाये लाता हूँ।'

बेगम साहबाने कहा—'तो मैं यह कहाँ कहती हूँ कि तुम मेरी फिक्र नहीं करते ? पर, तुम्हारी फिक्र ऐसी है कि मियाँ खिलाते तो बहुत हो, मगर जूतियाँ बुरी मारते हो। और तुम इस सिकन्दरको क्यों नहीं डाँटते ? घड़ीमे आठ बज रहे होंगे और वह मुई अब तक लापता है। इसने तो मेरा जी जला डाला। न बात-चीत करनेका शऊर, न काम-काजका सलीक़ा। घण्टों एक ही कामके लिए बैठी रहेगी। तुम्हें और अच्छी नौकरानी नहीं मिलती क्या ? क्या कहा; बेचारी बहुत ग़रीब है। ग़रीब है तो क्या, उससे मुफ़्त काम लेते हैं। खाना-कपड़ा देते हैं, ऊपरसे महीनेके महीने चार रुपये अलग। बीवी और कहीं होती, तो आँटे-दालका भाव मालूम पड़ जाता। मगर यहाँ तो 'मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त'वाला मज़मून है और यह ठीक भी है, परेशान तो वह मुझे करती है तब तुम्हें उससे क्या वास्ता ? अरे, तो अब आइना-कन्घा लेकर बैठ गये। क्या कहा, बालोंमे कन्घा न करूँ ? नहीं साहब खूब शौक़से माँग-पट्टी सँभालो। मगर इसके क्या मानी, कि औरतोंके माफ़िक चार घण्टे सिंगार-पटारमें गुज़ार दिये। तीन महीनेसे वह किताब लिख रहे हैं, और पूछो, लिखा कितना, केवल पचास सफ़े। इसीको कहते हैं—नौ दिन चले अढ़ाई कोस। लिखा भी कैसे जाए। सात बजे सोकर उठे, डेढ़ घण्टे हाथ-मुँह धोया किये। डेढ़ घण्टे बाल सँवारते और कपड़े पहिनते रहे। लीजिए साहब, दस बज गये। हबर-हबर खाना खाया और ताबड़तोड़ दफ़्तरका रास्ता लिया। लौटेंगे आप किस वक़्त—कभी आठ बजे, कभी नौ बजे। अब पूछती हूँ कि छुट्टी तो पाँच बजे हो जाती है, आप अब तक कहाँ रहे, तो जवाब मिलता है—रास्तेमें पण्डितजी

मिल गये थे, उन्होंने पीछा ही न छोड़ा। गोया वह इनको बाँधकर बिठा लेते हैं। जोड़ी खूब जुड़ी है जैसी रूह वैसे फरिश्ते। दोनों जहाँ खड़े हो जाएंगे, तो धरती हाय-हाय करेगी। खुदा जाने, काहेके मुँह बनाये हैं कि घण्टों बातें करते हैं मगर थकना नहीं जानते। जब प्रकाशक तकरार करेगा, तो मेरी बीमारीका बहाना बना बनाया है। गोया मैं हमेशा बीमार बनी रहती हूँ, और आप चौबीसों घण्टे मेरी तीमारदारीमें लगे रहते हैं।'

इसी समय वहाँ सिकन्दरने दबे पावों प्रवेश किया। हवाका रुख एक-बारगी तबदील हो गया और तमाम बौछार उसीपर जा पड़ी—'अक्खाह! आप हैं। आई तो बहुत जल्दी। अभी आठ ही तो बजे होंगे? क्या कहा, कौन बहुत देर हो गयी है। जी नहीं, बिलकुल देर नहीं हुई। देर तो तब कहलाती, जब आपकी सवारी दस बजे तशरीफ़ लाती। सुनो बीबी, साफ़ बात है, तुम्हें काम न करना हो, इनकार कर दो। कुछ ज़बर्दस्ती नहीं है। मगर मुझे रोज़-रोज़की यह माथा-पच्ची पसन्द नहीं। हज़ार मर्तबा समझा दिया कि बीबी जल्द आया करो, बात-की-बातमें दस बजते हैं। उन्हें दफ़्तर जाना है, मगर तुम्हारे कानोंपर जूँ भी नहीं रेंगती। भले घोड़ेको एक चाबुक और शरीफ़ आदमीको एक बातकी ज़रूरत रहती है। मगर यहाँ तो जब देखो, कुत्तेकी दुम टेढ़ी-की-टेढ़ी। अरे! तो अब खड़ी ही रहोगी? पैरोंमें मेंहदी तो रची नहीं है? लोटेमें पानी ले लो, और उनको धोकर भीतर आ जाओ।'

मियाँ रहमत जूते पहचानने लगे, तो बेगम साहबा बोलीं—'अब कहाँ चले? नीमवालोंको बुलाने। मगर ऐसी भी क्या जल्दी, चाय तो पी लो। अभी दम-भरमें तैयार होती है। सिकन्दर, जल्दीसे आग सुलगाकर चूल्हे-पर पतीली चढ़ा दो। अरे, तुम मानोगे नहीं? तुम्हारी यही जिद्द मुझे अच्छी नहीं लगती। मगर लौटना जल्दी। मैं तुम्हें खूब जानती हूँ। जहाँ गये, वहींके हो गये। रास्तेमें कोई दोस्त-आशना मिल गया, उसीसे गप्पें हाँकने लगे। सिकन्दर, तुम्हीं बताओ, मैं झूठ कहती हूँ?'

'झूठसे तुम्हें वास्ता ही क्या ? अच्छा, घबराओ नहीं, तुम्हें ज़्यादा इन्तज़ार करना न पड़ेगा।' कहते हुए मियाँ रहमत लपककर बाहर चले गये। मगर बेगम साहबाकी तक़रीर ज्यों-की-त्यों जारी रही 'इनसे तो बात करना मुश्किल है। दवा-दारूका ज़िक्र किया : बस वह दौड़ पड़े नीम-वालोंको बुलाने। पूछो, उनके पास रक्खा क्या है—हर्रे, बहेड़े और आँवलेका चूरन। भला आदमी दुनिया भरका तो परहेज बतलाता है। आलू और चावल बादी होते हैं, गोश्त और अण्डे गर्मी करते हैं, दूध, दही और घीसे कफ़ पैदा होता है। तब खाओ क्या सिर्फ़ मूँगकी दाल और रोटी। तौबा-तौबा। अच्छा भला आदमी भी दस-पाँच रोज़ बँधकर खाये, तो बीमार पड़ जाए। मगर वह तो नीमवालोंके मुरीद है। और इन डाक्टरोंसे तो ख़ुदा बचाये। बदमाश दोनों हाथोंसे लूटते हैं। नब्ज़ देखनेकी तमीज़ नहीं है, आँखें बताओ, जीभ दिखाओ, बस बीमारीकी शिकायत दूर हो गयी। अब लाओ दो रुपये फीसके। आठ आने ताँगेके, और छः आने तीन ख़ुराक दवाके। और इन सबके एवज मिलेगा क्या ? ज़हरका घूँट। दिनभर मुँह कड़ुआ रहे, और थू-थू करते बीते। अलबत्तह वैद्य-हकीम ऐसे डाके नहीं डालते। बेचारे एक रुपया फीस लेते हैं ? और दवा मुफ़्त देते हैं। सच है, दुनियामे मुफ़्ती चीज़की क़दर नहीं होती। क्यों सिकन्दर, तुम तो कभी-कभी नीमवालोंके यहाँ जाती हो ? कैसी चलती है उसकी वैदक। बहुत मरीज़ आते हैं ? है भी तो बेचारे बहुत शरीफ़ और तजुरबे-कार। नब्ज़की जाँच तो इतनी अच्छी करते हैं कि वाह। तीन-चार साल हुए, मैं मलेरियामें सख्त बीमार हो गई थी। उन्हींकी दवासे सेहत पायी थी।

अरे तो तुम बातें सुन रही हो या कुछ काम कर रही हो ? अब तक आग भी नहीं सुलगी। इस फू-फूके क्या मानी ? बोतल उठाओ थोड़ा-सा तेल छिड़क दो और दियासलाई रगड़कर फेंक दो। अभी भकसे जल उठेगी। जल्दी करो मेरी बहिन जल्दी। बस ठीक है। अब पतीली चढ़ा

दो। और हाँ, अभी चाय न छोड़ देना। पहले अदरकके पतले-पतले कतले डाल दो और खूब उबलने दो। क्या कहा—अदरक नहीं है ? तो अल्लाहने ये बड़े-बड़े दीदे किस लिए दिये हैं। इनसे तलाश करो। अरे हाँ खूब याद आया, अदरक तुम्हें मिलेगी कहाँसे वह तो आलुओंवाली उस टोकरीमें पड़ी है—आलुओंके नीचे। अब तुम अदरक लेने गयी तो वहींकी हो रही। बुआ, तुम्हारे माफ़िक काहिल शायद ही कोई हो। यह क्या कर रही हो? नहीं-नहीं, कतलेकी ज़रूरत नहीं है। कुचलकर डालो। इससे अर्क खूब उतर आएगा, जुकामके लिए अदरकका अर्क बहुत मुफ़ीद होता है। न हो, तो दस-पाँच लौंग भी छोड़ दो। मगर चायमें दूध और शक्कर ज़रा ज़्यादा डालना। दूध कितना है आध सेर न ? बस तो पावभर डाल देना। और सुनो, दो अण्डोंकी टिकिया भी बना लो। प्याज ज़रा महीन कतरना, और नमक-मिर्च खूब बारीक पीसना। तब तक मैं हाथ-मुँह धोये डालती हूँ।'

जिस समय बेगम साहिबा ग़ुसलखानेसे बाहर आई, पतीलीपर भापके बादल मँडरा रहे थे, और सिकन्दर सिलपर लोढ़ा रगड़ रही थी। बेगम साहिबाने उससे कहा—'चाय तैयार हो गयी ? अण्डोंमें प्याज मिला दी गयी है या खाली नमक-मिर्चपर ही ज़ोर आजमा रही हो ? क्या कहा—अभी तो अदरक ही उबल रहा है ? ऐ वाह ! तो अदरक न हुआ, बुड्ढी बकरीका गोश्त हो गया। बुआ, तुम्हारे किये कभी कोई काम हुआ है, या आज ही होगा ? खुदाने नाहक तुम्हें इन्सानका जिस्म दिया। उमर तो तुम्हारी तीससे ऊपर होगी, मगर तुम्हें चाय बनानेका भी शऊर न आया। बुरा माननेकी ज़रूरत नहीं है। 'खानेकी रोटी दस-बारा, काम करनेको नन्हा बेचारा'वाले मज़मूनसे मुझे सख्त नफ़रत है। वह वैद्यको लेकर आ रहे होंगे और यहाँ चाय भी तैयार नहीं है। वाह! क्या खूब ! ऐ खुदाकी नेक बन्दी, मैं क्या कह रही हूँ !—तुम्हारी समझमें कुछ आता है या नहीं। नमक-मिर्चका पीछा छोड़ो। चाय कैटलीमें भर दो, दूध अंगारोंपर रख दो, जब-तक वह गर्म होता है, मैं प्याले और तश्तरियाँ साफ़ करती हूँ। प्याज कतर

कर रख दी होती तो मैं ही अण्डोंमें मिला देती। खैर अब कतर डालो। अरे, पानदानमें तो डलियाँ है ही नहीं, और चुनेटी भी साफ़ है। बुआ, लपककर ज़रा-सा चूना दे जाओ और पाँच-छः डलियाँ भी लेती आओ। ऐसी बुरी लत पड़ गयी है कि हाथ-मुँह धोनेपर जबतक दो बीड़े न खा लूँ, चैन नहीं पड़ती। ए लो, अब तुम्हें डलियाँ नहीं मिलतीं? वह क्या रक्खी हैं उस गरम मसालेवाले डिब्बेके पास। ऐ, बुआ, तुमसे कौन काम करनेको कहे? चूना लेने क्या गयी, सात-समुन्दर पार करने लगी। अफ़सोस, पैसे भर चूना लानेमें इतनी देर। एक घण्टेमें चूना लेकर लौटी। तुम्हें तो बस बहाना चाहिए। ज़रा-सा काम बतला दो, हमारी सिकन्दर बुआ, घण्टे-दो घण्टे उसीसे उलझी रहेंगी। अरे भई, जो काम तुमको न करना हुआ, कह दिया करो। लो वह आ गये। मेरी अच्छी बुआ, जल्दीसे झाड़ू फेरकर वह दरी बिछा दो। नौ बजनेको आये और घर अब तक नहीं झड़ा। वैद्यजी मनमें क्या कहेंगे। इसीसे तो मुसलमान बदनाम है। मगर जहाँ बीमारी हो, वहाँ सफ़ाई अच्छी तरह हो भी तो नहीं सकती। रहने भी दो, इतनी होशियारी की ज़रूरत नहीं। हिन्दुओंमें ही कहाँकी ऐसी सफ़ाई रहती है? पण्डितकी नौकरानी बतलाती थी कि उनका घर हमारे घरसे भी बदतर रहता है। बस अब जल्दीसे दरी बिछा दो। और उनको भीतर बुला दो। बेचारे तबसे बाहर खड़े है।'

वैद्यजी नब्ज़ टटोलकर बोले—'सर्दीकी शिकायत है। बुखार भी है, मगर बहुत खफीफ। हाँ, सुस्ती अलबत्तह ज़्यादा है। आरामतलब आदमी सुस्त हुआ ही चाहे। अगर ये थोड़ी मेहनत-मशक़्क़त करें तो तमाम शिकायतें काफ़ूर हो जायँ। खैर, मैं तीन दिनके लिए दवाई देता हूँ। तबीयत ठीक हो जायगी। मगर सर्द और बादी चीज़ोंसे बचाव करना पड़ेगा। दवा शहदके साथ ली जायगी। भुना हुआ सुहागा मिला लेनेसे और भी अच्छा होगा—दाने भर काफ़ी रहेगा। हाँ, लौंगका तो मुझे खयाल ही न रहा, एक-दो भूनकर मिला लेना।'

वैद्यजी तो दवाका अनुपात बताकर, और फ़ीस गाँठकर लम्बे हुए, पर मियाँ रहमत और सिकन्दरपर एक साथ क़यामत बरपा होने लगी। वह इस तरह कि सिकन्दर ज्यों ही बेगम साहबाके पाससे हटकर बावर्चीखानेमें पहुँची, बिल्ली वहाँसे बाहरकी तरफ़ भागी। बेगम साहबा बेताब हो गयीं। पहुँची लपककर बावर्चीखानेमें तो देखती क्या हैं कि दूध चौकेमें नदी-नालोंकी शकलें बना रहा है और अण्डोंका प्याला उलटा पड़ा है। उनके जिस्ममें एड़ीसे चोटी तक आग धधक उठी। दाँत पीसकर बोलीं—'यह किस जनमके बदले चुका रही हो बीबी। मैं तो भला वैद्यजीको हाथ दिखला रही थी, तुम वहाँ भात-दालमें मूसलचन्द बनने क्यों पहुँचीं? अगर तुम्हारे यही लच्छन रहे तो एक दिन दिवाला ही पिट जायगा। जी हाँ, कोई क़सूर नहीं है आपका। आप नेक़ खसलत ही ऐसी हैं, कि आपसे क़सूर हो ही नहीं सकता। क़सूर तो मेरा है बीबी, जो वैद्यजीको नब्ज़ दिखलाने बैठ गयी और बावर्चीखानेके दरवाज़ेको बन्द करनेका ख्याल न रखा। सोचा था, कि अदरककी चाय पीयेंगे, अण्डेकी टिकिया खायेंगे, तो तबीयत कुछ हलकी हो जायगी। मगर तुम्हें यह बात पसन्द कहाँ? तुम तो अपने ही मनकी करोगी। तुमसे तो बुआ, मेरा जी खट्टा हो गया। गो उमरमे तुमसे छोटी हूँ, मगर तुम्हें तोतेकी तरह पढ़ाया करती हूँ। पर वाह! सिकन्दर बुआ हैं कि चिकने घड़ेका पानी। एक कानसे बात सुनी, दूसरे कानसे निकालकर बाहर की। ऐ कहाँ गये, कुछ सुना तुमने? अब हमारी सिकन्दर बुआ धन्नासेठ हैं। कहती हैं कि दूध और अण्डोंके पैसे हमारी तनख्वाहसे काट लेना। बस बीबी, बस अब चुप ही रहो! तुम्हें ज़रा भी ग़ैरत मालूम नहीं होती। चुल्लूभर पानीमें डूब मरो। क़सूर-का-क़सूर करो और ऊपरसे ज़बान लड़ानेकी जुर्रत। मैं तो तुम्हारी उमरका लिहाज़ करती हूँ, और तुम सिर चढ़ी जा रही हो। आयन्दह इस तरहकी ज़बाँ-दराज़ी की, तो याद रखना मेरा मिज़ाज बुरा है, सब लिहाज-विहाज़ धरा रहेगा। बस, अब खड़ी ही रहो और काम—'

मियाँ रहमतने कहा—'अरे ! तो इस परेशानीसे अब क्या फ़ायदा ? चार ही पैसेका दूध गया है, या और कुछ ! ख्वाहमख्वाह बेचारीकी जान चीथ रही हो ।'

बेगम साहबा तिनककर बोलीं—'ऐ वाह, तो मैं इनसान नहीं, बिल्ली हूँ क्यों ? लो सिकन्दर, खुशियाँ मनाओ, आजसे तुम आज़ाद हो । कान पकड़े बीबी, जो आइन्दह तुमसे कुछ कहूँ । जब यह शह देते हैं, तो मेरी ही जूतियोंको क्या गरज़ पड़ी है जो फ़िक्रमें घुल-घुलकर मरूँ । मगर मियाँ, एक बात कहे देती हूँ, गाँठमें बाँध लेना । यह दुनिया है । यहाँ हमेशा सीधे-का मुँह कुत्ते चाटा करते हैं । यही सिकन्दर कलको अलग की जायगी, तो घर-घर तुम्हारे दुखड़े गाती फिरेगी ।

'और हाँ, वैद्यको क्या सिखला लाये थे ? तुम्हारी ये बातें ! इसीको कहते है, मुँहमें राम बगलमे छूरा । अगर सिखला नहीं लाये थे तो उनकी नसीहतका मतलब क्या था ? उसे मालूम कैसे हुआ कि मैं मेहनत-मशक़्क़त नहीं करती ! अगर मैं मेहनत-मशक़्क़त नहीं करती तो तुम्हारी यह घर-गिरस्ती कौन सँभाल जाता है ? मियाँ, मैं हाथ-पैर न चलाऊँ तो दो रोटियोंके लिए तरसकर रह जाओ । मगर नहीं, तुम ग़ैरोंके सामने मेरी ग़ीबत करो, यही तो आजकल शरीफ़ज़ादोंके काम रह गये हैं ।'

यह कहकर बेगम साहबा पलंगपर जा गिरीं और मुँह फेरकर पड़ रहीं । पाँच मिनट तक सन्नाटा छाया रहा । यह चहकता हुआ मकान गोया वीरान-सा हो गया । मियाँ रहमतने सोचा यह तो बुरा हुआ । चिड़िया रूठ गयी । वह चहके, उसकी चहकसे मकान गूँजे, तभी तो बहार है । आखिर लोग चिड़ियोंको पालते किसलिए हैं ? इसीलिए न कि आँखें उनकी सलोनी सूरत देखे और कान उनकी मीठी आवाज़ सुने । बस, उन्होंने सिकन्दरसे कहा—'यही तो तुममें बड़ा ऐब है सिकन्दर, जो तुम उनका कहना नहीं मानती । तुम्हें सोचना चाहिए कि वह इस घरकी सरकार हैं, हमारी सरकार हैं, तुम्हारी सरकार हैं । फिर क्या वजह है कि तुम उनकी

बातोंको कानोंपर उड़ाओ। जो कहो कि वह हमेशा नाराज़ हुआ करती हैं, तो तुम्हें इसका ख़्याल न करना चाहिए। देखती नहीं कि वह जब-तब तो बीमार बनी रहती है, और बीमार आदमीके मिज़ाज़में चिड़चिड़ापन होना ताज़्ज़ुबकी बात नहीं है। वैद्यजी कबके चले गये, मगर तुमने उनको दवा खिलानेका ख़याल किया ? जाओ, लपककर दो पैसेकी शहद ले आओ। वह अलमुनियमवाली कटोरी ले लो, यह लो इकन्नी, और हाँ, एक पैसेका अच्छा-सा सुहागा भी लेती आना।'

बेगम साहबा उसी तरह पड़ी हुई ज़रा कड़ी आवाज़में बोलीं—'दवाई खाती कौन निगोड़ी है ? कोई ज़रूरत नहीं है शहद-वहदकी। मैं मरूँ, चाहे जिऊँ, मगर तुमलोग मिलकर मुझे जलाये जाओ। देखो तुम्हें क़सम है, कसर न करना।'

मगर जब सिकन्दर कटोरी लेकर चलने लगी, तो बेगम साहबासे न रहा गया, वह उठकर बैठ ही गयीं और कहने लगीं—'बुआ, मैंने क्या कहा—सुना नहीं तुमने ? जब मुझे दवा खानी ही नहीं है तब तुम शहद लेने क्यों जाओ ? देखो, मैं जो बात कहा करूँ उसे चुपकेसे मान लिया करो। इस ज़िद्दके क्या मानी ? तो तुम शहद लेने जाओगी ही ? मानोगी नहीं ? अच्छी बात है, जाओ, मगर गुड़का सीरा न ले आना। इन पंसारियोंका एतबार न किया करो, मुए ईमानको ताक़पर रखकर तो डण्डी पकड़ते हैं। सूँघकर और चखकर देख लेना, और साफ़ कह देना कि दवाके लिए है, अगर खराब निकला तो यही कटोरी खींचकर तेरे सरपर मारी जायगी। मगर आना बुआ जल्दी, मैं तुम्हारी आदत जानती हूँ, जहाँ जाती हो, वहीं बातोंके बगीचे लगाने लगती हो। तो अब सुन क्या रही हो, जाती क्यों नहीं ?'

सिकन्दरने पीठ फेरी तो मियाँ रहमत बोले—'अभी तो दिन है हुज़ूर, उठ बैठिए न ?'

बेगम साहबा आँखोंमें आँसू भर बोलीं—'यहाँ जी जला जाता है तुम्हें

मज़ाक़ सूझ रहा है। आज मालूम हुआ कि तुम्हारे पेटमें दाँत है, वैदसे मेरी बुराई की, और दमड़ीके नौकरानीके पीछे मोती-सी आब उतार ली। मेरा ही खून पियो, जो मुझसे बोलो।'

मियाँ रहमत बेगम साहबाके क़रीब पहुँचे और उनका हाथ पकड़कर बोले—'खून पीनेवाले कोई और होंगे, यहाँ तो पिलानेवाले हैं। तुम्हें मेरी क़सम, ले उठ तो बैठो फटसे अल्लाहका नाम लेकर, और गुस्सेको थूक दो। न कुछ बात मगर मानिन्द बच्चोंके मचलकर पड़ी रहीं। ऐसा भी कोई करता है। नौकरानीके साथ इस तरह माथा-पच्ची करना तुम्हारी शानके खिलाफ़ है। इसीलिए उतनी बात मुँहसे निकल गई।'

पारा नीचे उतर आया, तो बेगम साहबा बावर्चीखानेमे पहुँची। वहाँ-का नजारा देखा तो उनकी आग फिर भभक उठी, और बोलीं—'गज़ब खुदाका। नालायक़ने तमाम दूध खाक़मे मिला दिया। चाय तक नसीब न हुई। इस मुईसे खुदा समझे। बुआ तीसको तो पार कर चुकी हैं, मगर खोदती घास ही रहीं। अगर इनके भरोसे रही तो, इन्शाअल्लाह क़यामत तक तो खाना पकेगा नहीं। दिलमें तो यही इरादा कर लिया है कि आज हजरत भूखे ही दफ़्तर जायँ। मगर फिर सोचा कि यहाँ दिनभर टँगे रहेंगे, आतें कुलहू अल्लाह पढ़ा करेंगी, तो रहम आ गया। अच्छा तो अब थोड़ा-सा आटा गूँध लूँ और दो पराठे सेंक दूँ। दस बजनेमे देर भी तो नहीं है। इन छोटे-छोटे दिनोंने अलग ही आफ़त कर रक्खी है। बीबी सिकन्दर तो ऐसी गयी कि आनेका नाम भी नहीं लेती। पंसारीसे रिश्ता जोड़ रही होगी, और क्या ? इतनेपर आप फ़रमाते हैं कि उससे माथा-पच्ची न किया करो। भला बताओ तो, अगर उसका यही हाल रहेगा, तो काम कैसे चलेगा। जरा लपककर देखो तो कि ज़िन्दा है मुई या अल्लाहकी प्यारी हुई ? मैंने आज सबेरे-सबेरे दवाईका ज़िक्र क्या छेड़ा, अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मार ली। दस बज रहे हैं, और अभी न पराठे सिके हैं, न सालन तैयार है। अब मैं क्या-क्या करूँ, न हो दफ़्तरमें बाज़ारसे कुछ मँगाकर खा लेना।

अल्लाह ख़ैर करे, हमारी सिकन्दर सही सलामत वापिस तो आ गई। ऐ बुआ, तुम तो ऐसी गई कि लापता ही हो रही। शहद लाना क्या हुआ, लाहौर लादना हो गया। यहाँ मैंने आटा गूँध रखा है। तुम्हारे भरोसे रहती, तो कुछ न होगा। अब खड़ी क्या हो, शहद उनको दे दो, वह दवा तैयार कर देंगे। और तुम यहाँ आओ। झटसे कुछ आलू काट लो और मसाला पीस डालो। कड़ाही मुझे दे दो, तब तक मैं पराठे सेंकती हूँ। अभी दम भरमें खाना तैयार होता है। ऐं, कड़ाही मँजी नहीं है? तब तो पक चुका खाना, और खा चुके वह। ऐ बीबी, अब तुमसे क्या कहूँ? जब तुमसे कड़ाही भी नहीं मँज सकती तब तुम हो किस मर्ज़की दवा? इन्सानका काम प्यारा होता है न कि चाम। मुई देर-पर-देर हुई जाती है। जल्दी करो बीबी जल्दी करो। कड़ाही माँजनेमें बरसों नहीं लगती। तब तक मैं दवाई ही ले लूँ।'

मियाँ रहमत पत्थरपर खट-खट कर रहे थे। बेगम साहबा आकर बोलीं—'यह तुम दवाई तैयार कर रहे हो कि खेल कर रहे हो? होशियारी बघारेंगे दुनिया भर की और एक गोली पीसते बनती नहीं। लाओ मुझे, दो। तुम लौंग और सुहागा भून लो। सुहागा ज़रा होशियारीसे भूनना। एक बड़ेसे अंगारेपर छोटी-सी डली रख देना। जब मानिन्द बताशेके फूल जाये, उठा लेना।'

'जी सरकार' कहते हुए मियाँ रहमत चले तो कटोरी उनके पाजामेके पाँयचेमें उलझ गई और सारा शहद ज़मीनपर जा रहा। बेगम साहबा हाथ मलकर बोलीं—'हाय री क़िस्मत, सिकन्दरकी बदौलत चाय और अण्डोंसे हाथ धोया, एक दवाई बच रही थी, वह इन्होंने न लेने दी। बैठे-बिठाये एक रुपये का ख़ून हो गया।'

मियाँ रहमतने कहा—'तुम्हारी होशियारीके मारे तो नाकमें दम है। मजेसे दवा तैयार कर रहा था। बीचमें तुम्हारे कूद पड़नेकी क्या ज़रूरत थी? अच्छा भला पाजामा खराब हो गया।'

बेगम साहबा चिढ़कर बोलीं—तो मैंने तुमसे कह दिया था कि कटोरी-से उलझ पड़ी ? गलती करेंगे आप, और कुसूर थोपेंगे दूसरेके सर। इतना बड़ा तो मकान, पर आपको देखिए—कभी किवाड़ोंसे भिड़ रहे हैं, कभी खूंटियोंसे टकरा रहे हैं, गोया बेहोश रहते हैं।'

मियाँ रहमत मुसकराकर बोले 'हाँ, यह तो सच है। मगर इसमे मेरा क्या क़सूर, तुम्हें देखता हूँ, तो यहाँ कच्चे घड़ेकी चढ़ जाती है।'

'जी हाँ, बड़े वह हैं आप' कहती हुई बेगम साहबा भी मुसकरा दीं। फिर धीरे-धीरे बावर्चीखानेमें पहुँचीं और बोलीं—'माँज लाई बुआ कड़ाही ? अच्छा, तो अब चूल्हेपर चढ़ा दो, और वह घी वाली डेगची उठाओ। जब-तक मैं पराठे सेंकती हूँ, तब तक तुम मसाला तैयार कर रखो। अरे, तुम तो कपड़े पहनने लगे। क्या कहा—दस बज चुके ? इतनी जल्दी। अच्छी तुम्हारी घड़ी है ! तो क्या भूखे ही चले जाओगे ? यह भी कोई बात है। खाना तैयार है, खाकर जाओ। पराठें सिक ही रहे हैं, सिर्फ़ सालन तैयार होना है। दम भरमें सब हुआ जाता है। बुआ, जल्दी करो जल्दी। तुम्हारी ही बदौलत आज यह देर हुई। मेरी तबीयत अच्छी होती तो कबका खाना पक गया होता। मैं तो चुटकी बजाते कुल काम करती हूँ। तुम्हारे माफिक रो-रोकर काम करूँ, तो यह घर गिरस्ती कुल धूलमें मिल जाये। आख़िर अल्लाहने हाथ-पैर क्यों दिये हैं। काम करनेके लिए ही या और कुछ। मसाला पिस तो चुका है। अब झटसे पतीली और घी लाओ, तो लगे हाथ आलू भी बघार दूँ।

'ऐ लो, वह तो कपड़े पहिनकर तैयार हो गये। ख़ुदाके वास्ते जरा ठहर जाओ। अब तुम्हें कौन समझाये कि खाना पकाना, कुछ हथेलीपर सरसों जमाना तो है नहीं। हाँ, मैं बेकार बैठी होती तो तुम अलबत्तह शिकायत कर सकते थे। चूल्हेसे सर मारना कैसी मुसीबत है। यह तुम मरद क्या जानो। तुम्हें क्या, खाना सामने आया, लम्बे-लम्बे हाथ फटकारे, मूँछोंपर ताव दिया और रफूचक्कर हुए। एक दिन दस मिनटकी देर हुई,

तो कुछ हरज हो जायगा। ऐसा डर है, तुम्हे सुपरडण्टका ? सुपरडण्ट न हुआ, कहींकी तोप हो गया। क्या उस निगोड़ेके बाल-बच्चे नहीं हैं। ऐ सिकन्दर, तुम्हारे कामसे मैं आजिज आ गई। अब घण्टे-भरसे पतीली ही घुल रही है।'

यह कहते-कहते बेगम साहबाने जो पराठा उलटा, तो उनकी उँगलियाँ जल गयीं। बेचारी आँखोंमें आँसू भर बाहर निकल आईं और चीखकर बोलीं—'लो हो गई तुम्हारे मनकी। तीन घण्टेसे हाथ जोड़ रही हूँ। जल्दी-का काम शैतान होता है। मगर तुम क्यों मानने लगे ? ख़ुदा जाने, आज सबेरे-सबेरे किसका मुँह देखकर उठी थी। सिकन्दरने दूध और अण्डोंपर बत्ती रखी, वैद्यजी आये तो एक रुपया झटक ले गये, तुमने शहदपर ठोकर जमाई और इन मुये पराठोंने तो जान ही ले डाली।'

'हाँ, ख़ूब याद आया। आज सुबह तुम्हारा मुँह आइनेकी तरफ़ था। इसीसे कहा करता हूँ कि आइनेकी तरफ़ मुँह करके न सोया करो पर तुम कहाँ मानती हो ?' यह कहते-कहते मियाँ रहमत जूते पहिनकर बाहर हो गये।

डाँग्डर मोंगाराम

•

अमृतलाल नागर

'जै रामजीकी लाला !'

सेठ हड़बड़ाकर बोले : 'अरे लाला मूलचन्द ! मैं अभी तुम्हारी याद ही कर रह्या था। मैंने कही, लाला मूलचन्दने भौत दिनोंसे दरसन नहीं दीना। क्या बात है. कुछ खफा तो नहीं हो गये हमसे ?'

मैं दूकानके अन्दर खिसक गया। लाला मूलचन्द पटरीमें आरामसे बैठते हुए जरा कुछ हँसकर बोले : 'नई, नई, जे भी कोई बात है ? तुमसे खफा होके कोई भला आगरेमें रह कैसे सके है ?'

'नई, खैर ये तो म्हैरबानगी है तुम्हारी, पर मैं तो ये ही समझा था। बल्के मैंने अभी लल्लूजीसे कही भी थी कि सबेरे जाके लाला मूलचन्दसे

पूछियो भई, क्या खपगी है हम पै जो कि भौत दिनोंसे हमारी दुकानसे कुछ भी सौदा नई हुआ। मुझे तो बड़ा फिकर हो गया, तुम्हारी कसम। खैर, सौदेकी तो बात नहीं, ये तो बिजनेस है, पर दिल तो साले मिले रहने चाहिए। है के नहीं ?'

'नई-नई, लाला बाँकेमलजी। ऐसा कहीं हो सके। वो कुछ ऐसे गिरह चक्करमे फँस गया मै, के सारी सहालग ससुरी सुलफा हो गई। इस साल सोची थी कि हज़ार बारै सौ बना दूँगा, तो साला ये पीलिया खा गया मुझे।'

लाला मूलचन्द कुछ दम तोड़के बैठ गये। सेठ बाँकेमल आवाज़मे कुछ घबराहट पैदा करके बोले—'है—! पीलिया हो गया था तुम्हे ! हाँ भई, झटक तो भौत रहे हो। म्हों तुम्हारा एकदम फौक्स दीखे है। बल्के मै तो अभी ये पूछने ही वाला था कि मूलचन्द, ये क्या हो गया है तुम्हे ? पीलिया भी सुसरी बड़ी खुसकैट बीमारी होवै है साव ? पर तुमने भी ये सुसरी कहाँकी बुलबुल पाल रखी है ? अरे इलाज-फिलाज कराके खुसकैट करो ससुरीको। क्या समझे ?'

'हाँ लाला इलाज तो करा रह्या हूँ। डाक्टर मेवालालका हो रह्या है आजकल।'

'ये कौन मेवालाल फेवालाल है ! अरे किसी भले आदमीसे करावो।'

'नहीं लाला, ऐसी भी क्या कहो हो ? अरे वो ऐम० बी० ऐस० है—लखनऊका।'

'भला ! लखनऊका ऐम० बी० ऐस० है तो तो साब आदमी काबल दीखे है।'

'अरे लाला काबल क्या, विसकी तो बड़ी चले है, आजकल। बड़ी धूम है विसकी आगरेमे। और इलाज भी बडा अच्छा करे है। अब देखो, विसोकी दवासे मुझे भौत फ़ायदा पौंच रह्या है।'

सेठ बाँकेमलने गम्भीरतापूर्वक एक बार लाला मूलचन्दको अच्छी तरह देखा फिर सिर हिलाकर बोले—'हाँ ज़रा चेतनता आ तो गई है च्हैरेपर। बस इसीका इलाज करे जाओ तुम तो। क्या समझे? काबल आदमी है साब, ये डाँग्डर मेवालाल। बड़ा नामी है। चौबेजी भी तारीफ़ करा करे थे इसकी।'

लाला मूलचन्द हुमसकर बोले—'तारीफ़की बात ही है लाला। मरज-की पहचान विसकी ऐसी जबरदस्त है कि क्या कोई करेगा।'

सेठ बाँकेमलने खटसे ताव खाकर हाथ आगेकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"अब ये मती कहो तुम लाला मूलचन्द समझे! डाँग्डर मूँगारामके मुक़ाबलेमे मरज़की सिनाख़ करनेवाला आजतक कोई पिरथी पै पैदा ही नहीं हुआ। तुम ये कलके लौंडे ससुरे मेवालालको लिये घुमो हो।'

पलट पड़े मेरी ओर फिर—

'भैयो, मूँगाराम डाग्डर ऐसा गजबका था कि एक बार लाट साहबकी मेम साबको छीके आने लगीं ससुरी। वो जागे तो छीके और सोये तो छींके—छिन-छिनमें ऐसी छीकें ससुरी कि कै महीनेमे लाटनी साली खुसकैट हो गयी। बड़ा घबड़ाया साब लाट भी कि क्या होगा। इलाज भी कोई मामूली नई भया भैयो! आखर वो लाट ही ठहरा साब। म्हराज विलायतसे और लन्दनसे और जर्मनीसे, अमरीका, अफरीका, चीन और सारी दुनिया तकके डाग्डर ही डाग्डर बुलवा लीने विस्ने। खाली बस, एक जापानको छोड़ दीना। विस्ने कही कि जापानी माल साला यों ही सस्ते होवै है। क्या अच्छा कर सकेगा वहाँका डॉग्डर मेरी मेम साबको! पर वहाँ सस्ते मद्देका सवाल नहीं। कोई साला अच्छा ही न कर सका भैयो। बड़ी दवाइयाँ पिलाई, बड़े-बड़े आले लगवाये पर साली छींक बन्द ही न होवे। अन्तमें भैया, मेम ससुरी लाट साबसे लिपटके बोली कि माई डियर, मुझे गोलीसे मार दो। छींकों सालियोंने तो मुझे फौक्स कर दिया है। लाट भी साला रोने लगा भइयो। अब तू ही बता मेरा प्यारा और कर ही क्या सके थी!

खैर विस्ने ! फिर बड़े-बड़े सिविल सारजेण्टको बुलाये। वो भी खुसकैट होके लौट गये। फिर विसे किसीने ख़बर दीनी कि हज़ूर, आगरेमे मूँगाराम डाँग्डर रहवे हैं, बड़े नामी गिरामी। न हो तो विन्हें भी एक बार बुलाके दीखला दो मेम साबको। लाट साबने भैयो, खट्ट देनी तार और रेडियो कर दीना कि मूँगाराम डाँग्डरको भेजो।

पौंचे साब मूँगाराम ! जाते ही लाटनीकी नाक पकड़ी। दो मिनट देख-भालके मूँगाराम कही : ज़रा एक कैंची मँगा सको हो आप ! लाटनी ससुरी खुसकेट हो गई भैयो। विन्ने कही कहीं नाक तो नहीं काटेगा ये मेरी। और लाट साब भी भैयो, ये ही सोचे कि जो नाक कट गयी तो ये नकटी मेम सालीको लिये-लिये कहाँ-कहाँ घूमूँगा। समझ गया मेरा गैंडा भैयो। विस्ने हँसके कही—मिस्टर लाट साब, आप घबड़ाओ मती। बस ज़रा एक कैंची मँगवा दो खट्ट देनी। लाटका घर भैयो, कैंची आते ही कित्ती देर लगे हो ससुरी कैंचियाँ ही कैंचियाँ आ गयीं। मूँगारामने क्या कीना भैयो, कि नाकमें कैंची डालके एक बाल खैंच लीना और सबको दिखाके कहीं—ये तो साब, ये छींक निकल आयी। बात ऐसी थी कि ये साँस लेवे थीं तो बाल भी ऊपरको चढ़े था इसीसे ये छींकें आवे थीं ससुरो।

पुकार पड़ गई भैयो, अरे बारे डाँग्डर मूँगाराम, क्या कहने हैं। सब इखबारोंमें विस्की फोटो छप गई भैयो, और लाट साबने मूँगारामको पट्ट देनी रायबहादुर बना दीना।'

लाला मूलचन्द कुछ ऊबकर बोले—'बड़ा डाक्टर था तो अलबत। पर चाहे जो कह लो, ये तो कुछ डाक्टरी नहीं हुई लाला। ये तो हज्जामों-का काम हुआ। नाकका बाल काटके फेक दीना, बस, इसमें कोई दवा-दारू बिन्ने थोड़ी दीनी जो डाक्टरी होती।'

'ज़रा सुनो तो जरा इनकी बातें सुनो भैया, लाला मूलचन्दकी। कहैवें हैं, डाँग्डरी ही नइं, हुई ये। अरे तो बिनका मुक़ाबला क्या तुम्हारा

ये दो कौड़ीका मेवालाल करेगा ससुरा खुसकैट ? दुनिया भरके डाग्डर तो आके विस्के पैर छू गये। ह्याँ ताजबीबीके रौजेपर ससुरी गाडन पाल्टी कीनी—चाह और शराब और सोडा पिलाया म्हराज। और तुम कही हो कि डाँग्डर ही नहीं था वो। यों कहो मूलचन्द कि गाहक भगवानका रूप होवे है, नहीं तो म्हाराज—भैयो, मिश्टर मूँगाराम डाँक्टर रायबहादुर, एक बार कलकत्ते तशरीफ़ ले गये। कलकत्ता ससुरा बडा मुलक, छाजा-बाजाके, यही बंगला देसका। व्हाँ पै एक रहीस था ससुरा बंगाली मासा। अटक गई सालेके गलेमें कहीं मछली, रात दिन हाय-हाय चीखे। मिश्टर मूँगाराम डाँग्डरने जाते हों विसे तरकैट कर दीना।

अब ससुरा हुआ क्या भैया, कि वहीं कलककत्तेमें एक बंगालचा पानी-के साथ कनखजूरा पी गया था। और कनखजूरा विसकी आँतोंमे चिपकके बैठ गया। हर घड़ी मजेमें आँतोंसे माँस नोंच-नोंचके खाय और तरकैट बने साला। इधर वो बंगाली बाबू दिनपर दिन खुसकैट होता चला जाय। बड़े-बड़े इलाज कराये साब विस्ने पर वो अच्छा ही न होवे। एक दिन विचारा बड़े बाजारमें खड़ा-खड़ा रो रहा था। इत्तेमें मिस्टर मूँगाराम डाँग्डर टमटम पै सैर करनेको निकले। किसीने बता दीना कि मूँगाराम जा रहे हैं। वैसे ही फीस तो इन्होंकी बड़ी डबल है पर मिनटोंमें चंगा कर सके हैं। बंगाली बाबू ग़रीब हो गया था इसी बीमारीके पीछे विसके पास फीसके रूपें कहाँ थे। पर विसे भी सालेको जाने क्या सूझी कि आव देखा न ताव, खट्ट देनी जाके विन्होंकी टमटमके अगाड़ी लेट गया। सहीसने घबड़ाकी रास खैंची और विसे डाँटके कही कि अबे, क्यों जान दे रहा है, खुसकैट ! पर वो माने ही नहीं। बोला : 'अब तो डाँग्डर मूँगाराम ही मेरी बाँह पकड़ तो उठ सकूँ हूँ नहीं तो मर तो रह्या ही हूँ। बड़ी भीड़ें जमा हो गयी थीं चारों तरफ़। डाँग्डर मूँगाराम साब टमटमसे उतरे भैयो। विन्ने कहीं, क्यों भई क्या बात है ?

बंगाली बाबूने खट्टसे विनके पैर पकड़ लीने और हाथ जोड़के कही—

'यों यो हाल है मेरा ग़रीब परवर। आज छः महीने हो गये, क्या हो गया है, मेरे पेटमें जैसे आरी चले है दिन-रात, और मैं तड़पूँ हूँ साब इसीमें। बाप-दादोंकी जो कुछ थोड़ी-भौत पूँजी थी सा सब साली इसी बीमारीमें फौक्स कर दीनी। पर कुछ भी नहीं हुआ। साब मै तो मर रह्या हूँ।'

ये कहके वो रोने लगा, भैयो!

मूँगारामने कही—'तो फिर अस्पताल जाओ।'

विस्ने कही कि सारी दुनिया तो दौड़ आया साब। अब तो आपीकी सरनमे हूँ। 'कहो तो जिन्दा रहूँ कहो तो मर जाऊँ।'

चार आदमी और विसकी सिफारस करने लगे कि हज़ूर, आपका जस गायगा। दया करा दो इस पै। विचारा बड़ा दु:खी रहवे है।

डाँग्डर मूँगारामको भी भैयो, कुछ दया आ गयी। अरे हाँ, बिन्ने सोची भैयो, हज़ारों अमीरों-रहीसोंसे लाखों-करोड़ों कमाऊँ हूँ एकको यों ही सही। जब तक जिएगा जस गायेगा। ये सोचके बिन्ने कही अच्छा, छिपकली लाओ पकड़के और एक गोस्तकी गोली।

फौरन साब दौड़के गया और दोनों चीज़ें लाके हाजर कीनी। अब मूँगारामने विस बंगालीकी आँखोंमें पट्टी बँधवाई। फिर विससे कही अच्छा, अब तू नेक म्हों फाड़ दे। विन्ने साब गप्प देनी म्हों फाड़ दीना।

मूँगाराम डाँग्डरने क्या करी कि वो गोस्तकी गोली जो थी सो विसके म्होंमें रख दीनी और छिपकली म्हाराज अपना सिकार लेने लपकी और फट्ट देनी पेटके अन्दर। तिलमिला गया भैयो बंगालचा साला। और चार आदमी भी हाहाकार मचा उठे कि अरे, ये क्या कीना मूँगाराम डाँग्डरने, विसके पेटमें छिपकली उतार दीनी। अब ईत्तेमें क्या हुआ भैयो, कि छिपकलीने आतोंमें पौंचके ससुरे कनखजूरेको पकड़ा। बड़ा ज़ोर लगाया साब विस्ने—महीनोंसे चिपका हुआ था साला छोड़े ही नहीं।—अन्तमें साब छिपकलीने भी ज़ोर लगाया और विसे खैंचके म्होंमें रख लीनी।

दरदके मारे बंगाली मासा बेहोस होके गिर पड़ा साला। लोगोंने समझी कि मर गया। सब लोग मूँगाराम डाँग्डरको घेरके खड़े हो गये और कहने लगे, तुम मूँगाराम डाँग्डर होगे तो साले अपने घरके होगे। तुमने हमारे बंगाली मासाको मार क्यों डाला? मूँगारामने डाँटके कही—नेक खड़े रहो, अभी देखो क्या होवे है। इत्तेमें साब वो छिपकली जो थी सो कनखजूरेको दबाये बंगाली बाबूके म्होंसे बाहर कूदी।

मूँगारामने सबको दिखाके कही देखो, इसके पेटमें कनखजूरा था, इसी कारन से यु खुसकँट हो रह्या था। समझे ? अब ये छिपकली इसे निकाल लाई।—जाओ फलानी दवाई ले आओ, दौड़के। मै अभी गैंडा बनाये दूँ सालेको।

छिन भरमें दवाई पिलाके सालेको ऐसा तरकेट कर दीना कि साला लुप्प देनी खड़ा होके भूख-भूख चिल्लाने लगा। भूखा बंगाली मसहूर होवे है भैयो,—सालेने पसेरी भर पूड़ियाँ खाके फिर गैंडे ऐसी डेकार लीनी।

तो ऐसे थे मूँगाराम डाँग्डर। रायबहादुर थे म्हराज। सिविन लैन पे कोठी है बिन्होकी। क्या समझे लाला मूलचन्द !'

लाला मूलचन्द डाक्टर मूँगारामसे अब अच्छी तरह प्रभावित हो गये दीखते थे, बोले—'हाँ-हाँ साब ! बड़े भारी डाँग्डर थे मूँगाराम। बड़े नाम थे विन्होके। मैंने भी अपने लड़कपनमें विनकी भौत धूम सुनी थी। और ये जो मेवालाल है न लाला, ये विन्होंका ही तो सागिरद है। दवाखानेमें फूलोंका हार डालके तस्वीर लटका रक्खी है मूँगारामकी।'

सेठ बाँकेमलको भी अब जैसे मेवालालकी योग्यतापर भरोसा हो गया, बोले, 'हाँ-हाँ, साब काबल क्यों नहीं होगा। भलो जे भी कोई बात है। बड़े झण्डे गाड़ रक्खे हैं, मेवालालने तो। आजकल अपने उस्तादका इबकाल दूना कर रहा है। गुरू गुड़ हो रह गये, चेला ससुरा सक्कर हुआ जाय है। हें हें हें।

हँसते हुए सेठ पान लगाने बैठे। लाला मूलचन्द दुपट्टा सँभालके पलथी

बदलते हुए बोले—'और कहो लालाजी, कैसा बाजार है आजकल। ये लड़ाईके कारन लोगबागोंकी जेबें साली फौक्स हो रही हैं। अबके सहालग भी कच्ची रही गुरू—आइए हुजूर। आइए साब कम-कम। सिट् डौन् साब। अरे लल्लू साबके ताईं कुरसी रक्खो जल्दीसे।'

लल्लूने फौरन् ही कोठरीसे दो लोहेकी कुरसियाँ निकाल कर रक्खीं। पंजाबी साहब और मेम साहब वहाँ बैठ गये।

दाढ़ी और प्रेम

●

कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब'

कभी आपने दाढ़ी बढ़ते देखा है ? अभी आज आपने सेवनोक्लाकसे ख़ूब चेहरेको सिमेण्टकी गचके समान रगड़कर चिकना बनाया। कल सबेरे कटे हुए अरहरके खेतके समान खूटियाँ निकल आयीं। कब निकलीं इसका पता नहीं। जिस प्रकार दाढ़ीका निकलना कोई नहीं देख सकता अनायास किसी सचेतन भावकी जागृतिके बिना नव विकसित कदम्बके फूलके समान कच प्रस्फुटित हो जाता है उसी प्रकार किसी तैयारीके बिना, किसी निर्देशकके बिना प्रेम उत्पन्न हो जाता है। कल दोपहर तक आप भले चंगे थे। दिनको कढ़ी बननेके कारण एक रोटी अधिक भी खायी थी। लेटे भी अच्छी तरह थे, तीन बजे चाय पी, उसमें चीनी कम थी। इसका भी अनु-

भव आपको हुआ। सन्ध्याको बाहरसे घूमकर आप आये, बैठे-बैठाये प्रेम हो गया। भूख ही नहीं है। बढ़िया कटहलकी तरकारी बनी है, थालीमें बाग़-बाज़ारके दो रसगुल्ले भी हैं किन्तु एक पूरीसे अधिक आप खा नहीं सके। आपको यह ख़्याल नहीं है कि कुरता आपने कहाँ उतारा और उसमें-के पैसे गिर पड़े कि ज्योंके-त्यों हैं। पहले तो आप हिन्दू जातिके समान चिन्तामुक्त होकर सोते थे। अब तो नींद ही नहीं आ रही है। कभी आप छतकी कड़ियाँ गिनते हैं, कभी चादरकी शिकन गिनते हैं, कभी अलजबराके प्रश्न हल करने लगते हैं।

दाढ़ी और प्रेममें इतना ही साम्य नहीं है। आरम्भमें दाढ़ी काली रहती है। प्रेम भी यौवनमें वासनापूर्ण होता है। यौवन प्रेमका अन्तिम ध्येय वासनाके अतिरिक्त और क्या हो सकता है। कम-से-कम पार्थिव प्रेम तो होता ही है! कदाचित् शुक ऐसा कोई युवक संसारमे हो जो प्रारम्भसे ही दैहिक भोग-विलासकी ओर दृष्टिपात न करता हो। इसलिए हमे दाढ़ी और प्रेममे बड़ी समता दिखाई देती है। और यह समता यहीं नहीं समाप्त होती। ज्यों-ज्यों दाढ़ी समयके पथपर बढ़ती जाती है उसका कालापन दूर हो जाता है और कृष्णपक्ष समाप्त होकर शुक्लपक्षके सुधाकरके समान उसमे प्रकाशकी किरणें फूटती हैं। उसी प्रकार प्रेमपर भी ज्यों-ज्यों पुरातन-पनकी मुहर लग जाती है वह धुलता जाता है और वह लौकिक प्रेमसे उठकर देश-प्रेम, विश्व-प्रेम भगवद्भक्तिकी ओर उन्मुख होता जाता है। प्रेम भी समयकी ग़ति पाकर उज्ज्वल हो उठता है। यदि वह क्षणिक वासनाका ज्वर न हुआ तो जिस प्रकार, यौवनकी झरबेरीकी झाड़ी समान दाढ़ी प्रौढ़ावस्थामें रेशमके लच्छेके समान कोमल हो जाती है और उसी प्रकार प्रेम भी लौकिक धरातलसे उठकर ऐश्वरीय, नैसर्गिक बन जाता है।

कुछ ऐसा जान पड़ता है कि दाढ़ी रखनेवालोंकी ईश्वरसे अधिक निकटता होती है। भक्ति—(जो प्रेम-रसकी ही गाढ़ी चाशनी है—) और दाढ़ीका गहरा सम्बन्ध है। अच्छी दाढ़ी रखनेवाले भक्त जीव होते हैं।

इसमें उन लोगोंको छोड़ दीजिए जो शौकिया दाढ़ी रखते हैं और उसे अनेक कोनोंसे अनेक रूपोंमें काट-छाँटकर ठीक करते हैं। बाबा नानक बड़े भक्त थे इसमें किसको सन्देह हो सकता है? रविबाबू, सी० एफ० एंड्रूज़, डाक्टर भगवानदासकी ईश्वर-भक्तिमें किसको सन्देह हो सकता है? यह अनर्थ नहीं समझना चाहिए कि जो लोग दाढ़ी नहीं रखते वह भक्त नहीं होते। कहनेका तात्पर्य यह है कि दाढ़ी और प्रेममें अवश्य घना सम्बन्ध है। जो लोग स्वाभाविक रूपसे दाढ़ी रखते हैं वह स्वाभाविक भक्त भी होते है।

दाढ़ी और प्रेममें एक और सादृश्य है। दाढ़ी आज बना दीजिए। कल फिर मौजूद। उसी प्रकार प्रेम भी होता है। प्रेम नहीं मिट सकता। प्रेमकी जड़ ज्यों-ज्यों काटिये वह नये सिरेसे जमने लगता है। अंग्रेज़ीमें प्रेमको ईश्वर कहा गया है। ईसाई लोग कहा करते हैं "गाड इज़ लव"। इसलाम धर्मके माननेवाले कहा करते है कि दाढ़ी भी अल्लामियाँकी नूर है, ज्योति है। दाढ़ी अल्लामियाँ नहीं तो उसकी रोशनी ही सही। कुछ तो सही। इसीलिए यहाँ भी दाढ़ी प्रेम ही का स्वरूप हो गयी। स्त्रियोंको दाढ़ी नहीं होती इसीलिए उनके प्रेममें चंचलता होती है।

इसके लिए कोई प्रमाण तो मैं नहीं दे सकता किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि दाढ़ी रख लेनेसे हृदयका प्रेम बाहर निकल पड़ता है। यदि महात्मा गांधी और श्रीयुत् जिना दाढ़ी रख लेते तो भारतकी समस्या हल हो जाती। दोनोंमें प्रेम हो जाता। सारा झगड़ा मिट जाता। कुछ लोगोंकी धारणा है कि दाढ़ी इसलामका प्रतीक है। यह धारणा मिथ्या है। राजा दशरथ और राजा जनकको तो दाढ़ियाँ थीं हीं। जिन लोगोंने देखा है उनका कहना है कि ब्रह्माको भी दाढ़ी है। इसलिए इसपर मुसलमानोंका आधिपत्य नहीं हो सकता। हाँ यह कहा जा सकता है कि अधिक मुसलमान दाढ़ी रखते हैं इसलिए उनमें अधिक प्रेम है।

जिन लोगोंको प्रेममें असफलता मिली हो वह दाढ़ी रखकर परीक्षा

करें कि क्या होता है। बहुत सम्भव है कि उन्हें सफलता मिल जाय। दाढ़ीका इतना महत्त्व होते हुए किसी कविने प्रशंसा नहीं की। महाकाव्य तो क्या खण्डकाव्य भी नहीं, एक गीत नहीं, एक प्रगीत नहीं, एक सवैया या एक दोहा भी नहीं लिखा। इतने महत्त्वकी वस्तु और विद्वानों द्वारा इतनी उपेक्षा ! भ्रातृभावके सिद्धान्तोंके लिए शूलीपर चढ़ जानेवाले ईसा-मसीहने दाढ़ी रखी। इसी कारण वह इतने बड़े हो सके। बुद्धका धर्म भारतमे क्यों नहीं पनप सका क्योंकि बोधिसत्त्व प्राप्त होनेके पश्चात् ही उन्होंने पाटलिपुत्रसे एक नाई बुलवाकर अपनी दाढ़ी बनवा ली। कुछ लोग कहेंगे कि संन्यासियोंके लिए तो दाढ़ी वर्जित है। उन्हें तो संसार ही वर्जित है। मैं तो उन लोगोंकी बातें कर रहा हूँ जो संसारमें रहते हैं, संसारके हैं। ऐसे पुरुषोंके बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिन्होंने दाढ़ी नहीं रखी किन्तु संसारमें सफल हुए। सो तो सम्भव है। किन्तु दाढ़ी रखकर कोई असफल हुआ ऐसा उदाहरण कहाँ मिलेगा। यदि ऐसा कोई हो भी तो पहले यह देखना चाहिए कि उसकी दाढ़ी बनावटी तो नहीं है, या उसने ज़बरदस्ती तो दाढ़ी नहीं रख ली है। मनसे नहीं रखी होगी। पता लगाइए। दाढ़ी बाल ही नहीं, बल है और सबल है।

मुग़लोंने सल्तनत बख़्श दी

•

भगवतीचरण वर्मा

हीरोजीको आप नहीं जानते, और यह दुर्भाग्यकी बात है। इसका यह अर्थ नहीं कि केवल आपका दुर्भाग्य है, दुर्भाग्य हीरोजीका भी है। कारण? वह बड़ा सीधा-सादा है। यदि आपका हीरोजीसे परिचय हो जाय तो आप निश्चय समझ लेंगे कि आपका संसारके एक बहुत बड़े विद्वान्से परिचय हो गया है। हीरोजीको जाननेवालोंमें अधिकांशका मत यह है कि हीरोजी पहले जन्ममें विक्रमादित्यके नव-रत्नोंमें एक अवश्य रहे होंगे और अपने किसी पापके कारण उनको इस जन्ममें हीरोजीकी योनि प्राप्त हुई। अगर हीरोजीका आपसे परिचय हो जाय, तो आप यह समझ लीजिए कि

उन्हें एक मनुष्य अधिक मिल गया, जो उन्हें अपने शोकमें प्रसन्नतापूर्वक हिस्सा दे सके।

हीरोजीने दुनिया देखी है। यहाँ यह जान लेना ठीक होगा कि हीरोजी की दुनिया मौज और मस्तीकी ही बनी है। शराबियोंके साथ बैठकर उन्होंने शराब पीनेकी बाजी लगायी है और हरदम जीते हैं। अफीमके आदी नहीं हैं पर अगर मिल जाय तो इतनी खा लेते है जितनीसे एक खानदानका खानदान स्वर्गकी या नरककी यात्रा कर सके। भंग पीते है तब तक, जब तक उनका पेट न भर जाय। चरस और गाँजेके लोभमें साधू बनते-बनते बच गये। एक बार एक आदमीने उन्हें संखिया खिला दी, इस आशासे कि संसार एक पापीके भारसे मुक्त हो जाय, पर दूसरे ही दिन हीरोजी उसके यहाँ पहुँचे। हँसते हुए उन्होंने कहा, 'यार कलका नशा नशा था। राम दुहाई, अगर आज भी वह नाश्ता करवा देते, तो तुम्हें आशीर्वाद देता। लेकिन उस आदमीके पास संखिया मौजूद न थी।'

हीरोजीके दर्शन प्रायः चायकी दूकानमे हुआ करते थे। जो पहुँचता है वह हीरोजीको एक प्याला चायका अवश्य पिलाता है। उस दिन जब हम लोग चाय पीने पहुँचे तो हीरोजी एक कोनेमें आँखें बन्द किये हुए बैठे कुछ सोच रहे है। हमलोगोंमें बातें शुरू हो गयी और हरिजन आन्दोलनसे घूमते-फिरते बात आ पहुँची दानवराज बलिपर। पण्डित गोवर्द्धन शास्त्रीने आमलेटका टुकड़ा मुँहमें डालते हुए कहा—'भाई यह तो कलियुग है। न किसीमें दीन है न ईमान। कौड़ी-कौड़ीपर लोग बेईमानी करने लग गये हैं। अरे, अब तो लिखकर भी लोग मुकुर जाते हैं। एक युग था, जब दानव तक अपने वचन निभाते थे, सुरों और नरोंकी तो बातें ही छोड़ दीजिए। दानवराजने वचनबद्ध होकर सारी पृथिवी दान कर दी थी। पृथिवी ही काहेको, स्वयं अपनेको भी दान कर दिया था।'

हीरोजी चौंक उठे। खाँसकर उन्होंने कहा—'क्या बात है? ज़रा फिरसे तो कहना।'

सब लोग हीरोजीकी ओर घूम पड़े। कोई नयी बात सुननेको मिलेगी इस आशासे मनोहरने शास्त्रीजीके शब्दोंको दुहरानेका कष्ट उठाया—'हीरोजी, ये गोवर्धन शास्त्री जो हैं सो कह रहे हैं कि कलियुगमें धर्म-कर्म सब लोप हो जायगा। त्रेतामें तो दैत्य बलि तकने अपना सब कुछ केवल वचनबद्ध होकर दान दिया था।'

हीरोजी हँस पड़े। 'हाँ, तो यह गोवर्द्धन शास्त्री कहनेवाले हुए और तुम लोग सुननेवाले, ठीक ही है। लेकिन हमसे सुनो, यह तो कह रहे हैं त्रेताकी बात। अरे, तब तो अकेले बलिने ऐसा कर दिया था, लेकिन मैं कहता हूँ कलियुगकी बात। कलियुगमे तो एक आदमीकी कही हुई बात-को उसकी सात-आठ पीढ़ी तक निभाती गयी और यद्यपि वह पीढ़ी स्वयं नष्ट हो गई, लेकिन उसने अपना वचन नहीं तोड़ा।

हम लोग आश्चर्यमें आ गये। हीरोजीकी बात समझमें नहीं आई। पूछना पड़ा—'हीरोजो, कलियुगमें किसने इस प्रकार अपने वचनोंका पालन किया?'

'लौंडे हो न!' हीरोजीने मुँह बनाते हुए कहा—'जानते हो मुग़लोंकी सल्तनत कैसे गयी?'

'हाँ, अँग्रेज़ोंने उनसे छीन लिया।'

'तभी तो कहता हूँ कि तुम सब लोग लौंडे हो। स्कूली किताबोंको रट-रट बन गये लिखे-पढ़े आदमी। अरे, मुग़लोंने अपनी सल्तनत अंग्रेज़ोंको बख्श दी।'

हीरोजीने यह कौन-सा नया इतिहास बनाया। आँखें कुछ अधिक खुल गईं। कान खड़े हो गये। मैंने कहा—'सो कैसे?'

'अच्छा तो फिर सुनो।' हीरोजीने आरम्भ किया—'जानते हो शाहं-शाह शाहजहाँकी लड़की शाहजादी रोशनआरा एक दफ़े बामार पड़ी थी। और उसे एक अँग्रेज़ डाक्टरने अच्छा किया था। उस डाक्टरको शाहंशाह

शाहजहाँने तिजारत करनेके लिए कलकत्तेमें कोठी बनानेकी इजाज़त दे दी थी।

'हाँ, यह तो हम लोगोंने पढ़ा है।'

'लेकिन असल बात यह है कि शाहज़ादी रोशनआरा—वही शाहंशाह शाहजहाँकी लड़की—हाँ, वही शाहज़ादी रोशनआरा एक दफ़े जल गई। अधिक नहीं जली थी। अरे हाथमे थोड़ा-सा जल गई थी, लेकिन जल तो गई थी और ठहरी शाहज़ादी। बड़े-बड़े हकीम और वैद्य बुलाये गये। इलाज किया गया, लेकिन शाहज़ादीको अच्छा कौन कर सकता था? सो कोई न कर सका—न कर सका। वह शाहज़ादी थी न! सब लोग लगाते थे लेप, और लेप लगानेसे होती थी जलन। और तुरन्त शाहज़ादी धुलवा डालती उस लेपको। भला शाहज़ादीको रोकनेवाला कौन था। अब शाहंशाह सलामतको फ़िक्र हुई! लेकिन शाहज़ादी अच्छी हो तो कैसे? वहाँ तो दवा असर करने ही न पाती थी।

उन्हीं दिनों एक अंगरेज़ घूमता-घामता दिल्ली आया। दुनिया देखे हुए, घाट-घाटका पानी पिये हुए, पूरा चालाक और मक्कार! उसको शाहज़ादीकी बीमारीकी खबर लग गई। नौकरोंको घूस देकर उसने पूरा हाल दरियाफ़्त किया। उसे मालूम हो गया कि शाहज़ादी जलनकी वजहसे दवा धुलवा डाला करती हैं। सीधे शाहंशाह सलामतके पास पहुँचा। कहा कि डाक्टर हूँ। शाहज़ादीका इलाज उसने अपने हाथमें ले लिया। उसने शाहज़ादीके हाथमें एक दवा लगाई। उस दवासे जलन होना तो दूर रहा, उलटे जले हुए हाथमें ठण्ढक पहुँची। अब भला शाहज़ादी उस दवाको क्यों धुलवाती? हाथ अच्छा हो गया। जानते हो वह दवा क्या थी?'' हम लोगोंकी ओर भेदभरी दृष्टि डालते हुए हीरोजीने पूछा।

'भाई, हम दवा क्या जानें?' कृष्णानन्दने कहा।

'तभी तो कहते हैं कि इतना पढ़-लिखकर भी तुम्हें तमीज़ न आई।

अरे वह दवा थी वैसलीन—वही वैसलीन, जिसका आज घर-घरमें प्रचार है।'

'वैसलीन ! लेकिन वैसलीन तो दवा नहीं होती।'—मनोहरने कहा।

'कौन कहता है कि वैसलीन दवा होती है ? अरे उसने हाथमें लगा दी वैसलीन और घाव आप-ही-आप अच्छा हो गया। वह अंगरेज़ बन बैठा डाक्टर—और उसका नाम हो गया। शाहंशाह शाहजहाँ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस फिरंगी डाक्टरसे कहा—माँगो। उस फिरंगीने कहा—हुज़ूर मैं इस दवाको हिन्दुस्तानमें रायज करना चाहता हूँ। इसलिए हुज़ूर मुझे हिन्दुस्तानमे तिजारत करनेकी इजाज़त दे दें। बादशाह सलामतने जब यह सुना कि डाक्टर हिन्दुस्तानमे इस दवाका प्रचार करना चाहता है, तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—मंजूर ! और कुछ माँगो। तब उस चालाक डाक्टरने जानते हो क्या माँगा ? उसने कहा—हुज़ूर, मैं एक तम्बू तानना चाहता हूँ, जिसके नीचे इस दवाके पीपे इकट्ठे किये जावेंगे। जहाँपनाह यह फ़रमा दें कि उस तम्बूके नीचे जितनी ज़मीन आवेगी, वह जहाँपनाहने फिरंगियोंको बख्श दी। शाहशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, उन्होंने सोचा, तम्बूके नीचे भला कितनी जगह आवेगी। उन्होंने कह दिया—मंजूर।

हाँ, तो शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, छल-कपट उन्हें आता न था। और वह अंगरेज़ था दुनिया देखे हुए। सात समुद्र पार करके हिन्दुस्तान आया था न ! पहुँचा विलायत, वहाँ उसने बनवाया रबड़का एक बहुत बड़ा तम्बू और जहाजपर तम्बू लदवाकर चल दिया हिन्दुस्तान। कलकत्तेमे उसने वह तम्बू लगवा दिया। वह तम्बू कितना ऊँचा था, इसका अन्दाज़ा आप नही लगा सकते। उस तम्बूका रंग नीला था। तो जनाब वह तम्बू लगा कलकत्तेमें, और विलायतसे पीपेपर पीपे लद-लदकर आने लगे। उन पीपोंमें वैसलीनकी जगह भरा था एक-एक अंगरेज़ जवान, मय बन्दूक़ और तलवारके। सब पीपे तम्बूके नीचे रखवा दिये गये। जैसे-जैसे

पीपे ज़मीन घेरने लगे, वैसे-वैसे तम्बूको बढ़ा-बढ़ाकर ज़मीन घेर दी गई। तम्बू तो रबड़का था न, जितना बढ़ाया, बढ़ गया। अब जनाब तम्बू पहुँचा पलासी। तुम लोगोंने पढ़ा होगा कि पलासीका युद्ध हुआ था। अरे सब झूठ है। असलमे तम्बू बढ़ते-बढ़ते पलासी पहुँचा था, और उस वक़्त मुग़ल-बादशाहका हरकारा दौड़ा था दिल्ली। बस यह कह दिया गया कि पलासी-की लड़ाई हुई। जी हाँ, उस वक़्त दिल्लीमे शाहंशाह शाहजहाँकी तीसरी या चौथी पीढ़ी सल्तनत कर रही थी। हरकारा जब दिल्ली पहुँचा, उस वक़्त बादशाह सलामतकी सवारी निकल रही थी। हरकारा घबराया हुआ था। वह इन फिरंगियोंकी चालोंसे हैरान था। उसने मौक़ा देखा न महल, वहीं सड़कपर खड़े होकर उसने चिल्लाकर कहा—जहाँपनाह ग़ज़ब हो गया। ये बदतमीज़ फिरंगी अपना तम्बू पलासीतक खींच लाये है और चूँकि कलकत्तेसे पलासी तककी ज़मीन तम्बूके नीचे आ गई है, इसलिए इन फिरंगियोने उस ज़मीनपर कब्ज़ा कर लिया है। जो इनको मना किया तो इन बदतमीज़ोंने शाही फरमान दिखा दिया। बादशाह सलामतकी सवारी रुक गयी थी। उन्हे बुरा लगा। उन्होंने हरकारेसे कहा—म्याँ हरकारे, मैं कर ही क्या सकता हूँ। जहाँतक फिरगियोंका तम्बू घिर जाय, वहाँतककी ज़मीन उनकी हो गई, हमारे बुजुर्ग यह कह गये है। बेचारा हरकारा अपना-सा मुँह लेकर वापस गया।

हरकारा लौटा, और इन फिरंगियोंका तम्बू बढ़ा। अभीतक तो आते थे पीपोंमे आदमी, अब आने लगा तरह-तरहका सामान। हिन्दुस्तानका व्यापार फिरगियोंने अपने हाथमे ले लिया। तम्बू बढ़ता ही रहा और पहुँच गया बक्सर। इधर तम्बू बढ़ा और उधर लोगोंकी घबराहट बढ़ी। यह जो किताबोंमें लिखा है कि बक्सरकी लड़ाई हुई, यह ग़लत है। भाई, जब तम्बू बक्सर पहुँचा, तो फिर हरकारा दौड़ा।

अब ज़रा बादशाह सलामतकी बात सुनिए। वह जनाब दीवान ख़ासमें तशरीफ़ रख रहे थे। उनके सामने सैकड़ों, बल्कि हज़ारों मुसाहब बैठे थे।

बादशाह सलामत हुक्का गुड़गुडा रहे थे—सामने एक साहब जो शायद शायर थे, कुछ गा-गाकर पढ रहे थे और कुछ मुसाहब गला फाड़-फाड़कर 'वाह, वाह' चिल्ला रहे थे। कुछ लोग तीतर और बटेर लड़ा रहे थे। हरकारा जो पहुँचा तो यह सब बन्द हो गया। बादशाह सलामतने पूछा—म्याँ हरकारे, क्या हुआ—इतने घबराये हुए क्यों हो ? हाँफते हुए हरकारेने कहा—जहाँपनाह, इन बदजात फिरंगियोंने अन्धेर मचा रक्खा है। वह अपना तम्बू बक्सर तक खींच लाये। बादशाह सलामतको बड़ा ताज्जुब हुआ। उन्होंने अपने मुसाहबोसे पूछा—मियाँ, हरकारा कहता है कि फिरंगी अपना तम्बू कलकत्तेसे बक्सर तक खींच लाये। यह कैसे मुमकिन है ? इसपर एक मुसाहबने कहा—जहाँपनाह, ये फिरंगी जादू जानते हैं, जादू ! दूसरेने कहा—जहाँपनाह इन फिरगियोंने जिन्नात पाल रक्खे है—जिन्नात सब कुछ कर सकते है। बादशाह सलामतकी समझमे कुछ आया नहीं। उन्होंने हरकारेसे कहा—म्याँ हरकारे, तुम बतलाओ यह तम्बू किस तरह बढ आया। हरकारेने समझाया कि तम्बू रबड़का है। इसपर बादशाह सलामत बड़े खुश हुए। उन्होंने कहा—ये फिरंगी भी बड़े चालाक हैं, पूरे अक़लके पुतले हैं। इसपर सब मुसाहबोंने एक स्वरमे कहा—इसमे क्या शक़ है, जहाँपनाह बजा फ़रमाते हैं। बादशाह सलामत मुसकाये—अरे भाई किसी चोबदारको भेजो, जो इन फिरंगियोंके सरदारको बुला लावे। मैं उसे खिलअत दूँगा। सब मुसाहब कह उठे—बल्लाह जहाँपनाह एक ही दरयादिल हैं—इस फिरंगी सरदारको ज़रूर खिलअत देनी चाहिए। हरकारा घबड़ाया। वह आया था शिकायत करने, वहाँ बादशाह सलामत फिरंगी सरदारको खिलअत देनेपर आमादा थे। वह चिल्ला उठा—जहाँपनाह ! इन फिरंगियोंने जहाँपनाहकी सल्तनतका एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने तम्बूके नीचे करके उसपर कब्जा कर लिया है। जहाँपनाह ये फिरंगी जहाँपनाहकी सल्तनत छीननेपर आमादा दिखाई देते हैं। मुसाहब चिल्ला उठे—ऐं, ऐसा गज़ब ? बादशाह सलामतकी मुसकराहट ग़ायब हो गयी।

थोड़ी देर तक सोचकर उन्होंने कहा—मैं क्या कर सकता हूँ ? हमारे बुज़ुर्ग इन फिरंगियोंको उतनी जगह दे गये है, जितनी तम्बूके नीचे आ सके। भला मैं उसमे कर ही क्या सकता हूँ। हाँ, फिरंगी सरदारको खिलअत न दूँगा। इतना कहकर बादशाह सलामत फिरंगियोकी चालाकी अपनी बेगमातसे बतलानेके लिए हरमके अन्दर चले गये। हरकारा बेचारा चुपचाप लौट आया।

जनाब उस तम्बूने बढना जारी रक्खा। एक दिन क्या देखते हैं कि विश्वनाथपुरी काशीके ऊपर वह तम्बू तन गया। अब तो लोगोंमे भगदड़ मच गई। उन दिनों राजा चेतसिह बनारसकी देखभाल करते थे। उन्होंने उसी वक़्त बादशाह सलामतके पास हरकारा दौड़ाया। वह दीवान-ख़ासमें हाजिर किया गया। हरकारेने बादशाह सलामतसे अर्ज़ की कि वह तम्बू बनारस पहुँच गया है और तेज़ीके साथ दिल्लीकी तरफ आ रहा है। बादशाह सलामत चौंक उठे। उन्होंने हरकारेसे कहा—तो म्याँ हरकारे, तुम्हीं बतलाओ, क्या किया जाय? वहाँ बैठे हुए दो-एक उमराओंने कहा—जहाँपनाह एक बहुत बड़ी फ़ौज भेज दी जाय। हमलोग जाकर लड़नेको तैयार है। जहाँपनाहका हुक्म भर हो जाय। इस तम्बूकी क्या हक़ीक़त है, एक मर्तबा आसमानको भी छोटा कर दें। बादशाह सलामतने कुछ सोचा, फिर उन्होंने कहा—क्या बतलाऊँ, हमारे बुज़ुर्ग शाहंशाह शाहजहाँ इन फिरंगियोंको तम्बूके नीचे जितनी जगह आ जाय, वह बख़्श गये हैं। बख़्शीशनामाकी रूसे हमलोग कुछ नहीं कर सकते। आप जानते हैं, हमलोग अमीर तैमूरकी औलाद हैं। एक दफा जो ज़बान दे दी, वह दे दी। तम्बूका छोटा कराना तो ग़ैरमुमकिन है। हाँ, कोई ऐसी हिकमत निकाली जाय, जिससे ये फिरगी अपना तम्बू आगे न बढ़ा सकें। इसके लिए दरबार-आम किया जाय और यह मसला वहाँपर पेश हो।

इधर दिल्लीमें तो यह बातचीत हो रही थी और उधर इन फिरंगियोंका तम्बू इलाहाबाद, इटावा ढँकता हुआ आगरे पहुँचा। दूसरा हरकारा

दौड़ा। उसने कहा—जहाँपनाह, वह तम्बू आगरे तक बढ़ आया है। अगर अब भी कुछ नहीं किया जाता, तो ये फिरंगी दिल्लीपर भी अपना तम्बू तानकर कब्जा कर लेंगे। बादशाह सलामत घबराये—दरबार-आम किया गया। सब अमीर-उमरा इकट्ठा हो गये, तो बादशाह सलामतने कहा—आज हमारे सामने एक अहम मसला पेश है। आपलोग जानते हैं कि हमारे बुज़ुर्ग शाहंशाह शाहजहाँने फिरंगियोंको इतनी ज़मीन बख्श दी थी, जितनी उनके तम्बूके नीचे आ सके। इन्होने अपना तम्बू कलकत्तेमे लगवाया था, लेकिन वह तम्बू है रबड़का, और धीरे-धीरे ये लोग तम्बू आगरे तक खींच लाये। हमारे बुज़ुर्गोंसे जब यह कहा गया, तब उन्होंने कुछ करना मुनासिब न समझा, क्योंकि शाहशाह शाहजहाँ अपना कौल हार चुके हैं। हम लोग अमीर तैमूरकी औलाद है और अपने कौलके पक्के है। अब आपलोग बतलाइए क्या किया जाय। अमीरों और मंसबदारोंने कहा—हमे इन फिरंगियोंसे लड़ना चाहिए और इनको सजा देनी चाहिए। इनका तम्बू छोटा करवाकर कलकत्ते भिजवा देना चाहिए। बादशाह सलामतने कहा—लेकिन हम अमीर तैमूरकी औलाद है। हमारा कौल टूटता है। इसी समय तीसरा हरकारा हाँफता हुआ बिना इत्तला कराये ही दरबारमे घुस आया। उसने कहा—जहाँपनाह, वह तम्बू दिल्ली पहुँच गया। वह देखिए, क़िले तक आ पहुँचा। सब लोगोंने देखा। वास्तवमें हज़ारों गोरे खाकी वर्दी पहने और हथियारोंसे लैस, बाजा बजाते हुए तम्बूको क़िलेकी तरफ़ खींचते हुए आ रहे थे। उस वक़्त बादशाह सलामत उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—हमने तै कर लिया। हम अमीर तैमूरकी औलाद हैं। हमारे बुज़ुर्गोंने जो कुछ कह दिया, वही होगा। उन्होंने तम्बूके नीचेकी जगह फिरंगियोंको बख्श दी थी। अब अगर दिल्ली भी उस तम्बूके नीचे आ रही है, तो आवे। मुग़ल सल्तनत जाती है, तो जाय, लेकिन दुनिया यह देख ले कि अमीर तैमूरकी औलाद हमेशा अपने कौलकी पक्की रही है। इतना कहकर बादशाह सलामत मय अपने अमीर-उमराओंके दिल्लीके बाहर हो गये और

दिल्लीपर अंग्रेज़ोंका क़ब्जा हो गया। अब आप लोग देख सकते है, इस कलियुगमें भी मुग़लोंने अपनी सल्तनत बख़्श दी।'

हम सब लोग थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद मैंने कहा—'हीरोजी, एक प्याला चाय और पियो।'

हीरोजी बोल उठे—'इतनी अच्छी कहानी सुनानेके बाद भी एक प्याला चाय? अरे महुवेके ठर्रेका एक अद्धा तो हो जाता।'

कुछ वर्गवाद

•

कुट्टिचातन

वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, मनीषियों और वी० पी० से माल भेजनेवालों—सभीने अपने-अपने ढंगसे मानव-जातिका वर्गीकरण किया और अपने-अपने स्थानपर, अपनी-अपनी सीमाओंके अन्दर, उनके बनाये हुए वर्ग सार्थक भी हो सकते हैं। विज्ञान और दर्शनमे हमारी पहुँच उतनी ही है कि बस—किसीसे पूछा गया कि 'भई, तैरना कितना जानते हो ?' तो बोला कि 'कुछ लोग बिना हाथ-पैर हिलाये डूब सकते हैं, हम डूबनेसे पहले ज़रा हाथ-पैर मार लेंगे।' और जहाँतक वी० पी० मालका प्रश्न है, हमने वी० पी० छुड़ाये ही छुड़ाये हैं और एक-आध तो ऐसा भी छुड़ाया है कि उसमेंसे माल ही नहीं निकला ! फिर भी हमने मोटे तौरपर मानव-जातिको दो वर्गोंमें

बाँटनेका जो भारी आविष्कार किया है, वह इतना भारी है कि उसका गुरुत्व हमीं पहचानते है !

साधारणतया मानव दो प्रकारके होते है : कूकुर-मानव और बिलार-मानव । कहीं आप इन पशु विशेषणोंसे समझें कि हम व्यंग्य कर रहे हैं— तो याद दिला दें कि प्राचीन सामुद्रिकने पुरुष-नारीको जिन चार-चार श्रेणियोंमे बाँटा, वे आठों पशु-श्रेणियाँ ही थीं—तो व्यंग्य तो हर बातमें है ही और हमारा अभिप्राय यह है कि मानवोंमें मूलतः दो प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं—कुछको कुत्ते अच्छे लगते हैं, कुछको बिल्लियाँ । हमे स्वयं दोनों अच्छे लगते है, पर यह निर्णय करनेका कभी मौक़ा नहीं मिला कि यह पसन्द आवर्तित होती रहती है, या कभी दोनों एक साथ भी (और एक जितने) अच्छे लगते है ! यह जिज्ञासा अब भी बनी है, क्योंकि कभी अगर हमने इसकी पड़ताल करनेका प्रयत्न किया भी, तो शोधके साधनोंने योग नहीं दिया—कभी कुत्तेने बिल्लीको खदेड़ दिया, तो कभी बिल्ली ही कुत्तेपर ऐसी खिसियाकर झपटी कि कुत्ता दुमकी लँगोटी लगाता हुआ भाग गया और फिर कभी दीखा नहीं—जैसे नकली साधू जिस मुहल्लेमे उनकी पोल खुल जाय वहाँ फिर कभी नहीं आते !

वैसे अनुमान तो यही है कि दोनों एक साथ शायद ही किसीको अच्छे लगते हैं । समकालीन मुहावरेमे कहे कि लोग या तो कूकुरवादी होते है, या बिलारवादी । सुना है कि अंग्रेज़ लोग कुत्ते भी बहुत पालते हैं और बिल्लियाँ तो इतनी कि इंगलिस्तानमें हर तीन परिवारोंपर दो बिल्लियोंकी पड़त आती है—पर अंग्रेज़ तो समझौतावादी जाति है, इसलिए उसका दृष्टान्त काम नहीं देता !

दोनों मतवादियोके कुछ लक्षण विशिष्ट होते हैं । हमारे एक विश्लेषण-पटु मित्रका दावा है कि पुरानी कहावतको बदल कर यह कहना चाहिए कि 'हमें बता दो कि किसीका कुत्ता (या बिल्ली) कैसा (या कैसी) है, और हम बता देंगे कि वह आदमी कैसा है !'

साधारणतया बिलारवादी अन्तर्मुखी होते हैं। वे चिन्ताशील बहुत होते है, पर अपने हमारे विचारोंकी चर्चा कम करते हैं, और अपनी गति-विधिमें हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकते। उनमें स्नेह करनेकी शक्ति कम हो, ऐसा नही, पर वे प्रदर्शन कम करते है। कुछ उनमे सत्तालोलुप भी होते हैं, और सत्ताकी साधनामे कड़ीसे कड़ी तपस्या कर सकते है। पर साधारणतया उनका सहज संयमित जीवन उनके स्वस्थ आत्मानुशासनका ही परिणाम होता है।

और कूकुरवादी? बहिर्मुखी और प्रगल्भ, संवेदनशील और अपनी संवेदनाओंका असयत प्रदर्शन करनेवाले, सीधे-सादे, अल्प-सन्तोषी प्राणी होते हैं। बातोंमे उन्हे प्रेम होता है, कभी कुछ अच्छी बात कह जाते हैं तो उससे स्वयं इतने प्रभावित हो जाते है कि बार-बार दुहराते है। आपने देखा है कि कुत्ता भी फेंकी हुई गेंद या लकड़ी उठाकर ले आता है तो उसे मालिकके पास रखकर किस अदासे उसके लिए प्रशंसाकी माँग करता है? दाद न मिलनेसे वह अत्यन्त अप्रतिभ हो जाता है!

आप कहीं समझें कि हम कुत्तेके स्वभावका मानवपर आरोप कर रहे हैं, और यह वैसी ही बात हुई कि चुकन्दर खानेसे रक्त बढ़ता है, या कि तोतेकी जीभ खानेसे आदमी बहुत बोलने लगता है। लेकिन यह बात हमारा आविष्कार नहीं है। स्वयं कूकुरवादी कुत्ते और मनुष्यके गुणोंकी तुलना किया करते हैं—और निर्णय भी कुत्तेके पक्षमें दिया करते हैं। ऐसी एक उक्ति प्रसिद्ध है: 'जितना अधिक मैं मानवोंको जानता हूँ, उतना ही मैं कुत्तोंसे प्रेम करता हूँ।' बात गहरी मालूम होती है, और बहरहाल कहनेका ढंग तो चमत्कारपूर्ण है ही—कूकुरवादी इससे कितने प्रसन्न होते हैं, क्या ठिकाना। और बहुत-से लोग जो कुत्तोंसे न मालूम स्नेह करते हैं या नहीं पर मानव-द्वेषी ज़रूर है, इस वाक्यको प्रमाण-वाक्य मानकर चलते है—इसके बाद मानवके पक्षमें सोचनेको कुछ उनके पास रह ही नहीं जाता!

हमें सदैव यह लगा है कि इस कथनकी कुछ पड़ताल करनी चाहिए।

पहला प्रश्न तो यह है कि जब आप कहते है कि आदमीकी निस्बतमें आपको कुत्ता अधिक प्रिय जान पड़ता है, तब 'आदमी' वर्गमे क्या आप अपनेको भी गिन लेते है, या कि विचारककी तटस्थताकी ओट लेकर अपनेको छोड़ देते है ? अगर ऐसा है तो जनाब, आप आत्म-प्रबन्धक हैं, और आदमीसे कुत्तेको अच्छा बतानेका आपका यह स्टंट केवल इसलिए है कि आप अपनेको दोनोंसे अच्छा मानते रह सकें—आपकी बात केवल प्रच्छन्न आत्मश्लाघा है ।

और अगर ऐसा नहीं है, आप अपनेको अलग नहीं रख रहे हैं, और 'मानवको जानने' से अभिप्राय स्वयं अपनेको जाननेसे ही है—यानी अगर आप यह कहना चाहते है कि जितना आप अपनेको जानते है उतना ही आप कुत्तेको अधिक प्रिय समझते है, तो यह आत्मावमाद विनय तो हो सकता है, पर प्रश्न यह रह जाता है कि आप तो कुत्तोंसे प्रेम करते है पर क्या कुत्ते भी आपसे प्रेम करते है ? और यहाँ आकर हम पाते हैं कि यह फिर आत्म-समर्थनका ही एक रूप है । हर आदमी मूलतः अपनेको मजनूँ मानता है, मुहब्बतके नामपर मिट जानेवाला ! जो मनुष्यको अपना प्यार नहीं दे सकते वे इसीपर इतराते है कि हम कुत्तेसे इतनी मुहब्बत करते हैं ।

वास्तवमें मनुष्य है बड़ा अहम्मन्य प्राणी, और कुत्तेकी स्वामिभक्तिका जो इतना बड़ा घटाटोप उसने खड़ा किया है, वह वास्तवमें उसकी अहम्मन्यताका ही प्रतिबिम्ब है । स्वामिभक्ति अर्थात् मेरे प्रति भक्ति ! कर्तव्यनिष्ठा, अर्थात् मेरे प्रति निष्ठा । अगर उसके अहंकी पुष्टि उसके निकट इतना महत्त्व न रखती होती, तो क्या वह इस बातको अनदेखी कर सकता कि बुनियादी मूल्योंमें स्वामिभक्तिसे कहीं अधिक महत्त्व स्वातन्त्र्य प्रेमका है ? दयाके दो टुकड़ोंपर निरन्तर दुम हिलाते पीछे फिरनेवाला कुत्ता महान् है, स्वामिभक्त है, क्योंकि दुत्कारनेपर भी लौट आता है और तलुए चाटता है और बरसों आपके इशारोंपर हाँ-हज़ूर करनेवाला तोता दुष्ट है, नाशुकरा है, क्योंकि कभी भी मौक़ा पाकर उड़ जाता है और फिर आपकी ओर

कानी आँख नहीं देखता ! क्यों साहब, आप ही क्या दुनियाके केन्द्र है कि आपके प्रति लगाव ही जीव मात्रके धर्मकी कसौटी हो जाय ? कुत्तेकी दासत्व-स्वीकृतिको आप आदर्श मानें, बिल्लीकी निस्संगताको अकृतज्ञता, और तोतेके स्वाधीनता-प्रेमको इतना हेय समझें कि विश्वासघातीको आप कहे तोताचश्म—कैसा अन्धेर है।

हम तो तोतेकी निष्ठाको चातककी निष्ठासे कम नही मानते। तोतेको बन्दी रखिए, खिलाइए-पिलाइए, जैसा आप बुलायेंगे बोलेगा। एक दिन पिंजरेसे निकल जाने दीजिए, बस फरट हो जायगा। फिर कहाँका रोटी-चूरमा और कहाँका मिट्ठूपन। सुखदसे-सुखद दासत्व भी जिसके स्वातन्त्र्य-प्रेमको न भरमा सके, वही तो स्वातन्त्र्य-निष्ठ है, नही तो थोड़ी-बहुत लपक-झपक तो साँकलपर बँधा पालतू कुत्ता भी कर लेता है।

और तोतेकी निष्ठा और भी स्पष्ट होकर हमारे सामने आती है जब हम देखते है कि तोता एक ओर अपना सोनेका पिंजरा छोड़कर जाता है, दूसरी ओर निश्चित मृत्युके मुखमे जाता है—क्योंकि जो एक बार बन्दी जीवनमे रह चुका है, उसे फिर तोता-समुदाय स्वीकार नही करता, मार ही डालता है। यह जानते हुए भी कि एक बार दास बनकर रह चुकनेके अपराधपर निश्चय ही मृत्यु-दण्ड मिलेगा, तोता सोनेकी कोलोंके मोहमे न पड़कर स्वातन्त्र्य का ही वरण करता है—क्या यही धर्म नही है ? **स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर-धर्मो भयावहः ?**

वास्तवमें मानवकी अधिकतर मान्यताएँ—मूल्योंके सम्बन्धमें उसकी अवधारणाएँ—वर्गिक चिन्तनका परिणाम होती हैं—चिन्तनका नहीं तो भावनाओंका कह लीजिए। कुछ तो यह मानवकी सहज दुर्बलता है कि कोटियों-श्रेणियोंमें सोचता है, कुछ इधर इसको मार्क्सीय विचारधाराने दार्शनिक प्रामाणिकता दे दी है। यह प्रायः मान लिया जाता है कि ऐसा वर्गगत चिन्तन एक सीमा नहीं, एक विशेषता है। फलतः ऐसे संकीर्ण चिन्तनकी प्रवृत्ति और उसका अभ्यास बढ़ता जाता है। यहाँतक कि उस

चिन्तनका आरोप हम पशुओंपर भी करते हैं। पशु-जगत्‌में जातिवाद और जाति-पाँतिवादका नहीं तो और क्या कारण हो सकता है ? जैसे सामन्त 'अभिजात' होते हैं—अंग्रेज़ी मुहावरेके अनुसार उनका रक्त नीला होता है—उसी प्रकार नस्ली अलसासी (अल्सेशियन) भी अभिजात होता है और शहरकी गलियोंमें भटकनेवाले वर्णसंकरकी अपेक्षा 'उच्च'-कुलीन। आप कहेंगे कि यह अभिजातवाद तो डाक्टर मलानका जातिवाद है, मार्क्स-का वर्गवाद तो नहीं। और आप ठीक ही कहेंगे जहाँतक अलसासी और अज्ञातकुल गलीके कुत्तोंकी तुलनाका प्रश्न है। लेकिन जाति-पाँति मूलतः तो कर्मगत वर्गीकरणका ही जड़ीभूत रूप है न ? यही तो मार्क्सवाद भी मानता है कि कहार-कुरमीका स्तर इसलिए छोटा माना गया कि ये कमकर थे, और क्षत्रिय-ब्राह्मण इसलिए ऊँचे रहे कि ये सम्पन्न और नकारे थे ?

वर्गोंका आधार श्रम-सम्बन्ध है, यानी मालिक-चाकरके, काम देने और लेनेवालेके सम्बन्ध, यही मानकर हम चलें तो कुत्ते-बिल्लियोंके मामले-में हम और भी दिलचस्प परिणामोंपर पहुँचते है।

हमारे जैसे नाई-टहलुए, नौकर-चाकर, भंगी-भिश्ती, सईस-खिदमतगार होते हैं—और हाँ, कुत्ते-बिल्ली आदि पालतू जानवर भी होते हैं—उसी प्रकार (अगर जैसा कि हमने कहा, शुद्ध श्रम-सम्बन्धोंके आधारपर वर्ग-विभाजन करते हुए देखें तो) इन पालतू जानवरोंके भी होते हैं। हम क्योंकि मानवोंकी भाषा बोलते हैं, और भाषा सामूहिक अहंकी अभिव्यक्तिका प्रमुख माध्यम होनेके नाते जिसकी भाषा होती है, उसकी नैतिक मान्यताओं और भावनामूलक आग्रहोंसे बँधी होती है; इसलिए हमे इन सम्बन्धोंपर कुत्ते या बिल्लीकी दृष्टिसे विचार करनेमें कठिनाई होना स्वाभाविक ही है। नहीं तो यह कहकर बतानेकी आवश्यकता न होती कि अच्छे खानदानी कुत्ते-बिल्लीके भी इसी प्रकार चाकर-टहलुए होते हैं। सामन्तोंके पीठमर्द होते थे तो बिल्लियोंके भी कर्णकण्डूयक होते हैं और राजाके पीछे-पीछे उसका पल्ला उठाये चलनेवाला कोई कचुकी होता है तो कुत्तेके पीछे-पीछे उसकी

साँकल सँभाले चलनेवाला भी कोई होता ही है। रानीका दामन पकड़कर चलना बड़े गौरवकी बात समझी जाती है; कुत्तोंकी साँकल सँभाले जो लोग पार्क-बगीचोंमे घूमते नज़र आते है कोई उनकी मुद्रापर ध्यान दे तो यही समझने लगेगा कि वही मुख्य है और कुत्ता गौण। यह भी तो इसीलिए है कि देखनेवाले भी मानव हैं और वर्ग-चेतनाके कारण एक कुत्तेका पिछ-लगुआ दूसरे कुत्तेके पिछलगुएको ही पहले देखता है, स्वयं कुत्तेको नहीं! हमारे ही निकट तो इस बातका महत्त्व होता है कि एक कुत्तेकी साँकलपर कल्लू बेरा है और दूसरेकी साँकलपर छोटे डिपटी साहब—भले ही कल्लू बेरेके सामने जो कुत्ता हो वह कुक्कुर राजवंशी अलसासी या ग्रेट डेन हो, और डिपटी साहबके आगे निरा भुच्चर। स्वयं कुत्तोंको इससे कोई मतलब नहीं होता, पार्कमे कुत्ता-कुतिया अपने सजातीयको ही पहले देखते हैं, उन्हीं-से दुआ-सलाम करते है या गाली-गुफ़्तार! उनके जजोर-बरदार उनके निकट कोई महत्त्व नहीं रखते।

इसीलिए हम मार्क्सवादियोंके कायल है। उन्होंने यह बात स्पष्ट करके रख दी है कि असलमें शब्दोंका कोई अपना अर्थ नहीं होता, अर्थ केवल एक आरोप है, जो वर्ग-चेतनासे अनुशासित होता है और मुख्यतया भावाग्रही होता है। जैसे हमारे सामाजिक सम्बन्ध हों, वैसा ही अर्थ हमे भाषा देती है—या हम भाषाको देते हैं, भाषासे निकालते हैं। शब्दार्थ-सम्बन्धी उनकी यह स्थापना इतनी महत्त्वपूर्ण है कि इसका एक नया विज्ञान बन गया है—'सिमैण्टिक्स'; इसका हिन्दी पर्याय हम 'शब्दार्थ-विज्ञान' बताते; पर अर्थ तो अब स्थिर रहा नहीं, द्वन्द्व-सिद्धान्तके अधीन चलनशील हो गया; इसलिए कहें 'शब्द-बीज-विज्ञान'। हर शब्द एक बीज है और विज्ञानसे पहले तो यह था कि जिसका बीज हो वही फल होगा, जो आप बोयेंगे वही आपको फलेगा, पर अब विज्ञानकी बदौलत यह हुआ है कि बोवे सेंहुड़ काटे ऊख। यह तो बूर्जुआ विज्ञानका मताग्रह था कि एक जीवनमें पाये हुए संस्कार वंश-परम्परामें नहीं आ जाते—लाइसेंकोने वह सब बदल दिया है।

अब देखिए न : हम कहते हैं, 'धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका ।' कहने-कहनेमे हम इस बातकी उपेक्षा कर गये कि हमारी बात ही हमारी भावनाका खण्डन कर रही है—भावना हम यह जगाना चाहते है कि कुत्ता कहीका नहीं है, यद्यपि आरम्भमें ही तथ्य यह माना है कि कुत्ता धोबीका है । जब वह धोबीका है, तब उसे इससे क्या कि वह घरका है या घाटका ? वह तो धोबीका है ही और ज़रा कहावत गढनेवाले आदमी-बच्चेसे यह पूछा जाय कि कुत्तेका धोबी आख़िर कहाँका है, घरका कि घाटका ? असलमें चिडी-बल्लेकी चिड़ियाकी तरह इधर-उधर मारा-मारा तो वह फिरता है, लेकिन क्योंकि वह भी श्रमकर इन्सान है, इसलिए हमने उसके अनाथत्वका आरोप कर दिया बिचारे कुत्तेपर, जो और जो कुछ हो या न हो, सम्बन्ध-कारकसे अनुशासित अवश्य है !

जी नहीं हम बहके नहीं ! यह तो वर्ग-गत चिन्तनका परिणाम ही है ! क्योंकि एक बार बाँटकर देखने चले तो फिर बाँटनेका अन्त नहीं । जिसे दोमे बाँटा जा सकता है उसे चारमे भी बाँटा जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक भागको फिर दोमे बाँटा जा सकता है । विश्लेषण-बुद्धिकी यही मर्यादा है । हम बहुत दिनो तक स्वय विश्लेषणवादी नहीं तो वैसे वादियोंके कायल ज़रूर रहे, पर अन्तमे समझमे आ गया कि प्याजको बहुत छीलनेसे हाथ कुछ नहीं आता, परतपर-परत उतारते हम शून्य तक ही पहुँचते है । तबसे हम समन्वयवादी हो गये है । परतपर-परत चढ़ाना ही ठीक मानने लगे हैं और तबसे तो हम चारों खाने चित्त पड़े हैं जबसे एक समन्वयवादीने हमे यह बताते हुए, कि असलमे भेद केवल बुद्धि-भेद है, वैसे सब कुछ एक है, यह दृष्टान्त दिया कि विश्लेषणवादी अँग्रेज कहते हैं 'फाइटिंग लाइक कैट्स एण्ड डाग्स'—कुत्ते-बिल्लियोंकी तरह लड़ना; पर कुत्ते-बिल्ली दो नहीं हैं, मूलत: एक हैं : जिस आधारपर वे टिके है (यानी उनकी दुम) वह एक ही है—दुम दोनोंकी कभी सीधी नही होती !

कालिदासके समधी [?]

●

अल्बर्ट कृष्ण अली

देवताओंकी प्रशंसामें खोये-से कालिदास तब नन्दन-वनकी ओर जा रहे थे। त्रिदेवों-से चन्दन-चर्चित और देव-सभासे अभिनन्दित कालिदासको ऐसा लग रहा था कि जैसे वे वीणाकी स्वर-लहरियोंपर नृत्य करनेवाले गीत हों, प्रशंसाके मानसरोवरपर तिरनेवाले मराल हों। उन्हें सब कुछ आशीर्वादको तरह मंगलमय दीख रहा था। लग रहा था कि समस्त सृष्टि यज्ञकी तरह पवित्र है और जातवेदा-प्रतिभा मातरिश्वा-प्रशंसाको पाकर पुलकित-प्रज्वलित हो उठी है और वे अपने जीवनका एक-एक दण्ड समिधाके समान प्रदीप्त कर रहे हैं तथा उसकी विभा तीनों लोकोंको आभा-मण्डित और भास्वर कर रही है।

मलय उत्तरीयसे अठखेलियाँ कर रहा था, और आत्म-मुग्ध कालिदास कल्पनाके समान तरल बने, सुगन्धिके समान वायवीय बने तिरे जा रहे थे। तभी अचानक उन्होंने दूर-सुदूर उस महानीलके पार एक घना काला धूम-बिन्दु देखा। उनके नेत्र उस धूम-बिन्दुपर चिपक गये और निमिषमात्रमें वह धूम-विन्दु उभर चला तथा कुण्डली मारे महानागकी तरह दिखाई पड़ा। और लो, वह महानाग जैसे अपना विशाल फन उठाकर मरुद्गण-पर फुत्कार उठे, बढ़ता चला आया। उस नील-कृष्ण धूम-समूहने क्षण-भरमे दिग्गजोंको निगड-बद्ध किया, दिक्पालोंको खदेड़ भगाया और समस्त दिक्-मण्डलको लीलकर महाकाल-सा विराट् और कालकूट-सा भीषण सघन अन्धकार फैला दिया। उस महाविराट् कृष्ण-मेघको दुर्भाग्य जैसी पृष्ठभूमिमें कालिदास चित्रित सौभाग्यकी तरह क्षीण और अज्ञानकी तरह जड़ दिखाई पड़े। उन्हे लगा कि पूर्व और उत्तर मेघ लिखनेके कारण दक्षिण और पश्चिम मेघोंने जैसे प्रतिरोधका अभियान किया हो, अथवा दिङ्नागों-अश्वघोषोंकी धुँधुआती ईर्ष्याग्नि जैसे भीमकाय दैत्यका रूप धारण कर बढ़ी आ रही हो, अथवा अभीके अहंकारका पाप ही दानव-सा विराट् होकर दर्प-दलनको चल पड़ा हो। सो त्रस्त कालिदासने आँखें मींच लीं और आर्तक्रन्दन किया, 'हे मृडेश ! हे व्योमकेश ! त्राहि, त्राहि ! क्षमा करो करुणानिधान ! रक्षा करो शरणागतवत्सल ! हे दयानिधान शंकर ! त्रिपुरारि !'

और अर्द्धोन्मीलित नेत्रसे कालिदासने देखा कि गरलाम्बुधिकी तरह लहरानेवाला दृष्टिपथका वह काला-सागर अचानक स्वर्ण-धूलिकी तरह चमक उठा है और उसमें तीन ज्योति-रेखाएँ उतरा आयी हैं। आश्वस्त हुए कि त्रिनेत्र ही आ रहे हैं। किन्तु तत्काल वह सागर अरुण हो उठा और तीन ज्योति-रेखाएँ तीन अरुण कुमारियोंमें रूपायित हो उठीं। तत्क्षण कालिदासने आकाशवाणीकी तरह सुना कि कोई कर्कश बादल कड़क उठा है—'पुत्रियो ! यही कालिदास हैं। इन्हें प्रणाम करो।'

इन तीन कुमारियोंमें-से एक जो प्रौढ़ वयसके कारण ज्येष्ठा-सी दीख रही थी, आगे बढ आयी। कालिदासने देखा कि शब्द और अर्थके उसके युगल-चरण कोषकी तरह फूले हैं जिसपर थोथे ज्ञानकी गरिमाकी कदली-जंघाएँ शोभित है। लक्षणा और व्यंजनाके उरोज आत्म-प्रदर्शनकी तरह पीन तथा पाण्डित्यके समान कठोर उभरे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे है कि जैसे भोग्य गेहपर 'स्वागतम्' टँगा हो। झपताला और ध्रुपदके बाहु-द्वय और ताण्डव तथा लास्यके हस्त-कमल कितने मनोरम थे! पूर्वका शास्त्र-ज्ञान और पश्चिमका शास्त्र-ज्ञान यदि दोनों भौहोंमे था, तो नेत्रमे रूढ़ि-वादिताका सूनापन और मौलिकताका खोखलापन था। दोनों कर्ण खँडहर-की तरह झूल रहे थे। व्याकरण-सी भोंडी नासिका थी और आलापकी तरह उसका मुँह फटा था। तर्क-जाल-सी केश-राशिपर अनेक पुस्तकोंकी सूक्तियाँ रत्नोंकी भाँति जड़ी जगमगा रही थीं।

उसने आगे बढ़कर कहा, 'हे कवि! मल्लिनाथने कहा है कि आप श्रेष्ठ कवि है, अत: आपकी श्रेष्ठता प्रमाणित हो गयी। अग्निपुराणमें व्यासदेवने कहा है कि '**अर्थालंकार-रहिता विधवैव सरस्वती।**' अत: अपने काव्यमें अलंकारोंकी स्वर्ण-रजत-प्रदर्शनी खोलकर आपने सरस्वतीको विधवा होनेसे बचा लिया है। रुद्रभट्ट, भोज, व्यास और आनन्दवर्धनने बताया है कि श्रृंगार ही श्रेष्ठ रस है। अतः आप श्रेष्ठ रसके श्रेष्ठ कवि हुए। '**काव्येषु नाटकं रम्यं**'के कारण ही आप रमणीय है। दाँतेने कहा है,···· कहा है····अच्छा, छोड़िए दाँतेको। अरस्तू बताता है कि····कहता है कि···· जाने दीजिए, अरस्तूको। गेटेको लीजिए, जिसने कहा है कि शकुन्तला मर्त्य और अमर्त्य दोनों है। और शेक्सपियरने क्या कहा है? उसने कहा है कि' अवर स्वीटेस्ट सौंग्स आर दोज़ दैट टेल ऑफ़ सैडेस्ट थाट।' हो सकता है कि शेलीने कहा हो, पर उससे क्या? हाँ, ब्रैडलेने बताया है कि 'लव इज़ लवलिएस्ट ह्वेन इमबाइब्ड इन टियर्स।' टाल्स्टाय या लामालूम-भाय बतला गये है कि 'पोयट्री विदाउट मिस्टिसिज्म इज़ प्रोज़।' इसी-

लिए आपके नाटक 'शकुन्तला'मे करुण गीत है, अश्रुपुलक है और रहस्यावरण है। टी० एस० इलियटने बताया है कि 'दि रियल फ़ंक्शन ऑफ आर्ट इज़ टु एक्सप्रेस फ़ीलिंग एण्ड ट्रान्समिट फुलिशनेस।' और देखिए कि आज कही एक्सप्रेस फ़ीलिग नही, केवल एक्सप्रेस तार और एक्स-प्रेस गाड़ी है। वह तो आप है कि एक्सप्रेस फ़ीलिगसे सभी अध्येताओंको विमूढ़ बना देते है। काकटिउके अनुसार 'आर्ट इज़ साइंस बिकम फ्लेश।' आप साइटिस्ट है, पर मांसल; जब कि अन्य साइंटिस्ट कंकालमात्र है। वेबरका कहना है कि 'आर्ट, रिलीजन एण्ड इडियोसी आर वन एण्ड दि सेम थिंग, सुपिरियर इब्न टु 'फ़िलॉसफ़ी'। अतः क्रमशः आप, क्राइस्ट और मै 'सेमथिग' हूँ। फिर 'फ़िलॉसफ़ी कनसीब्स गॉड; आर्ट इज़ गॉड'के अनुसार आपका साहित्य गॉड ठहरता है और आप उसके पिता, महापरमेश्वर। सो आपको प्रणाम है।'

ज्ञान और अज्ञानके बीच त्रिशंकु बने कालिदासको लगा कि वे अलकाकी यक्षिणीके समक्ष तो उपस्थित नही हो गये है। तभी वह दूसरी कुमारी जो तन्वंगी मध्या नायिका-सी प्रतीत हो रही थी, आगे बढ़ आयी। बड़ी ही कोमल शरीर-यष्टि थी उसकी, जैसे निर्माणमे केवल जल और समीर तत्त्व ही लगे हों। घन-पटपर ज्यों 'बिजलीका फूल' खिल आये, वह मुसकराकर आगे बढ़ी और मधुर गीतकी भाँति बोली, 'हे कवि-शिरोमणि ! मै आपको प्रणाम करती हूँ। इस वंदनाको स्वीकार करें। देव ! हे काव्य-महोदधि ! मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे आपके काव्यमे संगीत चित्र होकर जम गया हो, अथवा चित्र ही गीतके रूपमे मुखर हो उठा हो। अथवा जैसे नृत्यकी चंचल मत्त थिरकनें छदोके बाहु-पाशमे आबद्ध निरलस सो गयी हो। भावकी अरूपताको रूपका आसव पिलाकर उन्हें ऐसा झूम-झटक प्रमत्त आपने बना दिया है कि कैसा तो तन्मयकारी आकुल कम्पन आपके साहित्यमे लहरा उठा है ! कुछ ऐसा सजग क्रन्दन, कुछ ऐसा चपक लिबलिबापन आपके साहित्यमें है कि मनको गोंदकी तरह

चपसे चिपका लेता है। सो हे कवि-कुल-दिवाकर ! नदियोंके कल-कल और पक्षियोंके कलरवमें आपकी ही मुखर प्रशंसा है और वृक्षोंके मर्मर, पवनके सन्-सन्, घंटेके डिग्-डिग् और रणरण कर बजते हुए ढोल-नगाड़े-मृदंगसे एक ही ध्वनि हौले-हौले अथवा तीव्र-तीव्र निर्गत होती है—कालिदास ! मशीनें गड़गड़ातीं नहीं, कालिदासका उद्घोष करती हैं ! रेलगाड़ी 'कालिदास कालिदास' मंत्रोच्चारण करती हुई ही चल पाती है ! लगता है कि वंग-सागरकी तरंगें 'कालिदा, कालिदा' चीख रही हों और गगन जैसे 'स' बोल कर चुप हो गया हो। मेघ कड़क कर पूछता है, 'श्रेष्ठ कौन ?' और बिजली सोनेकी खड़ियासे कृष्णपट्टपर 'कालिदास' लिख जाती है। 'का' पूरब है, 'लि' दक्खिन है, 'दा' पश्चिम है और 'स' उत्तर है। विश्व-का वह श्रेष्ठ आलोचक सूर्य, पूरब, दक्खिन, पश्चिम तो जाता है, पर उत्तर उससे भी बच जाता है। 'का' ब्रह्मा है, 'लि' विष्णु है, 'दा' शिव है, पर 'स' त्रिदेवोंसे भी निःशेष नही होता। इन्द्र-धनुषके सात रंग हैं। सूरजके सात घोड़े है। सरस्वतीकी वीणाके सात सुर है। सात ऋषियोंकी सप्तर्षि-मडली और सात तारोंका उड़नखटोला विख्यात है। कालिदासमे भी सात वर्ण है। दृश्यकाव्य और श्रव्य-काव्यके आपके पुत्रद्वय अश्विनी कुमारोंसे भी प्राणोन्मेषक और चाँद-सूरजसे भी मनोरम है। गायत्री वेद-माता हुई तो क्या, जब कालिदासकी माता नही हो सकी ? आपकी सृष्टि-को देख ब्रह्माकी सृष्टिने लाजके मारे मेघोंका अवगुंठन डाल लिया, अमाकी निविड कुहेलिकामें मुँह छिपा लिया, और ब्रह्माने दाढ़ी बढ़ाकर जैसे घोषणा-कर दी कि मैं वृद्ध हो गया हूँ, रक्षा करो; पुराने जूतेकी तरह मत फेंको। जल-भुनकर वह सृष्टि प्रलयकी नील चादरमे दुबक सुबकियाँ लेने लगी। कालिदास ! भारतीयताकी जीभ हैं, मनुष्यताके कंठ हैं, काव्यकी मूँछ हैं। सो, हे कवि ! यही हमने अपने थीसिसमे लिखा है और हमारी यह अर्चना स्वीकार करें !' और मौग्ध्य रग-रगसे टपका कर वह ओस-बिन्दुकी भाँति ढुलक गयी।

इन विराट् विशेषणोंकी पौष्टिक औषधियोंसे अव्ययकी तरह निश्चेष्ट कालिदास संज्ञाकी तरह सचेत हुए। तभी तीसरी कुमारी कनिष्ठा आगे बढ़ी। हथौड़ेकी तरह उसकी नाक थी और हँसुएकी तरह वक्र भौंहोंके नीचे साम्यवाद-से आरक्त नेत्र थे। समस्त शरीरपर फ़ायड, एडलर, युंग, डारविन, सार्त्रे, स्पिनगार्न,काडवेल आदिके गहने थे और मार्क्स-एंजेल-हिगेल-नीत्से आदिके सिद्धान्त कर्ण-भूषणकी तरह कानोंसे झूल रहे थे। कारखानेकी तरह मुँह खोलकर उसने मज़दूर नेताकी तरह बोलना शुरू किया, 'कालिदास ! मैं तो चाहती थी कि तुम्हारे दोनों पुत्र कामरेड नाटक और कामरेड काव्यके नामसे संसारमे स्तालिन और माओ होते ! किन्तु तुममे आभिजात्य संस्कार भरा था और तुम बुर्जुआ समाजके अगुआ होकर रेलिकमात्र हो सके। इसीलिए उनमे कैपिटलिस्ट आउटलुक है। न्यूरोटिक एलिमेंट है। आबसेशन और फोबियाके कंप्लेक्सेज़ हैं ? मै कहती हूँ, साहित्य अफ़ीम नहीं, दिमाग़ी ऐय्याशी नही। उसे समाजका निर्माण करना है। वह तो हथौड़ा है, जो उन पूँजीपतियों, धर्मधुरंधरोंकी औंधी खोपड़ी फोड़ता है, जिन्होंने समाजमे वर्ग-वैषम्यका विष फैला रखा है और जोंक तथा औक्टोपसकी तरह जनताको चूस लिया है। मै पूछती हूँ कि मेघदूतके पागल प्रलापसे मिल चल सकती है ? ट्रैक्टर चल सकता है ? आलू बोया जा सकता है ? रोटी बनायी जा सकती है ? शकुंतला जैसी निरीह नारीसे भरत जैसा ट्राट्स्कीनुमा प्रतापी पुत्र किस खब्तके दक़ियानूसी विचारपर पैदा कराया था ? मैं तो खुश होती जब प्रत्याख्यानके बाद शकुंतला दुष्यन्तका गला घोंट साम्राज्यशाहीका अंत करती और साम्यका प्रचार करती। अरे, ऋतुसंहार नहीं, रीति-संहार कराते। और वह रघुवंश तो बिलकुल प्रतिक्रियावादी भोंडी कैपिटलिस्ट चीज़ है। हाँ, 'कुमार-संभव'में 'लिबिडो' का मनोरम चित्रण हुआ है। पर कालिदास, तुमने सुपरमैनका स्वप्न न तो देखा, न दिखाया। मुझे खेद है कि तुमने क्वान्तम-सिद्धान्त सापेक्षवाद, फोर्थ डायमेन्शन, सररियलिज़्म एनीबालिज़्म, कैंटेबालिज़्म, सेक्सथ्योरी, एक्ज़िश-

टेंशियलिज़्म वगैरह पढ़े बिना और डासकैपिटल, इल्यूज़न एण्ड रियलिटी, क्रिएटिव इवोल्युशन, पॉलिटिक्स, पोयटिक्स, डिसेंट आफ़ मैन, फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री, बायलॉजी, और सायकालॉजी आदि उलटे बगैर ही साहित्य रच डाला। तभी तुम्हारे साहित्यने संसारके वर्ग-संघर्षको मिटानेवाली जन-चेतनाके महा-समुद्रको एक चुल्लू पानी भी नहीं दिया। ऊफ़! कितनी बड़ी प्रतिभा दिग्भ्रमित हुई! मै इस व्यर्थता और क्षयकी विराटताको देख दंग हो गयी थी और उसीपर रिचर्स किया है। अब भी चाहो, तो मेरे सहयोग-का लाभ उठा लो। मैं समक्ष नत हूँ।'

संज्ञाकी भाँति सचेत कालिदास यह सुनकर क्रियाके समान सचेष्ट हुए और कड़ककर बोले, 'तुम लोग कौन हो? किसकी पुत्रियाँ हो? तुम्हारे पिता कौन और कहाँ छिपे है?'

उत्तरमे एक आवाज़ आयी, 'इनका पिता मैं हूँ। छिपा नहीं हूँ; अपने विराट् रूपमें हूँ। अतः आप देख नहीं पा रहे हैं। सो, मै लघु-रूपमें यह आया।'

और एक दिव्य पुरुष दिखाई पड़ा। उसने कहा, 'मैं ही इनका पिता हूँ। मै सरस्वतीके द्वारका सजग प्रहरी, भावलोकका त्राता महाविष्णु और परिहर्ता महाशिव, साहित्य-साम्राज्यका एकाधिपति, सार्वभौम सम्राट् प्रकाश-कानाम् प्रिय दिव्यदर्शी आलोचकाधिराज आपको प्रणाम करता हूँ। ये मेरी जो तीन पुत्रियाँ हैं, वे आलोचनाएँ हैं। ज्येष्ठा यह है।'

कालिदासने अब सब कुछ समझ लिया। उन्हे चाणक्यकी एक उक्ति याद आ गयी कि जो सी० आइ० डी०, साँड, बीमा-एजेण्ट और आलोचक-को देखकर नहीं भागता, वह पामर निश्चय ही इहलोक, परलोक, त्रिशंकु-लोक और श्वसुर-लोक सब कुछ गँवाता है। सो, कालिदास उन चारोंकी चतुरंगिणीको देख भागे। लेकिन चारों तरफ़से उन चारोने उन्हे छेंक लिया। तब बेबसीका निश्वास छोड़, शिव-स्तोत्रका जाप करते हुए कालिदासने आगे बढ़ी हुई उस ज्येष्ठासे पूछा, 'तुम्हारा नाम?'

वह बोली, 'मेरा नाम चयनिका है।' 'चयनिका ? चयनिका ! अहा, किन्तु····किन्तु आपके नामकरणमें कुछ मतिभ्रम हो गया है। मैं तो कहूँगा, उसे वमनिकामें बदल लें।····नहीं, विसूचिका बढ़िया-सा नाम होगा ! अहा, विसूचिका कुमारीजी !' कालिदासने कहा। इसपर अन्य दो कुमारियाँ खिलखिल हँस पड़ीं। तन्वंगी मध्याने कहा, 'अहा, हा-हा, विसूचिका ! विसूचिका दीदी, अर्थात् हैजा दीदी, अर्थात् पाचन और रस-ग्रहणकी क्रिया-का एकान्तिक अभाव !' कनिष्ठाने कहा, 'और क्या ? प्राचीन संस्कारों, रूढ़ियोंका वमन और विष्ठा तथा लाइफ़-फ़ोर्स, एलाँ-विट्लका नितान्त अभाव, फॉसिल !!'

'और यह मँझली तन्मया है !' आलोचकाधिराजने कहा।

'तब तो कीट-भृङ्गी न्यायसे बड़ा ही चौकस यह नाम बैठता है।' कालिदासने उत्तर दिया।

'और यह रही छोटी क्रान्तिजा।' उन्होंने तीसरीको सामने करके बताया।

'यह आत्मजा है या क्षेत्रजा ?' कालिदासने पूछा।

'यह मार्क्सजा है।' उन्होंने बतलाया।

'तो मुझे कौन-सी सेवा करनी है ?' कालिदासने पूछा।

आलोचकाधिराज इसपर बड़े विनीत हो गये, जैसे ब्लैक-मार्केटमें सेठजी पकड़े गये हों, और बोले, 'सो हे कालिदासजी महाराज ! मैं इनके तुल्य वर कहीं भी नहीं पा सका अथवा जहाँ पाया इन्हे पसन्द ही नहीं आया। अतएव आपके पुत्र-द्वय नाटकराज और काव्याधिराजसे यदि इनका पाणि-ग्रहण········'

यह सुनकर कालिदास बोले, 'तो सुनिए आलोचकाधिराजजी महा-राज ! इन तीनोंमें-से एक तो विकृत मस्तिष्क-ही-मस्तिष्क है, दूसरी प्राकृत हृदय-ही-हृदय है और तीसरी अनुकृत हाथ-पाँव ही हाथ-पाँव है। जहाँ मस्तिष्क है, वहाँ हृदय नहीं, जहाँ हृदय है वहाँ नेत्र और मस्तिष्क और

मेरुदण्ड नहीं और जहाँ मेरुदण्ड-भुजदण्ड है, वहाँ मस्तिष्क और हृदय ही लापता हैं। कोई लूली है, कोई अन्धी है तो कोई हृदयहीन है। अतः विमूचिका····अरे····रे-रे····चयनिका अजायब-घरके उपयुक्त है, तन्मया पागलखानेके योग्य है और क्रान्तिजा यतीमखाने, जेलखानेके लायक़ है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि ज्ञान, भाव और क्रिया टूटकर, विश्रृंखल होकर पृथक्-पृथक् रहकर ऐसी ही अनासृष्टि उपस्थित करते, तिकड़मी बन जाते है। अपना घर मै इन तीनोंसे तीन-तेरह नहीं कराऊँगा। और इन्ही तीनों-ने मृत्युलोकके विद्यार्थियोंको भ्रष्ट किया है, साहित्यके तपस्वियोंको तपसे डिगाया है। अब आप इन्हे स्वर्गमे उठा लाये है! नारद भी तो एक बार छककर मठ्ठा फूँककर पीते है। सो, इन्हे यहाँ कौन सँभालेगा? हाँ, एक काम आप कर सकते है। इन्हे इन्द्रपुरी ले जाकर उर्वशी, रम्भा और मेनकाके स्थानपर बिठा दें, क्योंकि वे अब प्रौढ़ा हो चली है!'

सुनते ही आलोचकाधिराजके नथुने फूलने लगे और उन्होंने चीत्कार किया, 'रे अश्वघोषके चोर! मालिनका टहलुआ! मैं सम्पादकीयमे तेरी भर्त्सना कराऊँगा। मैं सिद्ध करूँगा कि तू सम्राट् विक्रमादित्य क्या, किसी खोंचेवालेके दरबारमे भी नहीं था, क्योंकि तू कभी पैदा ही नहीं हुआ था।' और फिर तीनों पुत्रियोंने जो प्रहार शुरू किया तो कालिदासका उत्तरीय तार-तार हो गया, केश नुच गये और वे पिण्डके समान पड़ रहे। लगा, कालिदासका 'कालिदा' घिस-पिटकर साफ़ हो गया है; जो बचा था सो 'स' मात्र था—सिसकता, सुबुकता।

तभी शिवजी आ धमके। उन्होंने चारोंके आठ चंगुलोंसे कालिदासको मुक्त किया और उन चारोंको ऐसा खदेड़ा कि वे मर्त्य-पाताल आदि न जाने किस लोकमें गिरकर चकनाचूर हुए।

कालिदासने कहा, 'प्रभो! प्रभो! बच गया! पितामह! संहार कर डाला था। वह तो···वह तो····आप पहुँच गये, अन्यथा आज····किन्तु

देव ! मैं कबसे आपका आह्वान कर रहा था, आख़िर इतनी देर आप कहाँ थे ?'

'अरे, क्या बताऊँ कालिदास, इस आलोचकके पिट्ठू प्रचारकोंने मुझे घूस देकर रोक रखा था।' शिवजीने बतलाया। फिर कहा, 'इस त्रिपुरका विनाश अर्थात् समरस सामंजस्यकी स्थापना करनी है, तभी शुद्ध वैज्ञानिक सन्तुलित आलोचनाएँ उद्भूत होंगी।'

आर्यसमाजी श्वसुर

●

मोहनलाल गुप्त

शादीको पूरे साल भर भी नहीं हुए थे कि होली आ पहुँची। होलीमें ठूँठोंमे भी जान आ जाती है। फिर मेरे जैसे भावुक आदमीके जानदार दिलमे स्पन्दन होना अस्वाभाविक नहीं था। आदमीके जीवनकी एक यह भी आकांक्षा रहती है कि होलीपर ससुरालसे बुलावा मिले। पर संसारमे मूर्खों और कंजूसोंकी सख्या अधिक होनेके कारण पंचानबे प्रतिशत दामादोंकी इच्छा अधूरी ही रह जाती है। मैंने अपनेको भाग्यशाली समझा जब श्वसुर जीका लिफ़ाफ़ा हाथमें पड़ा। पत्रमें केवल चार पंक्तियाँ थीं—

'चिरंजीवी चूड़ामणि, होलीपर बरेली चले आना। गीता, गायत्रीकी भी यही इच्छा है।' निमन्त्रण सादा ही था। आनेपर जोर नहीं दिया गया

था। फिर भी उसे ठुकरानेके लिए काफ़ी आत्मबलकी आवश्यकता थी, जिसका मेरे पास अभाव था।

यह तो आप जान ही गये कि मेरी ससुराल बरेलीमें है। इतना और बता दूँ कि मेरे श्वसुर जेलर हैं। है तो नहीं, रह चुके है, पर जीवनमें एक बार जो जेलर हुआ वह हमेशाके लिए जेलर रह जाता है। जेलरकी बेटीसे मैं शादी करनेके लिए इसलिए तैयार हो गया कि कभी बड़े घर जाना पड़े तो 'बड़े घरकी बेटी' काम आयगी। पर मेरा दुर्भाग्य कि शादीके बाद ही श्वसुर साहबने पेंशन ले ली। और इस बीच काग्रेसने भी सरकारसे सुलह कर ली और मुझे जेल जानेका और श्वसुर साहबकी मेहमानबाजीका लुत्फ़ उठानेका मौक़ा नहीं दिया गया।

शादीके बाद मुझे दो बड़ी बातें मालूम हुई। एक तो यह कि मेरे श्वसुर साहब कट्टर आर्यसमाजी है, दूसरे मेरे श्वसुर साहबके जेलर स्वरूपका तनिक भी प्रभाव मेरी श्रीमतीजीपर नही पड़ा है। मेरी श्रीमतीजी जेलर होतीं तो क्या होता? इस सम्बन्धकी सारी कल्पनाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई।

श्वसुर साहबके निमन्त्रणमे तो नहीं, पर गीता और गायत्रीके नाममें ज़रूर कुछ आकर्षण था, जिससे खिचा। मैं ठीक टाइमपर सीधे स्टेशन चला गया। पंजाब मेल पकड़ी। रास्तेमे कोई दुर्घटना नहीं हुई और मैं बरेली पहुँच गया।

दरवाज़ेपर ही सालीने और परदेकी ओटसे श्रीमतीजीके मुसकराते हुए चेहरेने जो स्वागत किया तो सारे रास्तेकी थकावट दूर हो गयी और मस्तिष्कमें यह भावना घर कर गयी कि मैं स्वर्गमे हूँ।

'जीजाजी नमस्ते' का जवाब भी न मैं दे पाया था कि सामने श्वसुर साहबको खड़ा पाया। 'तुम आ गये'—जैसे कोई बे-बुलाये आ गया हो।

'जी।'

'अच्छा।'

इसके बाद गीताने मुझे सँभाल लिया। गीता—श्रीमती गायत्री देवीकी

छोटी बहिन थी इसलिए मेरी साली थी। सुन्दर थी इसलिए आकर्षक भी थी। कुमारिका थी इसलिए चुलबुली भी थी। रास्तेकी सारी थकावट गीताकी मीठी बातोंने दूर कर दी। नाश्तेके बाद भोजन। इसके बाद श्वसुरजीकी आज्ञा हुई कि थके हो सो जाओ। आज्ञा पालनके लिए विस्तर-पर गया पर नीद कहाँ ? ससुरालमे पहली रात थी। रातको बारह बजे खिड़कीसे किसीने सिसकारा—देखा तो गीता खड़ी थी।

'जीजाजी जग रहे है ?'

'मच्छर काट रहे है।'

'सो जाइए।'

'नीद नहीं आ रही है। न तुम—'

'जीजी नही आयेगी।'

'क्यो ?'

'पिताजीकी मनाही है।'

'इस मार्शल्लाका क्या मतलब है !'

'सबेरे पिताजीसे पूछिएगा।'

गीता तो उड़न-छू हो गयी और श्वसुरजीको सुबुद्धि आये इसलिए मैं चार बजेतक गीता-पाठ करता रहा। जब कोई नहीं आया तो नींदसे ही आँखें लगायी। ठीक पाँच बजे किसीने जगाया। पहले कन्धा पकड़कर झकझोरा तो मुझे ऐसा लगा कि कोई अहीर बाला मथनीके स्थानपर मुझे कुण्डेमे खड़ाकर दूध बिला रही है। मैंने आँख नहीं खोलीं। दुबारा फिर किसीने झटका दिया तो समूची खाट हिल गयी। मालूम हुआ कि भूकम्प आया है और कोई यक्ष मेरी पलंग उड़ाकर अफगानिस्तानकी ओर ले जा रहा है। तीसरे झटकेमे किसीने उठाकर बिठा दिया। कानोंमें आवाज़ आई—'अजीब लड़का है।' आँख खुली तो देखा सामने श्वसुरजी खड़े हैं। मैंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

'बहुत सोते हो। ५ बजे बिस्तर छोड़ देना चाहिए।'

'जी, ट्रेनकी थकावट थी, नहीं तो मैं रोज़ घरपर ४ बजे ही उठ जाता हूँ।'

'अच्छा घूमने चलोगे?'

'जी-जी—आज तो नहीं। ज़रा सरदी हुई है।' अपनी बातकी प्रामाणिकता सिद्ध करनेके लिए मैंने रूमालके अन्दर नाक बजाकर दिखा दिया।

'अच्छा, अच्छा।'

श्वसुरजीसे पीछा छूटा तो मैंने लिहाफ़ तानी। बीचमे गीता आयी।

'जीजाजी उठिए, मुर्ग़ बोल रहे है।'

'मुर्ग़ेसे कहो, अभी सबेरा नहीं हुआ है।'

मैंने सिर ढँक लिया। एक झपकी भी नहीं लगी थी कि किसीने फिर छेड़ा। कुछ देरतक चुप रहा और झपकियोंके बीच झुँझलाता रहा। फिर 'उठो-उठो'का स्वर तीव्र हुआ तो मैं लिहाफ़के अन्दरसे ही बड़बड़ाया 'मुर्ग़ोंके मारे नींद हराम'—पर सामने देखा तो श्वसुरजी खड़े है।

'मुर्ग़-मुर्ग़ क्या कर रहे थे जी?'

'जी, अभी-अभी मुर्गोका एक सपना देख रहा था।'

'मैं चार मीलका चक्कर लगा आया। तुम अभी सो रहे हो। यह आदत ठीक नहीं।'

'रात मच्छरोंने सोने नहीं दिया।'

'तो मसहरी क्यों नहीं माँग ली? गीता ओ गीता, गीता' पुकारते हुए श्वसुरजी उधर गये तो मैंने बिस्तरसे कूदकर सिगरेट जलायी और सोचने लगा कि अच्छे कटघरेमे आकर फँसा हूँ। इतनेमें श्वसुरजीकी आवाज़ आयी।

'गीता, यह तम्बाकूकी खुशबू आ रही है? देख, बाहर कोई नौकर बीड़ी तो नहीं पी रहा है? मैंने कितनी बार मना किया कि धुएँसे फेफड़ा ख़राब हो जाता है पर कम्बख्त इतने जाहिल हैं कि इनकी समझमे नहीं आता।'

श्वसुरजीका वेद-वाक्य सुनते ही मैंने सिगरेट बुझाई और डिब्बीको छातीपर रखकर नालीमे बहा दी। जबतक ससुरालमे रहना है यज्ञके धुएँके अतिरिक्त और कोई धूम्रपान सम्भव नहीं। मस्तिष्की फुल बेंचके निर्णयके आगे मै विवश हो गया।

स्नानागारसे निबटकर निकला तो सामने खड़ी गीता मुसकरा रही थी।

'कहिए कह दूँ पिताजीसे सिगरेटवाली बात।'

'तुम्हारे पाँव पड़ूँ।'

गीता भाग गयी। कपड़े भी नहीं पहने थे कि श्वसुरजीका जलद गम्भीर स्वर सुनायी पड़ा—'बेटा नाश्ता किया?'

'जी नहीं।'

'तुम्हारे जीवनमे संयम-नियमके लिए भी कोई स्थान है? जीवनका यह आदर्श तो ठीक नहीं।'

क्या उत्तर दूँ, मेरी समझमे नहीं आया इसलिए मौन रहा।

'न तुम्हारे सोने-जागनेका नियम है न खाने-पीनेका। इससे स्वास्थ्य-रक्षा सम्भव नहीं। शरीरकी रक्षा नही हो सकती। तुम व्यायाम करते हो या नही?'

'जी नहीं।'

'यह और बुरा है। तुम्हें खुली हवामे थोड़ी देर कसरत तो करनी ही चाहिए। और हाँ, प्राणायाम मैं बता दूँगा। दो-एक आसन भी तुम्हारे लिए उपयोगी होंगे। क्या बताऊँ, मेरा वश चले तो तुम्हे फिरसे गुरुकुल भेज दूँ।' मैंने देखा पीछे खड़ी गीता मुसकरा रही थी। मैने कहा—'गीताको आपने गुरुकुल नहीं भेजा?'

'क्या बताऊँ, गीता बड़ी अभागी है। जिस साल इसे गुरुकुल भेजने जा रहा था, इसकी माँ चली गयी। फिर इन बच्चियांको घरसे अलग करनेका साहस नहीं किया।' जेलर साहबकी आँखें आर्द्र हो चली थीं कि गीताने टोका—'जीजाजी नाश्ता।'

'हाँ हाँ ले आओ', श्वसुर साहबने आदेश दिया।

'दूध ताज़ा पियोगे या गरम करवा दूँ ?'

'दूध नहीं, चाय पिऊँगा।'

'तुम लोगोंकी बुद्धिको क्या हो गया है ? अरे चाय ज़हर है ज़हर। अंग्रेज़ जहर भी खिलाते है तो हिन्दुस्तानी अमृत समझकर पीना शुरू कर देते हैं। विलायती कम्पनियाँ जिस-जिस चीज़का विज्ञापन करती है वही हम खाते-पीते है। ऐसी मानसिक गुलामी! फिर गाँधीजी कहते थे कि हम स्वराज्यके योग्य हो गये है।'

'चाय बुरी चीज़ तो हे ही। मेरी भी कोई खास आदत नहीं, पर ज़रा सरदीकी वजहसे। खैर जाने दीजिए।'

'नहीं, नहीं, दवाके तौरपर लिया जा सकता है। गीता ओ गीता! ज़रा नौकर भेजकर चाय तो मँगा ले। अच्छा तुम नाश्ता करो, मै ज़रा समाज मन्दिर चलता हूँ। स्वामी अभेदानन्द आये है। वेदके बहुत बड़े विद्वान् है। तुम्हे साथ ले चलता, पर ख़ैर कल चलना। गीता ओ गीता! दस बज गये और अभी नाश्ता भी खतम नहीं हुआ। हम लोग वक़्तकी क़ीमत तो समझते नहीं। अच्छा हम चलें, तुम नाश्ता कर लो।'

श्वसुरजीने पीठ फेरी तो मैंने नमस्कार किया। श्वसुरजीके जानेके बाद गीता चाय ले आयी। मैंने देखा परदेकी ओटसे किसीको झाँकते हुए। मैंने कहा—गीता, मुझे तो अनुभव होता है कि मेरी शादी शायद तुम्हीसे हुई थी।

'वाह जीजाजी, जीजीजी कहाँ जायेंगी ?'

गीताने दरवाजेके परदेकी आड़मे खड़ी गायत्री देवीको कलाई पकड़कर घसीटती हुई मेरे बगलमे कोचपर लाकर बिठा दिया।

'ईनाम लाइए जीजाजी।'

'होलीका ईनाम बड़ा टेढ़ा होता है !'

'जाइए आप बड़े वैसे है !'

गीता गायत्री देवीके साथ हमने चाय पी। शामको सिनेमा चलनेका प्रोग्राम तय हुआ।

शामको हम सब कपड़े पहनकर तैयार हुए तो गीताने सूचना दी : 'पिताजी, हम सब घूमने जा रहे हैं।'

श्वसुरजीने मेरी ओर देखा।

'तुम भी जा रहे हो ?'

'जी।'

'किधर जाओगे ?'

'सिनेमाकी तरफ़।'

'क्या कहा, सिनेमा देखने जा रहे हो, छिः ! ! सिनेमा भ्रष्टाचार और दुराचारके अड्डे हैं। मेरे सामने सिनेमाका कभी नाम न लेना। अच्छा है, तुम सब मेरे साच चलो। आर्य समाजमे साप्ताहिक सत्संग है। स्वामी अभेदानन्दका भाषण है।'

सिनेमासे मुँह मोड़कर सब सत्संगकी ओर चले। मुझे यह बे-वक़्तकी शहनाई और अप्रासंगिक सत्संगका प्रस्ताव अच्छा न लगा। सीढ़ियोंसे उतरते समय एकाएक उफ करके पेट दबाये हुए बैठ गया।

श्वसुरजी दौड़े आये।

'क्या बात है बेटा ?'

'उफ, बड़े ज़ोरोंसे दर्द उठा है पिताजी।'

'पेटमें दर्द है न। बेवक़्त नाश्ता, बेबक़्त भोजन। दर्द न हो तो क्या होगा। गीता, ज़रा लवणभास्कर चूर्णकी शीशी ढूँढ़के लाना।'

श्वसुरके सहारे मैं कमरेमें विस्तरपर लिटाया गया। गीताने लवण-भास्कर चूर्णकी फंकी लगवाई।

'दर्द कुछ कम है !'

'जी।'

'अच्छा तो आज तुम यहाँ आराम करो। मैं ज़रा समाज मन्दिर हो आऊँ।

श्वसुरजीके जाते ही गीता मेरे सिर हो गयी।

'जीजाजी आप भी बड़ी औंधी खोपड़ीके आदमी हैं। सारा गुड़ गोबर कर दिया।'

'भई, मुझे क्या मालूम कि तुम्हारे पिताजी कब किस चीज़से बिगड़ खड़े होंगे!'

'लेकिन आपने नाटक अच्छा किया।'

श्रीमती गायत्री देवीको विश्वास नहीं हुआ। मेरे पेटको हलकेसे स्पर्श करती हुई बोलीं—अब दर्द कैसा है?

'हलका-सा मीठा-मीठा-सा है। पेटमें नहीं, अब आगे बढ़ गया है।' मैंने श्रीमतीजीकी उँगलियोंको पकड़कर अपनी छातीपर रख लिया। गीता खिलखिला उठी। श्रीमतीजीने शरमाकर हाथ खींच लिया।

रातको श्वसुरजी लौटे तो पूछा—

'दर्द कैसा है?

'जी ठीक है।'

'रातको खाना मत खाना।'

'जी, खाना खा चुका हूँ'

'पेटके दर्दके बाद खाना—कोई गँवार होता तो कुछ कहता भी। तुम पढ़े-लिखे आदमी हो। रातको दर्द उभड़े तो परेशान होगे। अच्छा लवण भास्करकी टिकिया अपने पास रख लो। दो अभी खा लो, दो रातको खाना।' गीताने मेरे बिस्तरपर लवणभास्करकी शीशी लाकर रख दी।

'तुम्हें नींद तो आती है।'

'कुछ शिकायत है।'

'तुम सोते समय सत्यार्थप्रकाशका समुल्लास पढ़ लिया करो। अच्छा रहेगा।'

श्वसुरजी आलमारी खोलकर एक मोटी-सी पुस्तक ले आये, गर्द झाड़कर मेरे हाथोंमे थमा दी। फिर बोले—

'तुम्हारी अवस्था पचीस सालकी होगी।'

'जी नही कुछ कम।'

'ठीक-ठीक बताओ।'

'२४ साल तीन महीने।'

'तुम्हे पूरे २५ साल तक ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। अच्छा अब सोओ।'

श्वसुरजीके जाते ही सन्नाटा छा गया। गीता और गायत्रीकी आवाज़-तक सुनाई नहीं दी। पूरे १२ घण्टे बाद उल्लूका सबेरा हुआ।

सुबह सबेरे गीताने दर्शन दिया। पीछे-पीछे गायत्री देवी भी थीं। नयन भर दर्शनकर मैंने आँख मूँद ली।

'पिताजी कहाँ है गीता ?'

'घूमने गये। रात कैसी कटी जीजाजी।'

'गीता-गायत्रीकी माला जपते-जपते।'

'हम लोग भी आपके नामकी माला जप रहे थे। पर जीजाजी। आपका नामकरण करनेमें बुद्धिका अधिक प्रयोग नहीं किया गया है। चूड़ामणि यह भी कोई नाम है। चूड़ा मटरकी खिचड़ीका-सा मज़ा आता है।'

'बात यह है कि सारी बुद्धि तो तुम्हारे पिताजीके पास चली आयी थी जो तुम लोगोंके नामकरणमे खर्च कर दी गयी।'

'हम लोगोंका नाम बुरा है क्या ?'

'नहीं जी। पर गीता देवी गायत्री देवीका जोड़ा रामायणलाल महाभारत प्रसाद, सत्यार्थप्रकाशसे ही मिल सकता था। मै तो ज़रा बेतूका पड़ता हूँ। बात यह है कि न तो मेरा जन्म जेलमे हुआ है न मेरे पिता जेलर थे।'

'आप तो नाराज़ हो गये ।'

'नाराज़ नहीं हूँगा । आज होली है । ससुराल आया था । सोचा था तुम दोनोंसे होली खेलूँगा, रगसे सरोबोर करूँगा—पर यहाँ रगका कौन कहे, होलीके दिन एक बूँद आँसू गिराना भी मना है । ऐसी होलीसे मुहर्रम अच्छा है ।'

'पिताजी रंगसे नाराज होते है ।'

'तुम्हारे पिताजी है । किसी दूसरेके पिता होते तो कुछ कहता ।'

'नाराज़ तो हैं ही, पर आपको मनानेकी भी कोई तरकीब ।'

'हाँ, एक तरकीब है, कल शामको जाऊँगा । तुम्हारी जीजीको साथ जाना चाहिए । यदि तुम पिताजीसे अनुमति ले सको तो—'

'क्या ईनाम दोजिएगा ?'

'वही होलीका ईनाम ।'

'जाइए ।'

इतनेमें खड़ाऊँ खटखटाते श्वसुरजी आ गये । मेरे हाथोमे एक मोटी-सी पुस्तक थमाते हुए बोले—'अभेदानन्दकी नई पुस्तक है, आत्मदर्शन । जर्मनीसे छपकर आयी है । ज़रा देखो तो ।'

'पिताजी, आपके ऊपर रग किसने डाल दिया !'

'क्या बताऊँ, ऐसे असभ्य गँवार लड़कोंसे पाला पड़ा है । लाख बिगड़नेपर भी कम्बख्त कपड़ा ख़राब कर ही गये । ठण्डा पानी उड़ेलनेका न जाने यह कैसा त्यौहार है । सरदी-जुखाम हो जाय, न्यूमोनिया हो जाय तो सैकड़ों बिगड़ जायँ । फिर कपड़ेकी इस तंगीमें रंग डालना मूर्खता है, मूर्खता ।'

करीब दो घण्टे बाद नहा-धोकर लौटा तो श्वसुरजीका पहला प्रश्न हुआ—

'पुस्तक देखी ?'

'जी हाँ ।'

'क्या पढ़ा बताओ।'

'बहुत अच्छी पुस्तक है।'

'सो तो मैं भी जानता हूँ। पढ़ा क्या?'

'पढ़ा नहीं, बाहरसे देखा भर है।'

'हूँ, लाओ मुझे दो। उपन्यास होता तो अबतक चट कर जाते।'

थोड़ी देर बाद तो बोले—

'तुम्हारा पेट खराब है, इसलिए मूँगकी खिचड़ी बनवाई है। खाओगे न?'

'जी, इच्छा तो नहीं है।'

'तब मत खाओ। त्यौहारका दिन है। जान-बूझकर तबीयत खराब करना ठीक नही।'

वाह री क़िस्मत। होलीमें मूँगकी खिचड़ी भी नसीबमें नहीं। अल्लाह तेरी कुदरत। ससुराल तेरी न्यामत।

मैं अभी पेटके चूहोंकी कसरत ही देख रहा था कि गीता थाली लगाकर ले आयी।

'थोड़ा-सा खा लीजिए जीजाजी।'

'ले आयी है तो खा ही लो।' श्वसुरजीने भी व्यवस्था दी।

मैंने हाथ बढ़ाया। थोड़ी-सी खिचड़ी पेटमे उतारी। होलीके पकवानोंकी याद आयी तो हाथ रुक गया। भूखको लात मारकर मैंने थाली हटा दी। किसीने कुछ नहीं कहा। नौकर थाली उठा ले गया।

थोड़ी देरमे एक तश्तरी लिये हुए गीता आयी। आज नयी बात है जो चार दिनों बाद पान-सुपारीके दर्शन हो रहे है।

'लीजिए जीजाजी।'

मैंने तश्तरीकी ओर हाथ बढ़ाया तो देखा पानके स्थानपर टिकिया।

'यह क्या है?'

'लवणभास्करकी टिकिया।'

'दो-चार खा लो। नहीं तो पेटमें फिर दर्द हो जायगा।'

इच्छा न होते हुए भी लवणभास्करकी टिकिया मुखमें रखकर चुभलाने लगा। गीता कनखियोंमे मुसकराहट लिये हुए चली गयी। इधर मेरी झुझलाहट बढ़ती जा रही थी।

श्वसुरजी आराम कुर्सीपर 'आत्मदर्शन'मे आनन्द-विभोर हो रहे थे। मुझे खाली देख कुछ आध्यात्मिक उपदेश प्रारम्भ ही करनेवाले थे कि मैं खाँसीके बहाने उठकर स्नानागारके कमरेमे चला गया। वहाँसे चुपकेसे गीताके कमरेमें आया। गायत्री देवी भी वहीं थीं।

'भाई, मुझे बरेली जेलसे मुक्ति दोगी कि नहीं? या अनशन करना होगा।'

'बड़ी जल्दी घबड़ा गये जीजाजी।'

'नहीं गीता, मेरी इच्छा हो रही है कि यहाँसे भाग जाऊँ। मेरा साथ दोगी?'

'नहीं, जीजीको ले जाइए।'

'अच्छा तो अपना वादा पूरा करो।'

गीता ड्राइंग-रूममें चली गयी।

'पिताजी।'

मैं और गायत्री देवी दरवाज़ेकी सूराख़से अपने भाग्य-निर्णयका फ़ैसला सुन रहे थे।

पिताजीने आत्मदर्शनमें डूबा हुआ गम्भीर चेहरा ऊपर उठाया।

'क्या है गीता?'

'जीजाजी जीजीको अपने साथ ले जानेके लिए कह रहे हैं।'

'नहीं, उम्रमें अभी दस महीने बाक़ी हैं। हम धर्म-पुस्तकोंकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकते।'

सुनते ही दिल बैठ गया। मैंने गायत्री देवीकी ओर देखा और उन्होंने मेरी ओर। किसीके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकला। ग़लती मेरी ही

थी जो श्वसुरजीको सही उम्र बताने गया। मुझे क्या मालूम था कि मेरी उम्रका प्रयोग मुझीपर ज़बर्दस्ती किया जायगा। खैर, ग़लती हो ही गयी।

गीता निराश लौट आयी।

'और कोई तरकीब है गीता ?'

'नहीं जीजाजी।'

श्वसुरकी जिह्वा सचमुच अखण्ड शिला निकली जिससे टकराकर मैं बैरंगघर वापस आया। कहनेको मै ससुरालमे होली मनाने गया था। पर अनुभव यह होता है कि बरेली जेलकी हवा खाकर लौटा हूँ।

धर्म-संकट

•

शिक्षार्थी

वे दो थे, पर एक बातमें एकमत थे। वह यह कि पूँजीवाद, समाजवाद और सम्प्रदायवाद—सब बाद-विवाद हैं, इसलिए बाद हैं, और सबसे अधिक निर्विवाद है।

उन दोनोंमें एक बिना किसी भेदभावके हिन्दू था और दूसरा मुसलमान। एकका नाम ललित था, दूसरेका हमीद।

दोनों कभी एक साथ पढ़ते थे और अब एक साथ बेकार थे—अवसरवादी बेकार। कहनेका मतलब यह है कि वे आरामके साथ बेकार थे।

वे तो दो थे ही।

ये भी दो थीं—

शायद इसलिए कि दोनोंके नामोंमे बहुत कुछ मेल था। आशा और आयशा; धार्मिक विभिन्नताको घरमें छोड़कर, कालेजमें दो सगी बहनोंकी भाँति समय व्यतीत करती थीं। परिणाम यह हुआ कि जो हिन्दू थी, वह एक मुस्लिम युवककी सच्चरित्रतासे प्रभावित हो गई और जो मुसलमान थी, वह एक हिन्दू युवकके सदाचारपर लट्टू हो गई।

आशाने आयशाको अपने भेदकी बात बतलाई, 'मै चाहूँगी कि मेरा विवाह हो तो हमीद जैसे हीरेके साथ हो!'

और आयशाने अपने हृदयका रहस्य आशाको बतलाया, 'काश मेरी शादी ललित जैसे लालसे हो सकती!'

कहना न होगा कि प्रत्येकने अपने-अपने हृदयोद्गारके महत्त्वको लम्बी-लम्बी साँसोंसे और भी बढ़ा दिया था। दुःखकी बात यह थी कि इच्छाएँ थीं, मार्ग न थे। हाय री मजबूरी! इतने उन्नत विचारोंको लेकर वे किसी आवश्यकतासे अधिक उन्नत देशमें क्यों न पैदा हुई?

आशाने आयशाको बतलाया, 'उस दिन मैं अपने कमरेमें बैठी हुई कुरान शरीफ़के अँग्रेज़ी अनुवादका अध्ययन कर रही थी कि इतनेमे बाहरी बैठकमे एक युवक आज्ञा लेकर आया और बड़े अदबसे पिताजीके पास बैठ गया। फिर नम्रतापूर्वक बोला, 'मैं आपको पहलेसे ही यह बतला देना चाहता हूँ कि मैं मुसलमान हूँ, मुझे लोग हमीद कहते है। आपकी खिदमतमें एक छोटी-सी दरख्वास्त लेकर हाज़िर हूँ पंडितजी।' पिताजीने पूछा तो उसने बतलाया—'हमारे मुहल्लेके कुछ हिन्दू भाई अखण्ड कीर्त्तन करना चाहते हैं और मैं तहेदिलसे इसकी ताईद करता हूँ, इसलिए कीर्त्तनके लिए चन्दा करने निकला हूँ। मजहब नहीं सिखाता आपसमें बैर रखना, इस बातका इकट्ठा कायल हूँ!' इसपर मेरे पिताजीने गद्गद होकर हमीदको दो रुपये दिये और मैंने भी ऐसे होनहार युवकको पर्देकी आड़से प्रशंसाकी दृष्टिसे देखा।'

'ठीक ऐसी ही बात मेरे साथ भी हुई है,' आयशा बोल पड़ी। 'इत्ति-

फ़ाक हो तो ऐसा। जब ललित मेरे वालिदसे इजाज़त लेकर अन्दर आया और आकर बैठकमें मेरे वालिद जानके क़रीब सोफ़ेपर बैठ गया, तब मैं बगलवाले कमरेमे बैठी गीताका अँग्रेजी तरजुमा पढ़ रही थी। निहायत आजिज़ीके साथ ललितने अब्बाजानसे कहा, 'मौलाना साहब, वैसे तो मैं हिन्दू हूँ, मेरा नाम ललित है, पर मैं धार्मिक झगड़ोंको ठीक नही समझता। मेरे मुहल्लेमें कुछ मुसलमान भाई मीलाद शरीफ़का आयोजन कर रहे हैं और मैं हिन्दू होकर भी उसके लिए चन्दा इकट्ठा कर रहा हूँ। क्या यह बुरी बात है ?' कहनेकी देर थी, मेरे अच्छे अब्बाने फ़ौरन तीन रुपये ललितके हवाले किये और उसकी पीठ ठोंकी। शरीफ़जादे ललित और अपने बीचमें पड़े दरवाज़ेके पर्देको मैंने ज़रा-सा खिसकाकर देखा तो नूरके उस नूरको मै तब तक देखती ही रह गई, जब तक वह आँखोंसे ओझल नहीं हो गया और कमरेमे अँधेरा नहीं छा गया।'

दोनों लड़कियोंने एक स्वरसे स्वीकार किया कि भारत और पाकिस्तानमें ऐसे उदार-हृदय नवयुवक टार्च लेकर खोजनेपर भी न मिलेंगे।

आशाने आह भरी, 'मै बड़ी अभागिन हूँ।'

आयशा भी पीछे नही रह सकी। ठीक नाप-तोलकी उतनी ही लम्बी और उतनी ही भारी आह भरकर बोली, 'मैं भी कितनी बदक़िस्मत हूँ !'

आशाने कहा, 'हाय, हमीद, तुम हिन्दू न हुए, नहीं तो....।'

आयशाने कहा, 'आह, जालिम ललित, तुम मुसलमान न हुए वर्ना....।'

मुँहकी बात गलेमें अटककर रह सकती थी, पर मनकी मनमें नहीं रह सकती थी।

आशाको स्पष्ट रूपसे कहना पड़ा, 'तब मैं ही हमीदके लिए मुसलमान हो जाऊँगी और कोई उपाय नहीं।'

आयशाने भी साफ़-साफ़ कह दिया, 'तब मैं ही ललितकी खातिर हिन्दू हो जाऊँगी। दूसरा चारा नहीं।'

एक साथ ही दोनोंमें सुबुद्धिका उदय भी हुआ।

'ठहरो', आशा बोल पड़ी, 'मै ऐसा न होने दूँगी। यह कितनी बुरी बात होगी, तुम्हारे अब्बा क्या सोचेंगे और उनकी कितनी हँसी होगी।'

'हाँ', आयशाने कहा, 'तुम्हारे बूढ़े वालिदके दिलको बड़ा सदमा पहुँचेगा। वे किसीको मुँह दिखलानेके क़ाबिल न रह जायँगे।'

आशाने पूछा, 'फिर ?'

आयशाने पूछा, 'तब ?'

आशाने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारे लिए बड़ा त्याग कर सकती हूँ।'

आयशाने भी उत्तर दिया, 'मै भी तुम्हारे लिए बड़ी-से-बड़ी क़ुर्बानी कर सकती हूँ।'

आशा बोली, 'मैं अपने कलेजेपर पत्थर रखकर 'अपने' हमीदको तुम्हारे लिए सुरक्षित रहने दूँगी।'

आयशा बोली, 'और मैं अपने दिलका गला दबाकर 'अपने' ललितको तुम्हारे लिए छोड़ दूँगी, तुम्हे सौप दूँगी।'

आशाने आयशाको समझाया, 'तुम्हें दुःख न होना चाहिए। हमीदके रूपमें तुम्हे दूसरा ललित प्राप्त हो जायगा।'

आयशाने आशाके आँसू पोंछे 'तुम्हे दिल छोटा न करना चाहिए। तुम्हें दूसरा हमीद मिल जायगा।'

इस समझौतेसे और कुछ नहीं हुआ तो कम-से-कम इतना तो हो ही गया कि धर्म परिवर्तनकी नौबत आनेकी जो सम्भावना थी, वह दूर हो गयी।

परन्तु अब नई कठिनाई उपस्थित हुई। न तो आशाको अपने हमीदका पता-ठिकाना ज्ञात था कि वह उसे आयशाके सुपुर्द करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकती, न आयशाको अपने ललितका पता मालूम था कि वह उसे आशासे मिलाकर अपने वादेसे छुट्टी पा लेती।

इस प्रकार दोनोंमें-से प्रत्येककी धरोहर बहुत दिनों तक धरोहर ही बनी रही। किन्तु, **"जिन खोजा, तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।"**

वह दिन भी कितना स्वर्णिम था, जब वे दोनों एक साथ सिनेमा देखने गयी हुई थीं। वैसे दोनों ही सिनेमा देखना बुरा समझती थीं। यह सरासर उनके आदर्शके विरुद्ध था। पर जो नया खेल लगा था, उसका नाम 'एकता' था, इसलिए यह बात और थी। फिर भी उन्होंने एकताके सम्बन्ध-मे पूरी एहतियात बरती और जनाने दर्जेके टिकट लिये।

अभी वे अपनी-अपनो सीटपर बैठी ही थीं कि आशाकी दृष्टि नीचे हालमे गयी और वह एक बार चौककर फिर हर्षातिरेकसे विह्वल होकर बोली, 'उधर देखो, उस सीटपर वह जो युवक बैठा हुआ है, वही मेरा हमीद है जो अब तुम्हारा होनेवाला है।'

आयशा भी आशासे कम आश्चर्यान्वित नही हुई और खुशीसे पागल होकर बोली, 'हाँ, देखो न, जो युवक बगलमे बैठा है, वह और कोई नहीं, मेरा ललित है जो अब तुम्हारा होनेको है।'

दोनोंने बिलकुल देरी नहीं की। वे उठकर गयीं और बुकिग क्लर्ककी फटी-फटी-सी आँखोंकी चिन्ता न करके, उन्होंने अपने टिकट बदलवाये। फिर दोनों सीधे मर्दाने दरजेमें जा बैठीं—हमीद और ललितके ठीक पीछे। पहले तो आशा हमीदके पीछेवाली सीटपर बैठी और आयशा ललितके पीछे-वाली सीटपर बैठ गयी पर तुरन्त ही दोनोंने सीटें बदलकर अपनी-अपनी भूल सुधार ली। आशा ललितके पीछे बैठ गयी और आयशा हमीदके पीछे। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय दोनो लड़कियोंके कलेजे बाँसों उछल रहे थे। इसकी पुष्टि करनेके लिए शायद किसी डाक्टरकी आवश्यकता नहीं थी। दोनोंमे-से एककी भी समझमे सहसा यह नहीं आ रहा था कि ऐसी स्थितिमे क्या कहना चाहिए और क्या करना चाहिए। उनके हृदय अपने-अपने कारागारको तोड़-फोड़कर आकाशमें विचरण करने जा रहे थे लेकिन मुँहोंपर फिर भी ताले लगे हुए थे। निश्चय ही यह बड़ा विकट गत्यवरोध था, जिसने दो अबलाओंको किं-कर्तव्य-विमूढ़ कर दिया। जब और कुछ नहीं सूझा, तब वे बेचारियाँ मन-ही-मन दोनों आदर्शवादी चरित्रनायकोंको अपने-अपने धर्म-

के अनुसार प्रणाम और सलाम करके कुछ नहीं तो उनकी सुमधुर वाणीका ही रसास्वादन करने लगीं और इस प्रकार अपनेको धन्य मानकर कुछ सन्तोषका अनुभव करनेके लिए तैयार हो गयी। पर्वत न सही तो पर्वतकी छाया ही सही।

हमीद और ललित आपसमे ही बातें करनेमें तल्लीन थे। उन्होंने सिर मोड़कर, आँखें उठाकर अपने पीछे देखा तक नहीं। वे अपनेमे ही खोये हुए थे। फिर उनकी आदर्शवादिता उन्हें इधर-उधर ताक-झाँक करनेकी आज्ञा नहीं दे सकती थी।

यदि हम इसे उनके चरित्रकी दृढता कहते हैं तो हमे यह न भूलना चाहिए कि आशा और आयशा भी चरित्रकी दृढ़ताके मामलेमे कम न थी। किन्तु आज उन्हे चरित्रकी यह अनावश्यक दृढ़ता दोनों युवकोंकी ओरसे बुरी तरह खल कर रही।

अस्तु।

हमीदने अँगड़ाई लेकर कहा, 'पता नहीं यह पिक्चर कैसी है।'

'नाम तो अच्छा है', ललित बोला, 'एकता—वाह!'

'एकताके लिए हम दोनों जो कोशिश कर रहे हैं, जो ज़ोर लगा रहे हैं, उसकी तस्वीर नहीं खिच सकती।'

'अजी, ज़ोर ही नहीं लगा रहे हैं', ललितने कहा, 'जान लड़ाये दे रहे हैं।'

'ठीक है', हमीदने ललितका हाथ दबाकर कहा, 'मगर हम दुनियाको दिखलाते तो फिरते नही कि हम क्या कर रहे हैं।'

कहना न होगा कि पीछे बैठी दोनों लड़कियाँ दोनों युवक-शिरोमणियों-के मुखारविन्दोंसे निकले वचनामृतके प्रत्येक शब्दको, नहीं-नहीं, प्रत्येक अक्षरको कान लगाकर सुन रही थीं, यद्यपि दोनों मित्र—अपनेमें ही बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे।

'दुनिया अन्धी है' ललितने दावेके साथ कहा।

और आयशाको यह बात अक्षरशः सत्य लगी। यह दुनिया व्यक्तिका वास्तविक मूल्यांकन कब करती है ?

'हमे इससे क्या गरज़ ?' हमीदने एक दार्शनिककी भाँति गम्भीर होकर कहा, 'हमे तो अपने कामसे काम है।'

और यह बात आशाके अन्तस्तलमें किसी तपस्वीकी सूक्ति बनकर उतरी और उतरकर बैठ गयी। बस, अपने कामसे काम रखना—यही तो कर्मठ मनुष्यका लक्षण है। भगवान् कृष्णका कथन भी आशाको याद आ गया कि फलकी चिन्ता न करके कर्म करना चाहिए।

दोनों लड़कियोंने सोचनेको तो यह सोच लिया; किन्तु शीघ्र ही दोनोंने मन-ही-मन अपनी भूल, भूलसे उत्पन्न लज्जा और लज्जासे उत्पन्न ग्लानिका अनुभव किया। यदि आयशाको ललितकी किसी बातपर कान न देना चाहिए था तो आशाको हमीदके किसी विचारपर ध्यान न देना चाहिए था। यह अनधिकार चेष्टा थी। जो एक बार वर्जित, वह सदाके लिए त्याज्य ! वे अपना समझौता आप ही नही भंग कर सकती थीं।

उधर हमीद और ललित अपने पीछे उमड़ने-घुमड़नेवाली सीमा-बद्ध आँधियोंकी क्रियाशीलतासे सर्वथा अनभिज्ञ थे।

हमीदने ललितसे पूछा, 'आज तुमने कितना चन्दा इकट्ठा किया ?'

'सात रुपये', ललितने कहा।

यह सुनकर आयशाने लाखों पाये।

'और तुमने ?' ललितने पूछा।

'कुल मिलाकर बाइस रुपये मिले', हमीदने उत्तर दिया।

आशा पुलकित होकर सोचने लगी—धन्य है, हमारे उन्होंने बाजी मार ली।

'शाबाश !' ललित बोला, 'लम्बा हाथ मारा। पर, कैसे ? मैं भी तो सुनूँ।'

आशाको ललितकी यह बात बहुत बुरी लगी—बड़ा नीच है यह ललित जो ऐसी ओछी बात मुँहसे निकालता है ! धार्मिक एकताके लिए चन्दा इकट्ठा करना क्या कभी हाथ मारना माना जा सकता है ?

'इतना भी नहीं समझ सके तुम ?' हमीदने कहा, 'बडे बुद्धू हो।'

आयशाको हमीदपर बड़ा क्रोध आया। ललित जैसा विचारवान् युवक कभी बुद्धू कैसे हो सकता था ?

'कुछ बतलाओ तो समझूँ भी उस्ताद', ललितने कहा।

'आज मै बिलकुल नये मुहल्लेमे गया था', हमीद बोला। 'वहाँ मुझे कई शिकार आँखके अन्धे और गाँठके पूरे मिल गये। क्या समझे ?'

इसका क्या मतलब था ? आशाको ठहरकर सोचना पड़ा। उसके सुनने-मे ही कुछ भूल हो सकती थी।

'ठीक है', ललित बोला। 'इस प्रकार हम दोनोंमें-से प्रत्येकके हिस्सेमे साढ़े चौदह रुपये पड़े। यह कुछ कम नहीं है।'

यह क्या मामला था ? आयशा चक्करमें पड़ गयी। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि उसके कान धोखा खा गये थे ?

'कभी कम, कभी ज़्यादा' हमीदने कहा। 'यह हाथ लगनेकी बात है। हमें कभी घाटा होनेका कोई डर तो है ही नहीं कि हम परेशान हों।'

'हमी मजेमें है', ललित बोला। 'हर्र लगे न फिटकरी, फिर भी रंग चोखा।'

'कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती', हमीदने कहा, 'और फिर भी मौजसे कटती है।'

हतबुद्धि आशा और आयशाकी समझमें उन दोनोंकी ये बातें बिलकुल नहीं आ रही थीं। एक भ्रमित थी तो दूसरी चकित !

ललितने चाय और नमकीनवाले लड़केको आवाज़ दे कहा, 'बने रहो मौलाना !'

इतनेमे उन्हें अपने पीछे रेशमी कपड़ोंकी सरसराहट सुनाई पड़ी। दोनों-ने एक साथ सिर पीछेकी ओर मोड़े। ललित आयशाके रूप-माधुर्यको देख-कर दंग रह गया तो हमीद आशाके रूप-लावण्यको देखकर। दोनोंके मुँहोंसे एक साथ सीटीकी दो हल्की ध्वनियाँ फूट पड़ी। फिर एकसे मुँहके 'वाह !' और दूसरेके मुँहसे 'ग़जब है !' ध्वनित हुआ।

किन्तु बहुत देर हो चुकी थी। कहा भी जाता है कि सौन्दर्य अधिक समय तक नहीं ठहरता।

एक बार फिर बुकिग क्लर्ककी आँखें फटी-की-फटी रह गईं। उसे दो टिकट दो बार बदलने पड़े—इस बार ज़नाने दर्जेके लिए। उसने अपने मनमे कहा, 'आजकलकी इन छोकरियोंका कुछ ठिकाना नहीं। पलमें कुछ, पलमे कुछ ! कभी मर्दाना दर्जा प्राप्त करना चाहती हैं, कभी ज़नाना। ऊपर ईश्वरकी और नीचे इनकी लीला अपरम्पार है।'

बोर : एक दर्शन

•

हरिशङ्कर परसाई

'टेल्ब बोर' एक बन्दूक़ होती है, लेकिन 'बोर' एक तोप होती है। दुनियाके हर कोनेमें, हर जातिमे, बोर पाया जाता है। न्यूयार्ककी भीड़-भाड़में भो बोर मिलेंगे और उत्तरी ध्रुवके वीरानेमें भी। काश्मीरके उद्यानोंमें भी बोर मिलते हैं और सहाराके रेगिस्तानोंमें भी। और मेरा विश्वास है कि शेरपा तेनजिंगके साथ जो दल गौरीशंकरकी चोटी तक पहुँच गया था, उसमें भी एकाध बोर ज़रूर होगा जो रास्तेमें बाक़ी लोगोंको तंग करता गया होगा। कवि बायरन तो यहाँ तक कह गया है कि :

Society now is a polished horde–composed of two mighty tribes, the bores and the bored.

मैं बोरको दुनियाका सबसे हिंसक प्राणी मानता हूँ। अगर किसी जघन्य अपराधीको दण्ड देना है तो उसे चन्द घण्टे किसी बोरके हवाले कर दीजिए। ज़िन्दगी भरके लिए सबक़ सीख जायगा। अगर किसीको हमारी हत्या करनी हो तो हमे किसी बोरके साथ किसी कमरेमें चार-छः घण्टे बन्द कर दीजिए, दरवाज़ा खोलनेपर हम मरे मिलेंगे। कोई गुण्डा सड़क-पर, आपपर हमला करे तो आप चिल्लाइए और रक्षाके लिए पुलिस हाजिर। पर बोर आपपर दिन-दहाड़े आक्रमण करे, घण्टों जुल्म ढाये, मगर आपकी सहायताके लिए न क़ानून, न पुलिस। भूत भगानेके लिए तो हनुमान चालीसा भी है—बोरको भगानेके लिए न तन्त्र है न मन्त्र।

बोरके भी कई प्रकार होते है। पहला है बकवादी बोर (Talkative Bore) जो घण्टों आपके पास बैठकर दुनियाके हर विषयपर बके और आपको केवल 'हूँ' कहनेका मौक़ा दे।

मौन बोर (Silent Bore) यह घण्टों आपके पास बैठेगा, पर बोलेगा नहीं। बीच-बीचमें अपने आपसे ऊबकर जम्हाई लेगा और कहेगा····'हाँ और क्या समाचार है ?' आप कोई समाचार नहीं कहेंगे, पर वह यह मान-कर कि आपने कुछ समाचार कहा है दस मिनिट बाद फिर कहेगा····'हाँ', और क्या समाचार है ?'

जिज्ञासु बोर (Inquisitive Bore) यह आपके पास बैठकर तरह-तरहके सवाल पूछकर प्राण ले लेगा। एक साँसमें पूछेगा 'वेदान्त दर्शनकी माया और सांख्य दर्शनकी प्रकृतिमें क्या साम्य है ?' और दूसरे ही क्षण पूछेगा····'क्यों साहब, नरगिसका क्या पता है ?'

साहित्यिक बोर (Literary Bore) इस वर्गमें कवि और लेखक आते हैं। इन्हें श्रोताको देखकर वही खुशी होती है जो भूखे आदमीको छप्पन प्रकारके भोजनकी थालीको देखकर।

चापलूस बोर (Flattering Bore) यह बड़ा खतरनाक होता है, क्योंकि यह बड़ा मोहक होता है, इसलिए कि यह आपकी तारीफ़ करता

है। इसकी पहचान यह है कि यह हमेशा दाँत निपोरता रहता है। और इसके मुखसे अक्सर 'हे····हें····हें'····शब्द निकलता है। यह आपकी छींक-को भी अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वकी घटना बतायेगा और कहेगा कि एक बार गौतमबुद्धको भी ऐसी ही छींक आयी थी।

मधुर बोर (Sweet Bore) याने वह रूपवती कोमलांगी जिसका रूप आकर्षक हो और बातचीत निहायत रद्दी। इसके प्रहारसे पैंतरे बदलकर बचना चाहिए। उसकी बात सुनने और खूब दिलचस्पी लेनेका नाट्य करते हुए उसकी बात बिलकुल न सुनकर रूप-सुधा पान करते जाना चाहिए।

रिटायर्ड बोर (Retired Bore) वे अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी जो आपसमें एक दूसरेको बोर करके समय काटते है। बेटा और बहूकी निन्दा करते है·····'क्या बतायें तिवारीजी, लड़का नालायक़ निकल गया। औरतके कहनेमें चलता है और वह हमारी बहू, हमारी चोरीसे हलुआ बनाकर खा लेती है।'

आक्रमणी बोर (Aggressive Bore) यह चीतेकी तरह चालाकीसे हमला करता है। सड़कपर आपको जाते देखकर यह चुपचाप पीछा करेगा। और जहाँ आप रुके कि इसने आक्रमण किया। एक आक्रमणी बोरसे मैं अक्सर परेशान रहता हूँ। वह मेरा हाथ पकड़ लेता है, बात करते-करते आगे बढ़ता जाता है, और थोड़ी देरमें, उसका एक पाँव मेरे पाँवपर होता हैं, उसका मुख मेरे मुखपर और उसके मुखके थूकके कण मेरे मस्तकका अभिषेक करते हैं।

सार्वजनिक बोर (Public Bore) के वर्गमें वे भाषणबाज नेता होते हैं जो 'गाँधी मैदान' और 'तिलकभूमि' में सार्वजनिक रूपसे बोर करते हैं।

एक नया प्रकार पिछले हफ़्ते ही मिला। एक मित्रके यहाँ मैं जाता तो मकानके दूसरे हिस्सेमें दीवारके उस पार दो व्यक्ति बातें करते मिलते। एक महाराष्ट्र ब्राह्मण, दूसरा पंजाबका जाट। मैंने मित्रसे पूछा, 'क्यों भाई यह सहअस्तित्व कैसा ?' उन्होंने कहा, 'दोनों बड़े दुखी हैं····न इन्हें श्रोता

मिलता है, न उन्हें। इसलिए परस्पर घण्टों बोर करते हैं। इतवारको दोनों भेड़ाघाट जाते हैं और वहाँ रम्य प्रकृतिकी छबिके बीच परस्पर बोर करते हैं।' उनमें एक जिसने कभी चूहा नहीं मारा था शेरके शिकारका अनुभव सुनाता था और दूसरा जिसके खानेका ठिकाना नहीं था, हवाई जहाजकी दूकान खोलनेकी बात करता था। पर इस सबका बादशाह होता है बोर डिलक्स (Bore De-luxe) याने वह बड़ा आदमी जिसकी बात छोटे आदमी मजबूरन सुनते है। यह रोब गाँठकर बोर करता है। इसमें आते हैं उद्घाटन भाषण देनेवाले लोग, महा कवि, महा संगीतज्ञ, मन्त्री, महा नेता और बड़े अफ़सर।

ज़िन्दगीमें कई बोर मिले हैं लेकिन कुछ वर्ष पहले एक ऐसे मिले थे जिनकी याद करके मैं अभी भी चौंक उठता हूँ। मुझे शहरमें आये थोड़ा ही समय हुआ था कि वे मुझे सूँघते हुए एक दिन आ पहुँचे। अपना परिचय दे डाला और मेरा ले डाला। इसके बाद तो वे कभी भी आ जाते। कई चाँदनी रातें बरबाद की उन्होंने मेरी। जितना दुख उन्होंने मुझे दिया उसका एक-तिहाई ही बेचारे रावणने ऋषियोंको पहुँचाया था, कि रामका अवतार हो गया, पर मेरे लिए एक वानर तक न भेजा गया। लेकिन मुझे रामका सकोच समझमें आया। अगर वे अवतार भी ले लेते तो सीताकी खोज करने तथा रावणसे लड़नेके लिए उन्हे एक बन्दर भी न मिलता क्योंकि सब बन्दर इस बोरकी तरफ़ हो जाते—अपने वंशका जानकर।

वे कवि थे, लेखक थे, आलोचक थे और 'मिशनरी बोर' थे। कपड़े अस्त-व्यस्त, दाढ़ी बढ़ी, बाल लम्बे और रूखे, चप्पलें टूटीं, बगलमे किताबें दबीं। सड़कपर चलते तो लगता कि बनमानुष स्टेजपर आदमीकी नकल कर रहा है। नाम था मदन जिसका अर्थ नागरी प्रचारिणीके हिन्दी शब्द-कोषके पृष्ठ २१८ पर कामदेव लिखा है पर आप इन्हें देखें तो आपको लगे कि ये जैसा नाम वैसा गुण इस कहावतके मुँहपर कसकर चाँटा मार रहे हैं। उनका ख्याल था कि जो कलाकार जितना अजब शक्लका होगा

वह उतना ही महान् होगा। और इस स्टैण्डर्डसे मदनजी दुनियाके सबसे महान् कलाकार हुए क्योंकि उन्हें देखकर उन्हींके घरका कुत्ता भोंकने लगता था।

वे कविता गाते थे—बहुत रसविभोर होकर। स्वरकी क्या बात है। ऐसा स्वर था कि मुझे लगता था कि हिज मास्टर्स वायस रिकार्ड कम्पनीके रिकार्डोंपर श्रोताके स्थानपर मदनजीकी फोटो क्यों नहीं छपती ?

संसार भरके विषयोंपर वे बातें करते थे। संसारकी सब भाषाओंकी किताबें उन्होंने पढ़ी थीं। किसी भी किताबका नाम लीजिए वे कहेंगे.... 'हाँ हमने पढ़ी है। अच्छी है।' एक बार अँग्रेज़ी लेखक स्काटपर बातें हो रही थीं। किसीने पूछा...'मदनजी आपने 'स्काटस् इमल्शन' पढ़ा है ?' मदनजी बोले....'वाह भला 'स्काटस् इमल्शन' हमसे छूट सकती है। कालेजमे ही पढ़ ली थी। स्काट्की कला 'इमलशन' में ही चरमबिन्दुपर पहुँची है।'

मेरा नया परिचय था। एक इतवारको मैं सुबह लगभग ९ बजे बाल कटाने जा रहा था कि आप चौराहेपर मिल गये। देखते ही नागफनीके काँटेकी तरह खिलकर बोले...'वाह-वाह, आपके तो सबेरे-सबेरे ही दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हो गया !' होगा उनका सौभाग्य; मेरी ज़िन्दगीमे तो वैसा अभागा दिन कभी नहीं उगा। वे बातें करने लगे। पहिले मैंने उनकी बात-का जवाब एक-एक पैराग्राफमे दिया, फिर संयुक्त वाक्यमे, फिर साधारण वाक्यमें, फिर केवल क्रिया और संज्ञामें। फिर केवल क्रिया बोलने लगा। फिर केवल 'हाँ' या 'नहीं'। फिर केवल 'हूँ'। आखिर मौन हो गया। पर उनका उत्साह कम न हुआ। एक-डेढ़ घण्टे बाद वे बोले, 'चलिए चाय पियें।' वे किसीको मुफ़्तमें बोर नहीं करते थे। 'पेमेण्ट' करके बोर करते थे, चाय-नाश्ता देते थे। चाय पी। फिर एक घण्टा बातचीतका दूसरा दौर चला।

आखिर मैंने कहा....'मुझे बाल कटाने जाना है।' वे बोले, 'चलिए

मैं भी वहीं बैठूँगा। बहुत दिनों बाद तो सत्संग हुआ है।' वे अब शरच्चन्द्र-पर बोल रहे थे। मैंने जाने किस मनहूस सभामें कह दिया था, 'शरत्के पात्र हम-तुम जैसे मानव कम लगते है।' आज सोचता हूँ कि मैने यह क्यों कह दिया ? मैं गूँगा क्यों नहीं हो गया। इस वाक्यसे उन्हें बिजली छू गई। बहुत उत्तेजित होकर बोले····'यह क्या कहते है आप ! शरत्पर लगाया गया यह आरोप मुझपर व्यक्तिगत आक्षेप है। मैं शरत्के लिए अपनी गर्दन कटवा सकता हूँ। मैं आपको समझाता हूँ।' और उन्होंने वहीं सड़कके किनारे मुझे डेढ़ घण्टा खड़ा रखकर शरत्के पात्रोंकी मानवीयता समझाई। सव्यसाची, अभया और राजलक्ष्मीके बालोंकी खाल खींची। बड़ी मुश्किलसे मैं नाईकी दूकान पहुँचा। बाल कटाने कुर्सीपर बैठा तो वे मेरे ठीक पीछे बेंचपर बैठ गये। और आईनेमे मेरे प्रतिविम्बसे बातें करते गये। मैं आईनेमें उनका चेहरा देखता तो सहम जाता। आखिर मैने आँखें बन्द कर लीं।

बाल कट चुके। नाईने पूछा, 'बाबूजी बाल कट गये ?' मैंने कहा, 'भाई, तुझे बालोंकी पड़ी है; यहाँ मेरी गर्दन कट रही है।'

नाईकी दूकानसे उठा तो मैने सोचा अब मुक्ति मिलेगी। मैंने घड़ी देखकर कहा, 'एक बज गया। अब चलना चाहिए। नमस्ते।' वे बोले, 'घर जाओगे न ?' मैंने कहा, 'हाँ, घर ही जाऊँगा।' वे बड़े सहज भावसे बोले, 'तो चलिए, आपको घर तक पहुँचा दूँ।' मेरा हार्ट फेल होते-होते बच गया। मैने तिनकेका सहारा लिया। कहा, 'आपको भोजन वग़ैरह भी तो करना होगा।' वे बोले, 'अरे साहब, जब साहित्य चर्चामें डूब जाता हूँ, तो मेरी भूख-प्यास सब भग जाती है। फिर आपका सत्संग कब मिलता है ?' उस समय मुझे लगा कि ईश्वर यह विश्वास कर लेता अच्छा होता। जब उन्होंने हाथीको मगरके चंगुलसे छुड़ाया था तो क्या मुझे····? पर फिर सोचा इस वक़्त शैतानका ज़ोर अधिक है, तभी तो मदनजी मुझे मिल गये। मैं घर चला और मेरे साथ रास्ते भर वे बोलते गये। मेरे घरके सामने फाटकपर कुहनी टिकाकर एक घण्टा उन्होंने फिर मेरा दिमाग़ चाटा।

आखिर वे बोले, 'अच्छा अब चलूँ।' मुझे बेहद खुशी हुई और मैंने बिदाईके उपलक्षमें कहा, 'कभी कुछ लिखिए तो सुनाइए ज़रूर।' बस वे आधा घटा और रुक गये और मुझे साहित्य-रचनाकी कठिनाइयाँ समझाते रहे। अन्तमे कहने लगे, 'क्या करें परसाई जी, वक़्त ही नहीं मिलता। कल ही लिखने बैठा था कि एक महाशय आ गये और घंटा-भर 'बोर' करते रहे।' मैंने मनमें कहा....'हाय रे, तुम कहीं दूसरेकी पीर भी समझ सकते। **कछु मैरियो पीर हिये परसो।'**

३ बज गया। वे चल दिये। चार क़दम चल कर रुके और बोले.... 'अभी तो मैंने आपको शरतका एक पहलू बतलाया है। दूसरा पहलू फिर कभी बतलाऊँगा।' वे चले गये और मै शरतके दूसरे पहलूकी चिन्तामे घुलता रहा कि एक दिन सुना उनका कहीं तबादला हो गया है। पता नही जिस शहरमे वे गये है, वह अभी तक ऊजड़ हुआ कि नहीं। नहीं हुआ होगा तो जल्दी ही हो जायगा।

यह तो एक बड़े बोरकी बात हुई। छोटे और मझले तो कई मिलते हैं पर अब मैं यह क़िस्सा समाप्त करूँ बरना आप बाइबिलके शब्दोमें कहेंगे....

God said, 'Let there be a pleasant Bore' and there was Hari Shanker Persai.

समयका व्यापार

•

विजयदेवनारायण साही

आप लोगोंको याद होगा कि कई वर्ष पहले टेक्सिसकोमें एक जबर्दस्त गृहयुद्धकी खबर आयी थी जिससे संसारभरमें सनसनी मच गयी थी। किस प्रकार टेक्सिसको प्रेसिडेण्ट कार्लोसको, जो उस समय लीग आफ़ नेशन्सके प्रमुख नेताओंमेंसे थे, उनके राजभवनमें उनके कमाण्डर इन चीफ़ जनरल लोफेंगोने घेर लिया था और लगता था कि टेक्सिसकोका राष्ट्र बूढ़े ज्वालामुखीकी तरह फटकर दो टुकड़े हो जायगा। यह सारा समाचार उस समय बड़े-बड़े शीर्षकोंके साथ अख़बारोंमें छपा था। इससे भी अधिक नाटकीय बात यह हुई थी कि टेक्सिसकोकी अत्यन्त रूपवती फिल्म एक्ट्रेस मिस एक्स्ट्राबेगेंज़ाने इस समस्याको चुटकियोंमें हल कर दिया और सारे

देशमें खुशियाँ मनायी गयीं। उसके बाद लोग इस घटनाको इस तरह भूल गये जैसे कभी कुछ हुआ ही नहीं था और संसारको इससे अधिक कुछ पता भी नहीं चला।

उस घटनाके पीछे जो कहानी थी वही मै आज आप लोगोंको सुनाना चाहता हूँ क्योकि उसकी कुछ बातें मुझे हालमे ही टेक्सिकोसे लौटे अपने मित्र प्रोफेसर वीरेश्वरसे प्राप्त हुई है।

टेक्सिकोका प्रसिद्ध जौहरी बूढ़ा गोमेज़ जब मरने लगा तो उसने अपने बेटे कार्डिलोको बुलाकर अपनी दूकान, भवन, ख़जाने आदि सौंपे और बडे अनुनयभरे स्वरमें कहा—'बेटा, जबसे हमारे पुरखे स्पेनसे यहाँ आये तबसे हमारे वंशमे हीरे-जवाहरातका व्यापार होता रहा है। जो कुछ धन-सम्पत्ति तुम देख रहे हो वह सब इसीकी बदौलत है। यह सब छोड़ते मुझे दुःख नहीं हो रहा है। दुःख इसी बातका है कि कहीं तुम यह सब लापरवाहीमें बरबाद न कर दो। तुमको मैं हमेशा किताबें पढ़ते देखता हूँ। कही तुम किताबोंका व्यापार न शुरू कर दो। याद रखो, हम लोग सदासे मूल्यवान् वस्तुओके व्यापारी रहे हैं। अगर किसी कारण हमारे वंशमें सस्ती चीज़ोंका व्यापार शुरू होगा तो यह तुम्हारे कीर्तिवान् पुरखोंके लिए बड़े असम्मानकी बात होगी।'

यह चेतावनी देकर बूढा गोमेज़ मर गया। लेकिन उसे क्या मालूम था कि यह जवान छोकरा कार्डिलो व्यापारके दाँवपेंचमें उससे कहीं अधिक चतुर और पैनी सूझवाला है। बात यह थी कि कार्डिलो हीरे-जवाहरातसे सन्तुष्ट नहीं था क्योंकि इसके व्यापारी बहुत हो गये थे। वह ऐसी वस्तुका व्यापार करना चाहता था जिससे अधिक मूल्यवान् वस्तु संसारमें न हो और उसके वंशका सिक्का दुनियामें हमेशाके लिए बैठ जाय। यह सोचकर कार्डिलो अपनी किताबें उलटने लगा और सब कुछ पढ़नेके बाद वह इस परिणामपर पहुँचा कि संसारमें सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु समय है।

बस कार्डिलोने समयका ही व्यापार करनेका निश्चय किया। उस

चतुर, उत्साही और महत्त्वाकांक्षी नौजवानको यह समझते देर न लगी कि इस व्यापारमे सबसे पहला साझीदार प्रेसिडेण्ट कार्लोसको ही बनाना चाहिए जिनसे अधिक मूल्यवान् समय टेक्सिकोमे किसीका न था। चूँकि कार्डिलोके व्यापारी घरानेकी साख बहुत बड़ी थी और उसके बाप बूढ़े गोमेज़ने प्रेसिडेण्ट कार्लोसके राजनीतिक कामोंमे बड़ी सहायता की थी इसलिए वह सीधा उनके पास पहुँचा और अपना प्रस्ताव उनके सामने रखते हुए बोला 'हमारे इस व्यापारमे लाभ-ही-लाभ है और हम आप इस लाभको आधा-आधा बाँट सकते हैं। मैं जानता हूँ कि आपका समय बहुत मूल्यवान् है। यदि आपको यह प्रस्ताव स्वीकार हो तो आप अपनी घड़ी मुझे दे दें।'

प्रेसिडेण्ट कार्लोसके मुखपर एक अभिमानपूर्ण मुसकराहट खेल गयी और वह गम्भीर स्वरोंमे बोले 'कार्डिलो, तुम्हारा बाप मेरा दोस्त था और तुम्हारी बुद्धिमानी देखकर मै खुश हुआ हूँ। तुम इस कामके लिए बिलकुल ठीक व्यक्तिके पास आये हो। मै इस व्यापारमें साझीदार होनेके लिए राजी हूँ। तुम मेरी घड़ी ले जाओ।'

ऐसा कहकर प्रेसिडेण्ट कार्लोसने अपनी घड़ी कार्डिलोके सामने कर दी। कार्डिलोके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि उस घड़ीमें सूइयाँ नही है और घण्टे मिनटकी जगह उसमें शताब्दियोंके निशान बने हुए हैं। उसको चकित होते देखकर प्रेसिडेण्ट कार्लोस फिर मुसकराये और बोले 'कार्डिलो, यह मेरी····प्रेसिडेण्ट कार्लोस····की घड़ी है। इसमें सूइयाँ इसलिए नही है कि समयका प्रवाह एक दिशामे मानना मैं मूर्खता और दुर्बलता समझता हूँ। मैं इतिहासको आदमीके सामर्थ्यसे बड़ा नहीं मानता। हममें यदि पुरुषार्थ हो तो इस बीसवी सदीको मरोड़कर पाँचवीं और पाँचवींको फैलाकर बाईसवींमें परिवर्तित कर सकते है। इस घड़ीमे केवल सदियाँ बजती हैं और वह भी मेरी इच्छापर। सूइयोंका बन्धन व्यर्थ है।'

इस अद्भुत घड़ीको लाकर कार्डिलोने अपनी दूकानपर रख दिया और

समयका व्यापार शुरू किया। इस नये व्यापारकी खबर बिजलीकी तरह फैल गयी। जो भी कार्डिलोकी दूकानपर प्रेसिडेण्ट कार्लोसका समय पूछने आता उसे एक हज़ार सोनेके डालर देने पड़ते थे। प्रेसिडेण्ट कार्लोसकी मानसिक स्थितिके अनुसार यह निश्चय हो जाता था कि देशमे इस समय दूसरी शताब्दी बज रही है अथवा बाईसवी। चूँकि प्रेसिडेण्ट कार्लोसके अनुयायियों और शत्रुओं—दोनोंकी ही संख्या बहुत बड़ी थी और उनके समय-पर टेक्सिको ही क्यों ससारभरका भाग्य निर्भर करता था, इसलिए कार्डिलोका व्यापार चल निकला और रोज ही उसकी दूकानपर राज-नीतिज्ञों, प्रेस रिपोर्टरों और जनसाधारणकी एक भारी भीड़ समय जाननेके लिए आने लगी।

कार्डिलो अपने व्यापारको और बढ़ानेकी बात सोच रहा था कि उसके हाथ एक विचित्र घड़ी लगी जिससे उसे ऐसा लाभ पहुँचा जिसकी उसने कल्पना भी न की थी। यह घड़ी टेक्सिकोके प्रसिद्ध कवि पैसासकी थी। कवि पैसासके जीवनमें केवल दो काम थे। जुआ खेलना और कविता लिखना। एक बार जुएमे सब कुछ हारनेपर पैसासने अपनी घड़ी दाँवपर लगा दी और उसे भी हार गया। यह घड़ो एक बैंकके मैनेजरको मिली जो कार्डिलोका मित्र था। लेकिन जब बैंकके मैनेजरने यह देखा कि इस घड़ीके चलनेका कोई ठिकाना ही नहीं है तो उसे बड़ा दु:ख हुआ। हफ्तों वह बन्द पड़ी रहती और सहसा बिजलीकी तरह एक क्षण चलकर फिर बन्द हो जाती है। उसे बिलकुल व्यर्थ समझकर बैंकके मैनेजरने झल्लाहटमें कार्डिलो-को दे डाला। कार्डिलोकी समझमें न आया कि इस घड़ीका क्या मूल्य हो सकता है जिसका स्क्रू ढीला है। बिना किसी आशाके उसने उस घड़ीको भी रख दिया। किन्तु उसके आश्चर्यकी सीमा न रही जब दूसरे ही दिनसे साहित्यकारों, सम्पादकों और बेतुके प्रोफ़ेसरोंकी भीड़ उसकी दूकानपर इकट्ठा होने लगी। ये लोग उस एक क्षणको जाननेके लिए काफ़ी रक़म देते और हफ्तों कार्डिलोकी दूकानपर बैठकर उस बन्द घड़ीको घूरा करते कि

कहीं ऐसा न हो कि वह चले और वे उस क्षणसे वंचित रह जायँ। उनका कहना था कि उस एक क्षणमें युग-युगकी असीमता केन्द्रित हो जाती है। इसपर कार्डिलोको बहुत आश्चर्य होता। परन्तु उसे तो अपने व्यापारसे मतलब था, ग्राहकोंकी छान-बीनसे नही।

अब तो कार्डिलोने बड़े उत्साहके साथ घड़ियोंका संग्रह आरम्भ कर दिया। बड़ेसे-बड़े और छोटेसे-छोटे आदमियोंके पास यह गया और साझेपर उनकी घड़ियाँ ले आया। हर व्यक्ति उसे बडे जोशके साथ अपने समयका मूल्य बताता और उसके नये व्यापारमे साझीदार बननेमे गौरवका अनुभव करता। उसने मशहूर बुड्ढे गार्ड ला पाजकी घड़ी प्राप्त की जिसने टेक्सिकोमे सबसे पहली ट्रेन चलायी थी और जो 'रेलवेका बाबा' के नामसे विख्यात था। जब तक ला पाज नौकरी करता रहा टेक्सिकोकी सभी ट्रेनें समयपर चलती थीं। उसके अवकाश ग्रहण करते ही शराब पीनेवाले नये कर्मचारियोंने सारी व्यवस्था गड़बड़ कर दी। यहाँ तक कि इसी कारण एक बार टेक्सिको और माटीमालामें युद्ध भी छिड़ गया था। जब माटीमालाके प्रधान मन्त्री टेक्सिकोके बन्दरगाहपर उतरे तो उनके स्वागतके लिए जाने-वाली प्रेसिडेण्टकी ट्रेन सात मिनट लेट पहुँची और प्रधान मन्त्रीको प्रतीक्षा करनी पड़ी। उन्होंने इसे अपमान समझा और बिना मिले वापस चले गये। फलतः दोनों राष्ट्रोंमे युद्ध छिड़ गया जो कई देशोंके बीच-बचाव करनेपर शान्त हुआ। टेक्सिकोकी पार्लियामेटने विशेष प्रस्ताव द्वारा बुड्ढे ला पाजसे प्रार्थना की कि वह एक बार फिर अपनी सेवाएँ देशको दे। तब अपनी उम्रके बावजूद ला पाजने फिर एक बार टेक्सिकोकी ट्रेनोंकी व्यवस्था की थी। उस प्रस्तावको अब भी उसने सुनहले फ्रेममे जड़वाकर रख छोड़ा था।

ला पाजकी घड़ीमें स्टेशनोंकी संख्याएँ बजती थीं और उसपर चमक-दार अक्षरोंमें खुदा हुआ था—'ज़िन्दगी एक सफ़र है जिसमें पड़ाव ही पड़ाव है। मञ्जिल तो वहीं है जहाँसे सफ़र आरम्भ हुआ था।'

धीरे-धीरे कार्डिलोके पास हज़ारों व्यक्तियोंकी घड़ियाँ इकट्ठी हो गयीं।

रेसकोर्सकी निर्णायककी घड़ी जिसमें सेकण्ड, सेकण्डका सौवाँ भाग और हजारवाँ भाग बजता था; फाँसीके जल्लादकी अन्धी घड़ी जिसमे तभी प्रकाश होता था जब किसीको फाँसी लगनेवाली होती थी; सुप्रीमकोर्टके जजकी घड़ी जो लञ्चके समय इतनी जोरसे बजती थी कि सारे बाज़ारका काम रुक जाता था; अस्पतालके नर्सकी घड़ी जिसमे रातमे सपने दिखलाई पड़ते थे; अखबारके सम्पादककी बालूकी घड़ी जिसमे वही मुट्ठी भर रेत ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर हुआ करती; इन सबकी एक अच्छी प्रदर्शनी कार्डिलोकी दूकानपर लग गयी। कोई भी ऐसा न बचा जिसके साथ उसने समयके व्यापारका साझा न किया हो। उसका व्यापार बहुत बढ़ गया। सम्पत्तिके साथ उसने यश भी कमाया और सचमुच उसके पुरखोंकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। सबसे बड़ी बात यह थी कि इस व्यापारमे लाभ ही लाभ था, घाटेकी कोई सम्भावना ही नही थी। कार्डिलोका भाग्य नक्षत्र पूरे तेजसे चमकने लगा और उसकी समृद्धिकी कोई सीमा नहीं रह गयी।

इस प्रकार कार्डिलो बड़ी कुशलता और दूरदर्शितासे अपना व्यापार चला रहा था कि सहसा एक दिन उसके पास टेक्सिकोके कमाण्डर इनचीफ जनरल लोफेन्गोका फौजी वारण्ट पहुँचा। चूँकि जनरल लोफेन्गो अपनी क्रूरता और कट्टरपनके लिए प्रसिद्ध थे इसलिए कार्डिलोके पैरोंतलेसे धरती खिसक गयी और वह डरसे काँपता हुआ तुरन्त उनके पास पहुँचा। जनरल लोफेन्गो उस समय अपने कमरेमें बैठे अलास्काकी नायाब शराबकी बोतलें गलेमे उँडेल रहे थे और यह कहना कठिन था कि उनकी मोम लगी सख्त मूछों और लाल आँखोंमेसे किसकी चमक ज़्यादा थी। जनरल लोफेन्गोने पूरी गिलास खाली करते हुए चीखकर पूछा—'तुम कार्डिलो हो ? क्या मैंने सही सुना है कि तुम समयका व्यापार करते हो ?'

कार्डिलोने डरकर कहा—'जी हाँ।'

जनरल लोफेन्गोने मेज़पर इतनी जोरसे दोनों मुट्ठियाँ पटकीं कि बोतल उछलकर नीचे जा गिरी और वह चिल्लाये, 'बदतमीज़ जी हाँ करता

है····कोई बात नहीं····खबरदार बोतल मत उठाओ····और तुमने मुझसे पूछा तक नहीं। क्या मेरे समयका कोई मूल्य नहीं ? तुम्हारा साहस मेरा अपमान करनेका कैसे हुआ ? जरूर यह उस घमण्डी कार्लोसकी करामात है। मै उसे समझ लूँगा। और तुम ना-समझ लड़के, तुम क्या पसन्द करते हो मेरे साथ इस व्यापारमे साझा या मौत ?' इसके बाद उन्होंने पुकारा, 'कोई है ? इस सौदागरके लड़केको मौत दिखलाओ।'

आवाज़ सारे भवनमे गूँजी। बगलके दरवाजेसे दो सिपाही निकले और अपनी बड़ी-बड़ी डरावनी राइफलोंका निशाना कार्डिलोकी ओर करके खड़े हो गये। कार्डिलो थर-थर काँपने लगा। मुश्किलसे उसके मुँहसे इतना निकला, 'जनरल मुझे क्षमा करें। आप जो कहेंगे मैं करूँगा।'

जनरलका पारा कुछ नीचे उतरा। उन्होंने कहा, 'अच्छी बात है। कोई है ? मौतको वापस करो और मेरी घड़ी ले आओ।'

सिपाहियोंने राइफलें नीची कर लीं और तेज़ीसे बाहर दौड़े। जनरल लोफेन्गोने दूसरी बोतल ख़ाली की। थोड़ी देरमें दस-बारह सिपाही एक बड़े पत्थरका चबूतरा लादे हुए कमरेमें आये और उसे एक ओर रखकर 'अटेन्शन' खड़े हो गये। कार्डिलोने देखा कि उसपर एक लोहेकी तिकोनी चद्दर लगी हुई थी जो इस समय एक लीवरपर बड़ी तेज़ीसे नाच रही थी।

जनरल लोफेन्गो बोले 'यह मेरी धूप घड़ी है। इसे ले जाओ। मैंने अपनी सारी फौजको आदेश दे दिया है कि वह रोज़ इसे देखे और तुम अपने उस बेवकूफ़ कार्लोससे कह देना कि समयकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यह सबका नाश करता है और अन्धकारके गर्तमें डाल देता है। समयका जितना भाग अन्धकारमें डूबा हुआ है उसे नापनेकी चेष्टा करना मूर्खता है। इसीलिए मैं धूप घड़ीका इस्तेमाल करता हूँ। तुमको मालूम होना चाहिए कि मेरा समय निरर्थक कार्लोससे ज़्यादा मूल्यवान है। मैंने सुना है कि तुम उसका समय एक हज़ार डालरमें बेचते हो। मेरे समयकी

क़ीमत एक हजार एक डालर होगी। कोई है? इस घड़ीको सौदागरकी दूकानपर पहुँचा दो। डिस्पर्स।'

जान बचाकर, लेकिन यह नया संकट लेकर कार्डिलो घर आया। उसे समझमे नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसने प्रेसिडेण्ट कार्लोसको टेलीफ़ोन किया। लेकिन उसे लगा कि यह सारी सूचना उन्हे पहले ही मिल चुकी थी, क्योंकि जनरल लोफेन्गोका कोई काम छिपा नहीं रहता था। प्रेसिडेण्ट कार्लोसने उत्तर दिया—लोफेन्गोने बिलकुल वाहियात हरकत की है। वह मुझसे अपनी तुलना करना चाहता है। तुमको मै सरकारी आदेश देता हूँ कि उसके समयको नौ सौ निन्यानबे डालरोंमे बेचो। इस आज्ञाका उल्लंघन नहीं होना चाहिए। और मै इस आदेशकी सूचना लोफेन्गोके पास भेज रहा हूँ।

इसके पहले कि कार्डिलो अपने पुरखोंकी याद करके रो भी सके, जनरल लोफेन्गोकी सेनाने आकर उसकी दूकानके चारों ओर घेरा डाल दिया और उसे फौजी आदेश सुनाया कि जबतक इसका निर्णय नहीं हो जाता कि प्रेसीडेण्ट कार्लोस और जनरल लोफेन्गोमेसे किसका समय अधिक मूल्यवान है तबतक व्यापार बन्द रहेगा। शीघ्र ही इस तनावकी सनसनी सारे देशमें फैल गयी। प्रेसिडेण्ट कार्लोसने जनरल लोफेन्गोके विरुद्ध राजद्रोहका अपराध लगाकर उन्हे बरख़ास्त कर दिया और जनरल लोफेन्गोने अपनी सेनाको आज्ञा दी कि वह प्रेसिडेण्ट कार्लोसको गिरफ़्तार कर ले। एक कवि पैसासको छोड़कर, जो अभी भी जुएमे मस्त था, सारा देश दो टुकड़ोंमे बँट गया। अनपढ़ और मूर्ख जनता कभी एकका पक्ष लेती कभी दूसरेका। स्पष्ट दीखने लगा कि बिना गृहयुद्ध हुए इस अभूतपूर्व प्रश्नका निबटारा असम्भव है। तभी जनरल लोफेन्गोने अपनी सेना द्वारा प्रेसिडेण्ट कार्लोसको उनके राजभवनमें घेर लिया। इसकी जो अतिरंजित खबरें उस समय अखबारोंमें छपी थीं, वह सब आपको मालूम ही हैं।

लेकिन मैं कह चुका हूँ कि अनिन्द्य सुन्दरी मिस एक्स्ट्रावेगेंजाने इस भयानक समस्याका समाधान देखते-ही-देखते कर लिया और टेक्सिकोमें छोकरोंसे लेकर बूढ़े तक जो उसके रूपके प्रशंसक थे, उसकी बुद्धिमत्ताका भी लोहा मान गये क्योंकि देशके हितमें जो काम मिस एक्स्ट्रावेगेंज़ाने किया वह अद्भुत तो था ही, साथ-साथ उस रूपसीकी पैनी सूझका परिचायक भी था।

हुआ यह कि प्रेसिडेण्ट कार्लोस और जनरल लोफेन्गो दोनों ही मिस एक्स्ट्रावेगेंजासे प्रेम करते थे और उसके अनुग्रहके अभिलाषी थे। राजभवन-पर सफलतापूर्वक घेरा डाल देनेके बाद जनरल लोफेन्गोने फ्रान्सीसी शराब-की तेरह बोतलें पी डालीं और टेक्सिकोका नक्शा लिये हुए अपनी प्रेयसी मिस एक्स्ट्रावेगेंजासे मिलने गये क्योंकि उनका इरादा टेक्सिकोके राज्यको उस रूपवतीके पैरों तले बिछा देनेका था। मिस एक्स्ट्रावेगेंजाने उनसे मिलने-में विनम्रता पूर्वक असमर्थता प्रकट करते हुए एक छोटा-सा पत्र भीतरसे उनके पास भिजवाया। उस पत्रमें लिखा था, 'मैं अभी व्यस्त हूँ।' मेरे पास समय नहीं है। आपका समय मूल्यवान् है अतः आप इस समय जायँ। या यदि बैठ सकें तो थोड़ी देर प्रतीक्षा कर लें।'

जनरल लोफेन्गोने प्रतीक्षा करना ही उचित समझा। विजेता होनेके कारण वे इस समय बहुत पुलकित थे। उनके दिमाग़में कवि पैसासकी वे चार पंक्तियाँ चक्कर काटने लगीं जिनका शीर्षक 'दुर्दमनीय प्रेम' था और जो उन्होंने बहुत पहले कहीं पढ़ी थीं। मगन होकर उत्तरमें जनरल लोफेन्गोने वही पंक्तियाँ लिखकर भेज दीं। 'हे सुन्दरी, तुम्हारे समयके सामने मेरे समयका कोई मूल्य नहीं है। वस्तुतः मेरे समयका मूल्य वही है जो तुम चाहो। मैं युग-युग तक प्रतीक्षा करूँगा।' इस प्रकार कवि पैसासकी कविता जनरल लोफेन्गोके काम आयी।

इधर प्रेसिडेण्ट कार्लोसके समर्थकोंने राजभवनको घेरनेवाली सेनाको छिन्न-भिन्न करके उनको मुक्त कर दिया। मुक्त होते ही वे अपनी प्रेयसी

मिस एक्स्ट्रावेगेंजाके पास पहुँचे क्योंकि उनका इरादा इस विजयकी ख़ुशीमें उसे 'टेक्सिकोकी रानी'की उपाधि देनेका था। इस बीच जनरल लोफेन्गो उससे मिलकर जा चुके थे। मिस एक्स्ट्रावेगेंजाने वही व्यवहार उनके साथ भी किया और उत्तरमें उनसे भी इसी आशयका पत्र लिखवा लिया।

दोनों पत्रोंको लेकर वह निर्भय होकर टेक्सिकोकी पार्लमेण्टमे चली गयी जहाँ देशके तत्कालीन संकटपर गरमागरम बहस छिड़ी हुई थी और लोगोंकी समझमे नहीं आ रहा था कि बिना गृहयुद्धके इस गुत्थीको कैसे सुलझाया जाय। पार्लमेण्टमे मिस एक्स्ट्रावेगेंजाने घोषणा की, 'माननीय सदस्यो, प्रेसिडेण्ट कार्लोस और जनरल लोफेन्गो दोनोंने ही मुझे अपने समयका पच माना है और इसका लिखित प्रमाण मेरे पास मौजूद है। मेरा निर्णय है कि दोनोंका समय बराबर मूल्यवान् है, अतः जौहरी कार्डिलोको आप लोग आदेश दें कि दोनोंकी क़ीमत एक हज़ार डालर रखी जाय। साथ ही दोनोंने यह भी स्वीकार किया है कि मेरा समय उन दोनोंसे ज़्यादा मूल्यवान् है। अतः मेरी भी घड़ी कार्डिलोकी दूकारपर रखी जायगी और मेरे समयका मूल्य बारह सौ डालर रखा जायगा।'

इस अप्रत्याशित प्रस्तावपर चारों ओर हर्षकी लहर दौड़ गयी। प्रेसिडेण्ट कार्लोस और जनरल लोफेन्गो दोनों ही सहमत हो गये। सारे देशमें रोशनी की गयी और लोगोंने अपने हैट हवामे उछाले। कवि पैसासकी कविताने जो राष्ट्रकी सेवा की थी उसके फलस्वरूप उसे पार्लमेण्टने राष्ट्रकवि घोषित किया और उसे पचास हज़ार डालर पुरस्कारमें दिया, जिसे उसने शीघ्र ही जुएमे उड़ा दिया। व्यापारी कार्डिलोपर जो सकट आया था वह न केवल हट गया बल्कि उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। देश-देशान्तरसे लोग उसकी दूकानपर समय पूछने आने लगे और उसका व्यापार दिन दूना रात चौगुना उन्नति करने लगा।

इस प्रकार कार्डिलोने समयका सफल व्यापार किया। धीरे-धीरे कई बरस बीत गये। प्रेसिडेण्ट कार्लोस स्वर्गवासी हुए और उनके स्थानपर दूसरे

और उनके स्थानपर दूसरे प्रेसिडेण्ट आये। जनरल लोफेन्गोको देश-निकाला हो गया और उनकी जगहपर दूसरे जनरल नियुक्त हुए। कवि पैंसासको उसके अनुयायियोंने मार डाला और जुएके स्थानपर सट्टेबाजीके नये मूल्योंकी स्थापना की। मिस एक्स्ट्रावेगेंजाका रूप ढल गया और उनका नाम संकुचित होकर केवल मिस एक्स्ट्रा रह गया। परन्तु कार्डिलोका व्यापार बढ़ता ही गया क्योंकि हर आनेवाली पीढ़ी अपना समय पिछली पीढ़ीसे अधिक मूल्यवान् समझती है।

एक दिन कार्डिलो अपनी दूकानपर बैठा अपने व्यापारके निश्चित लाभ-पर विचार कर रहा था कि सामने एक रिक्शा आकर रुका। रिक्शेवालेने घड़ियोंकी दूकान देखकर कहा—'भाई, मेरी घड़ी रुक गयी है। समय बता दो ताकि अपनी घड़ी मिला लूँ।'

कार्डिलोने पूछा—'आप किसका समय जानना चाहते हैं।'

रिक्शेवालेने कहा—'आपका प्रश्न मेरी समझमें नहीं आया।'

कार्डिलोको अपने इस नये व्यापारमें अक्सर ऐसे अवसर आते थे जब उसे नये लोगोंको अपनी प्रणाली समझानी पड़ती। परन्तु इससे उसको घबराहट नहीं होती थी। एक सफल व्यापारीकी तरह वह ग्राहकोंमें छोटे-बड़ेका अन्तर नहीं मानता था और चतुराईके साथ वह बहुत विनयपूर्वक अपने एक-एक मालकी प्रशंसा करता, इतिहास बतलाता और ग्राहकको चकित कर देता। उस समय उसे असीम सुखकी प्राप्ति होती। उसने रिक्शेवालेको दूकान-के अन्दर बुलाया और अपनी हजारों घड़ियोंके बीच उसे घुमाने लगा। बड़े उत्साहके साथ उसने उसे सब कुछ बताया और प्रेसिडेण्टसे लेकर फाँसीके जल्लाद तककी घड़ियाँ दिखलायीं। अन्तमें उसने गर्वसे भरकर कहा—'मेरे दोस्त, यह व्यापार मेरा निजी आविष्कार है और इसने मेरी कीर्तिको झोप-ड़ियोंसे महलों तक प्रकाशित कर दिया है। सबसे बड़ी बात यह है कि इस व्यापारमें लाभ-ही-लाभ है क्योंकि इसमें पाना-ही-पाना है, देना कुछ नहीं

है। हर समयके अलग-अलग बेचनेवाले हैं और अलग-अलग उनके खरीदार हैं। तुम जिसका समय चाहो जान सकते हो, उसीके अनुसार तुम्हें मूल्य चुकता करना पड़ेगा।'

रिक्शेवाला चकित होकर कार्डिलोके लम्बे व्याख्यानको सुनता रहा। फिर उसने एक ठण्डी साँस ली और कहा—'अनोखे व्यापारी, मैंने तुम्हारे हज़ारों समयोंकी मूल्यवान् प्रदर्शनी देखी और यह भी जाना कि हर व्यक्तिके समयका मूल्य अलग होता है। इस दुनियामें मैं ही एक अकेला आदमी हूँ जिसके समयका कोई मूल्य नहीं है। मेरे समयका मूल्य मुझपर बैठी हुई सवारीसे लगता है। कभी मैं लोगोंको छूटती ट्रेन पकड़नेके लिए स्टेशन पहुँचाता हूँ, कभी भोले प्रेमियोंको निरुद्देश्य चाँदनीकी सैर कराता हूँ और कभी थके, टूटे हुए मजदूरोंको उनकी कोठरीमें डाल आता हूँ। हर बार मेरे समयका मूल्य बदलता रहता है। जब मेरे पास कोई सवारी नहीं होती और मैं इधर-उधर भटकता रहता हूँ तब मेरे पास समयका कोई मूल्य नहीं होता। मेरे पास यह घड़ी जो तुम देखते हो, मेरे बापकी है जो तेलकी खानमें काम करता था। मैं यह घड़ी तुम्हारे पास छोड़े जाता हूँ। इतने बड़े संसारमें अगर कोई ऐसा निकले जो इन मूल्यवान् व्यक्तियोंके बीच मुझे भी पूछे तो तुम उससे दाम न लेना बल्कि मेरी ओरसे आभार-प्रकाशके रूपमें यह पच्चीस सेंट उसे दे देना जो आज दिनभरकी मेरी कमाई है।'

ऐसा कहकर रिक्शेवालेने दूकानपर अपनी घड़ी और पच्चीस सेंट रख दिये और चलता हुआ। कार्डिलोको पहली बार मालूम हुआ कि समयके इस लाभदायक व्यापारमें सब पाना-ही-पाना नहीं, कहीं कुछ देना भी है।

सुकवि सदानन्दके संस्मरण

•

श्रीलाल शुक्ल

कवि न होहुँ नहिं चतुर प्रवीना ।
सकल कला सब विद्या हीना ॥

(गो० तुलसीदास)

[तबहुँ कबिन कर आसन छीना ।]

—सदानन्द ।

हौं पण्डितन केर पछिलगा ।

—जायसी ।

यहि बिधि सकल जगत कहँ ठगा ।

—सदानन्द ।

विफल जीवन व्यर्थ
बहा बहा,
सरस दो पद भी न हुए अहा;
सरस है कविते तव भूमि भी;
पर यहाँ श्रम भी सुख-सा रहा।

—मैथिलीशरण गुप्त

सुकवि तो मुझको सबने कहा।

—सदानन्द

संस्मरणकी परिपाटी पुरातन है। बाणभट्ट जैसे कवियों तकने हर्ष चरितके सहारे आत्मचरित लिखा है। अर्वाचीन परिपाटी और भी अलंकारमय है। सुलेखक, विमल बी० ए० पास बाबू श्यामसुन्दर दास तकने अपनी जीवनी अपने हाथों लिखी है। बाणभट्टने हर्षचरितमें अपने आवारा होनेसे उच्चकोटिके कवि होने तकका वर्णन किया है। अर्वाचीन परिपाटीमें कवि होनेसे आवारा होनेतकका वर्णन हो तो वह आदर्श जीवनी हो जायगी। अपने विषयमें वही करता हूँ।

अर्वाचीन शैलीमें शरीर-सज्जाके वर्णनसे ही संस्मरण प्रारम्भ करनेका चलन है। यथा ऽ

शरीरसे दुर्बल, देखनेमें दरिद्र, एक आँख चमकती हुई, एक आँख मुंदी हुई, मूंछें छोटी-छोटी और अकिञ्चन—ऐसे हैं बाबू····!

उसी प्रकार अपनी अनेक स्थितियोंके छह चित्र पाठकोंकी भेंट करता हूँ।

लँगोटी लगाये हुए, तनपर भस्म मले हुए, रूखे बाल, फलाहारी (अर्थात् आमका रस हाथमें और जामुनका रस मुँहपर पोते हुए) कृष्णानुरागी अर्थात् काले-कलूटे), गोरक्षक (अर्थात् गाय-बैलोंकी चरवाही करते हुए) शुकदेव समान (अर्थात् दस वर्षकी आयुमें ही जंगलमें घूमनेवाले), परम प्राकृत रूप—यह मेरी बाल्यावस्था थी।

लुंगी बाँधे हुए, भुजाओंमें काला ताबीज़ और गलेमें काला डोरा डाले, शरीरपर कड़ुए तेलकी मालिश किये, भंग पिये, भंग पीनेवालोंसे घिरे, भंग घोटते हुए, कड़कती आवाज़में कवित्त-सवैयोंका पारायण करते हुए, गुरु-सेवामें तल्लीन—यह किशोरावस्था थी।

बढ़िया तावदार, पेंचदार, मूँछोंसे शोभित मुखमण्डल, रंगीन साफ़ा, जोधपुरी कोट, चूड़ीदार पायजामा, ताम्बूल-चर्वण-सिद्ध कण्ठसे नायिका सेवी सवैयोंका गान, छन्दको अयाचित रूपसे दो बार सुनानेका नियम—यह पूर्व युवावस्था थी।

गाँधी टोपी, कुर्ता, धोती, चप्पल, छड़ी, झोला। जो सच है, उसे सच बताते हुए 'सत्यसे लाभ', 'पुरुषार्थकी महिमा', 'आशा और निराशा' आदि विषयोंपर कविता लिखते हुए—यह मेरी उत्तर युवावस्था थी।

फिर, समयकी शिलापर मधुर चित्र बनाते हुए, नीर-भरी दुखकी बदरी बरसाते, मनको मधुर-मधुर तपनेका उपदेश देते, हृत्तन्त्रीके तारसे क्षितिजके उस पारको भी झंकार कर, क्षीणकाय, क्षीणकटि, जटिली, कुंचितकेशी, मधुवेशी रूपमें काव्य-सर्जना करते हुए—यह प्रौढ़ावस्था थी।

और अब वेशसे काव्य-निर्देश होना सम्भव नहीं। प्रगति, प्रयोग, नव काव्य (नयी कविता)—सब गड़बड़ हो गया है। फिर भी :

रूखे बाल, टूटे चप्पल, फटा कुरता, बिना स्याहीकी फाउण्टेन पेन, मोटे फ्रेमका चश्मा।

अथवा, बिलकुल नया सूट, दोषहीन अंग्रेज़ी भाषा, चमकते जूते, वकीलों-सी तार्किकता, डाक्टरोंकी-सी सहानुभूति, बीमा एजेण्टोंकी-सी चतुरता, बातचीतमें कथा-वाचकोंकी-सी असम्बद्धता—यह सब वृद्धावस्थामे झेल रहा हूँ।

मैं सदानन्द था। सदानन्द हूँ। इसका रहस्य नये कवियोंके लाभार्थ बता रहा हूँ।

प्रारम्भमे गुरुदेवने सवैया-घनाक्षरीका सुख दिया। तब कवित्त लिखनेके विषय खोजने न पड़ते थे। वे बोले, 'मुग्धापर लिखो। सवैया छन्द हो। सिंहावलोकनका सत्कार हो। छेकानुप्रासकी छटा हो। रूपकका रमण और उत्प्रेक्षाका उल्लेख हो।' दिनभर भगणके लघु-गुरुका नक़शा बनाकर क्रासवर्ड पहेली-सी भरते रहे। शामको गुरुदेवने वह पूरा सवैया फाड़कर फेंक दिया और उसके स्थानपर एक दूसरा लिख दिया। मेरी काव्य-साधना सफल हुई।

समस्या-पूर्त्तिमे और भी सुख था। किसीने समस्या दी; मैंने उसकी पूर्त्ति दी, 'पिपीलिका चुम्बत इन्दुकी बिम्बै' मिल गई तो 'किम्बै' से लेकर 'जिम्बै' तक खींच ले गये। इस प्रकार चार तुक निकालकर पिपीलिकाको इन्दुतक ले जानेका उपक्रम करने लगे। साधना कठिन थी पर पिपीलिकाकी साधना सर्वविदित ही है। वह असली इन्दुतक न जा सके तो नायिकाका मुख भी तो इन्दु ही है। नायिकाके सो जानेपर पिपीलिकाको वहीं पहुँचा दिया और इन्दुकी बिम्बै दिखा दीं। आगे पिपीलिकाकी गति पिपीलिका जाने और नायिकाकी जाने नायिका।

एक रेलवेके बाबू थे। रायबरेली ज़िलेके रहनेवाले, जातिके दुबे। महावीर प्रसाद नाम था। उन्होंने नौकरीसे इस्तीफ़ा दे दिया। उसके बाद कविताके स्टेशनपर आकर नायिका-भेद, सवैया-घनाक्षरी आदिकी लाइनपर लाल झण्डी लेकर बैठ गये। खड़ी बोलीका लाइन-क्लियर देकर सीटी बजाने लगे। प्रयागमें सीटी बजायी तो चिरगाँव तक उसकी गूँज गयी। मैंने गुरुदेवसे कहा, 'मैं भी इसी लाइनपर जाऊँगा।'

वे बोले, 'तरवारिकी धार पै धावनो है।'

पर मैंने लाइन बदल दी। यहाँ और भी सुख था। जैसे कोई आकर कहे, 'इस डिब्बेकी चेन फ़िट कर दो।' वैसे ही एक पत्रने आकर कहा, 'वर्षा अंकके लिए 'हरीघास' पर कविता लिखो। 'मानो' का प्रयोग हर तीसरे चरणमें हो, इसे उत्प्रेक्षा समझो। द्रुतविलम्बित छन्दका प्रयोग हो।'

यह काम बड़े आरामसे चल रहा था कि एक दिन कहीं पढ़ा,

"विजन निशा निरवधि नभ शीतल,
तुहिन, कुसुम, विभ्रम, सत्कार।"

न भाषा समझमे आयी न भाव। लगा कि जिस लाइनपर मैं जा रहा था वह छोटी लाइन है। उसीके पाससे बड़ी लाइनपर एक गाड़ी बिना दुबेजीसे लाइन-क्लियर माँगे निकल गयी है।

मुझ सदानन्दको क्या चिन्ता ? कवि कहानेकी चाट लगी थी। (कवियशःप्रार्थी) सीधे प्रयाग गया। एक वय किशोर, कोमल तन, परम सुखद कवि मिले। गुरुदेवका पत्र आया कि रहस्यवादका जाल जटिल है। मैंने अपने नये गुरुकी जटाओंका उल्लेख करके लिखा कि कविताके उत्स कहाँसे फूटे है।

अब कालिदास-ग्रन्थावली लेकर शब्द खोजने बैठे। आवर्जित, संचारिणी, पल्लविनी, श्लथ, विश्लथ, नीहार—जो भी शब्द स्त्रैण जान पड़ा, उसे रट लिया। उपसर्गका प्रयोग सीखा। शमका उपशम, क्रान्तिका संक्रान्ति, हारका प्रहार, आहार-संहार, विहार—सब रट कर जो कविता लिखी तो पूरी लाइन पर डाक गाड़ीकी गमक गूँजने लगी।

एक दिन समाचार सुना कि प्रगतिवादके दफ़्तरमें भर्तीका काम जारी है।

लड़ाईके दिन थे। देशके हज़ारों नौनिहाल ख़न्दकोंमें पड़े सड़ रहे थे। मैंने भी दफ़्तरमें जाकर अपना कार्ड बनवाया। हवलदारने नसीहत दी, 'ये जनाना किसमकी कविता नहीं चलेगा। जोश-ख़रोशकी बात लिखना होगा। मज़दूर भूखा है, किसान नंगा है, पूँजीपति पेटू है। तुम कुछ जानता भी है ?'

हाथ जोड़कर मैंने कहा : **'सोइ जानै जेहि देहु जनाई।'**

उस दफ़्तरमें बारह साल काम करते-करते एक दिन जान पड़ा कि मज़दूरों और किसानोंकी समस्या हल हो गयी क्योंकि उस दिन ये स्वर सुन पड़े :

'सुनो, कैरा सुनो,
क्या मेरी आवाज़........।'

उसी दिन मैंने एक विस्तृत पत्रमें अपने गुरुदेवको पूरी बात स्पष्ट रूपसे लिखी,

'सुनो, गुरुदेव, सुनो,
क्या मेरी आवाज़ तुम तक पहुँचती है ?'

मैं अब प्रयोग करने लगा हूँ। मैंने आज एक कवितामें अस्पतालका प्रयोग किया है। डिसइन्फेक्टेंट, ऐंटीबायटिक्स, ऐनीस्थीशिया, क्लोरोमाइसिटीन आदि शब्द कल सीखे थे। इनका इस्तेमाल इस कवितामें आज दिखाया है। अब एक कविता मुझे रातके झिलमिल तारोंपर लिखनी है। उसमें इंजीनियरीका प्रयोग करना पड़ेगा। गुरुदेव, बचपनमें सड़क कूटनेके कारण, दरेसी, गैंग, मेट आदि शब्द तो मुझे आते हैं पर कोई लम्बा शब्द याद नहीं है। सुनते हैं ट्यूबवेल बनानेकी मशीनमें कई पुर्जोंके अद्‌भुत नाम हैं। आप किसी मिस्त्रीसे पूछकर लिख भेजनेकी कृपा करें।

'साथ-ही-साथ, गुरुदेव, अब नयी कविताका नाम भी सुननेमें आने लगा है। पर इस मोर्चेपर भाग्य, **'मारेसि मोहिं कुठाउँ।'** नयी कविता लिखनेके लिए सुनते हैं, पढ़ना बहुत पढ़ता है और सब पढ़कर फिर ऐसा लिखना पड़ता है कि कविके पढ़े-लिखे होनेका आभास तक न मिले। सो, गुरुदेव, पढ़ाईकी बात सुनते ही, **'सीदन्ति मम गात्राणि, वेपथुश्चोपजायते।'** मुँह सूख रहा है, राह नहीं दिख पड़ती। कुछ बताइए कि अब क्या करें और क्या लिखें ?'

'आप कहते हैं कि बार-बार अपनेको बदल कर मैंने बुरा किया। गुरुदेव, मुझे इसी गुणके कारण आलोचक समन्वयवादी कहते हैं। आपने अवसरवादी शब्दका प्रयोग अशुद्ध रूपमें किया है। राजनीतिका यह शब्द साहित्यमें प्रयुक्त नहीं हो सकता। आपने ही सिखाया था, **'काव्यं यशसे'**, सो जहाँ जैसा यश मिला, वहाँ वैसी कविता की। **'अर्थकृते'**, अतः जहाँ

दो पैसेका डौल लगा, वहाँ जाकर काव्य लिखा। यह शास्त्रोक्त कर्म था। इसमें कौन-सा कुकर्म है, गुरुदेव ?

'और सच तो यह है कि मेरी कविता बदली पर मैं नहीं बदला। 'जग बदलेगा, किन्तु न जीवन।' सदानन्द था, सदानन्द रहा। सवैया लिखकर भी 'सदेश' नहीं बना। 'सरस्वती' में छन्द छपा कर भो सदानन्द-शरण नहीं कहलाया, सरस्वती प्रेस तक जाकर भी 'कामरेड सिद्दू' नहीं हुआ। अब नयी कविता लिखूँगा पर सदानन्दायन नहीं बनूँगा। यश बढ़ता रहे, अर्थ बढ़ता रहे, राजसम्मान बढ़ता रहे पर नाम वहीं-का-वहीं रहेगा। इसीमें आनन्द है। सदानन्द हूँ, सदानन्द रहूँगा।'

कौन बड़ा है ?

•

नामवर सिंह

कल जब मैं पुस्तकालय गया तो बड़ी चहल-पहल दिखायी पड़ी। बहुत-सी पुस्तकें अपनी-अपनी आलमारियोंसे निकलकर ज़ोर-ज़ोरसे बातें कर रही थीं। जो असमर्थ थीं अथवा किसी कारणसे भीतर-ही रह गयी थीं, वे भी चुप न बैठी थीं। पाठक सभी दर्शककी तरह देख रहे थे और पुस्तकें धूल-धक्कड़ झींगुर वग़ैरहसे लिपटकर शृंगार कर रही थीं। किसीकी हिम्मत न थी जो उनसे कुछ पूछता। मैं साहस करके पुस्तकाध्यक्ष महोदयसे पूछ बैठा। उन्होंने अत्यन्त सनसनीदार सूचना दी। बोले—'अभी हाल ही में जब 'साहित्य सम्मेलन' में मंगलाप्रसाद पारितोषिक समितिकी बैठक हुई तो एक सदस्यने नया प्रस्ताव रक्खा कि इस वर्षका पुरस्कार

समूचे हिन्दी साहित्यके सबसे बड़े साहित्यकारको दिया जाय। एक दूसरे सदस्यने आपत्ति उठाई कि नियमके अनुसार तो यह केवल जीवित साहित्यकारोंको ही दिया जा सकता है। प्रस्तावक महोदयने कहा कि क्या साहित्यकार भी कभी मरता है, वह तो अमर होता है। बात वाजिब थी, व्याख्या नई थी। अपनी बातको पुष्ट करनेके लिए प्रस्तावक महोदयने कहा कि साहित्यकार तो शारीरिक रूपसे मरनेके बाद ही जीवित होता है। प्रमाण स्वरूप उन्होंने अपना ही उदाहरण दिया और कहा कि इस समय साहित्यमें कोई उन्हे जीवित नही समझ रहा है। आगे उनका तर्क था कि नियम तो रूढ़ियोंसे ही बनते है। यदि हमलोग साहित्यकारोंको अमर मान कर तुलसी, सूर, कबीर आदिको भी पुरस्कार देनेकी परम्परा चला देते है तो मरनेके बाद स्वयं भी उसका पुरस्कार पावेंगे। इसके अतिरिक्त यदि कोई यह आपत्ति करता है कि क्या उन महाकवियोंने अपनी रचनाएँ पुरस्कारके लिए भेजी थीं तो निःसंकोच ही कहा जा सकता है, क्योकि सम्मेलन पुस्तकालयमें उन लोगोंकी पुस्तकें प्रकाशित रूपमें ही नहीं पाण्डुलिपि रूपमे भी पड़ी है। जिन पुस्तकोंकी पाण्डुलिपि न हो उनकी तैयार भी कराई जा सकती है।

प्रस्ताव इतना तर्क-सम्मत था कि सर्व-सम्मतिसे स्वीकृत हुआ, यद्यपि सम्मेलनके इतिहासमे सर्व-सम्मतिसे स्वीकृत होनेवाला यह पहला प्रस्ताव था। अब समस्या थी कि यह कैसे देखा जायगा कि कौन साहित्यकार सबसे बड़ा है। इस बार भी प्रस्तावक महोदय ही बोले कि इन सभी साहित्यकारोंको पूरी तैयारीके साथ सम्मेलन-भवनमें बुला लिया जाय और एक-एककर सबकी ऊँचाई नाप ली जाय क्योंकि उनकी पुस्तकोंको पढ़कर निर्णय करनेमें तो सालों लग जायँगे।

सभी सदस्य मारे खुशीके उछल पड़े। इसपर एक सदस्यने कहा, 'इतनी बुद्धिमत्तासे भरे प्रस्तावपर स्वयं आप ही मंगलाप्रसाद पारितोषिकके

अधिकारी हो जाते हैं। अस्तु, मैं प्रस्ताव करता हूँ कि अगले वर्षका पुरस्कार आप ही को क्यों न दिया जाय।'

इसपर प्रस्तावक महोदयने चट कहा, 'आपकी इस गुण-ग्राहकता और खरी सूझको देखकर मैं प्रस्ताव करता हूँ कि मेरे बादवाले वर्षका पारितोषिक आप ही को दिया जाय। यही नहीं, इतने महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव जिस उपसमितिमें स्वीकृत हो रहे हैं उसके प्रत्येक सदस्यको एक-एक कर आगामी वर्षोंमें पुरस्कृत कर देना चाहिए। यह तय नहीं कि आनेवाले सदस्य इस बातसे सहमत नहीं हों, अस्तु इस तरहका एक उपनियम बना कर विधानमें जोड़ दिया जाय।' **"अहो रूपं अहो ध्वनि"** से भवन गूँज उठा।

लोग इतने प्रसन्न हुए कि प्रस्तावक महोदयको दुबारा पारितोषिक देनेका प्रस्ताव आते-आते बचा। अन्तमें उस टूर्नामेंटके लिए तिथि निश्चित करके बैठकने विराम लिया।

इतना कह चुकनेके बाद पुस्तकाध्यक्ष महोदयने कहा कि आज उसी सूचनाका प्रभाव है जो पुस्तकें 'साहित्य सम्मेलन भवन' में जानेकी तैयारी कर रही हैं। विद्यापतिसे प्रेमचन्द और प्रसाद तकके साहित्यकारोंकी होड़ है अतएव इन सभी साहित्यकारोंकी पुस्तकें भी तमाशा देखने जा रही हैं क्योंकि इस विजयका प्रभाव उनके भावी जीवनपर पड़ सकता है। यों, इन पुस्तकोंमें बहस वग़ैरह तो अभीसे शुरू हो गयी है।

इतना सुना तो स्वयं भी घटनास्थलपर पहुँचनेका लोभ संवरण न कर सका। स्टेशनकी ओर झपटा हुआ जा रहा था कि 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' पर बड़ी भीड़ देखी—पूछनेपर मालूम हुआ कि शायद भेष बदल कर साहित्यकार लोग ही अपनी पुस्तकें खरीदने आये हैं। परन्तु कुछ सन्त और भक्त कवि वहाँ नहीं दिखाई पड़े। दुकानदारने कहा कि वे अपरिग्रही महात्मा लोग पैसा कहाँसे पायें अतः किसी पुस्तकालयकी शरण

गये होंगे। इच्छा तो हुई कि लपक कर 'कारमाइकेल' पुस्तकालयमें देख लूँ परन्तु गाड़ीका समय हो गया था।

काशीसे प्रयाग जानेवाली यह आखिरी गाड़ी थी, इसलिए सबसे अधिक भीड़ इसीमें थी। गाड़ीमें आदमियोंसे ज़्यादा पुस्तकें ही थीं और स्टेशन मास्टरका कहना था कि यदि यही मालूम होता तो यात्री गाड़ीकी जगह मालगाड़ीका ही प्रबन्ध किया गया होता।

रास्ते भर गाड़ीमें पुस्तकोंने क्या-क्या काण्ड किये इसका बयान न करना ही अच्छा है। रीतिकालीन पुस्तकें तो रातभर जागकर अन्त्याक्षरी करती गईं। आधुनिक युगकी किताबोंने कवि-सम्मेलनका आयोजन कर लिया था। हाँ, बीच-बीचमें यदि चुप दिखायी दे रही थीं तो भक्ति-युगकी पोथियाँ। यह अकाण्ड काण्ड देखकर मानस, बीजक और सूरसागर वग़ैरह आँख मूँदकर रातभर माला जपते रहे अथवा ध्यानमग्न थे। यह अवश्य था कि रीतिकालीन पुस्तकें इन ध्यानलीन ग्रन्थोंपर कभी-कभी व्यंगात्मक समस्या पूर्तियाँ भी कर देती थीं। परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। यात्रा सकुशल समाप्त हुई।

उतर कर नियत समयसे कुछ पहले ही सम्मेलन-भवन पहुँचा। पहुँचते ही देखा कि प्रकाशक लोग पहले ही से डटे हैं, क्योंकि यह उनके हानि-लाभका ही नहीं, जीवन-मरणका प्रश्न था। थोड़ी देर बाद समालोचकोंका दल भी आ धमका। इनमें कुछ लोगोंने कहा कि हम लोग दर्शकोंके स्थानपर न जाकर सीधे अखाड़ेमें ही दाखिल हो जायँ। परन्तु आचार्य शुक्ल जैसे गम्भीर समालोचकोंने चुपचाप दर्शक मण्डलीमें ही स्थान लिया। देखा-देखी कुछ और लोग भी बैठ गये परन्तु मिश्रबन्धु, पद्म सिंह शर्मा, लाला भगवानदीन जैसे अखाड़िया दिग्गज विद्वान् अखाड़ेमे ही बैठे। सभी लोग तो अबतक आ गये थे परन्तु जिनमें होड़ थी अर्थात् जिन साहित्यकारोंके भाग्यका निर्णय होनेवाला था उनमेसे किसीका पता न था। निर्णायक मण्डल भी बैठ गया। फीता लेकर नापनेवाले महानुभाव

बेचैन-से नज़र आ रहे थे। सबकी निगाहें सड़कपर लगी थीं, कुछ लोग आसमानकी ओर देख रहे थे। नियत समय निकट आ रहा था परन्तु प्रतिद्वन्द्वी साहित्यकारोंमेंसे कोई नहीं पहुँचा। कानाफूसी होने लगी। कोई कहता था, सूचना नहीं पहुँची होगी। कोई कहता, सवारी न मिली होगी। कोई कहता गाड़ी लेट हो गई। परन्तु कुछ लोगोंका यह भी कहना था कि शायद अपना अपमान समझकर वे लोग न आये हों। मेरी बगलमे कोई एकाक्ष पुरुष बैठे थे। उन्होंने कहा, क्या देखते हो? सभी साहित्यकार भेष बदलकर बैठे हैं। घण्टा बजते ही असली रूपमे दाखिल हो जायँगे।

मुझे विश्वास नहीं हुआ। ठीक समयपर घण्टा बजा। अन्तिम झनक मौन भी न हो पायी कि शर्माजीने अपने पाकेटसे बिहारीको निकालकर रख दिया। देखना था कि मिश्रबन्धुओंने देवको अपने झोलेसे निकालकर खड़ा कर दिया। निर्णायक मण्डल देख रहा था कि केवल दो ही पहलवान मैदानमें आये और बाक़ी किसीका पता नहीं। निर्णायकोंको चुप देखकर शर्माजी तथा मिश्रबन्धु एक साथ बोल उठे—'जब समय हो गया है तो काम शुरू होना चाहिए कोई आये चाहे नहीं।'

निर्णायक मण्डल मुँह छिपाने लगा। अन्तमें दृढ़ होकर सभापतिने कहा, 'भक्तप्रवर सूर' सन्त कबीर और महात्मा तुलसीदास आदि प्राचीन तथा भारतेन्दु, प्रेमचन्द, प्रसाद आदि अनेक नबीन महान् साहित्यकारोंमें कोई नहीं आया है। अस्तु कार्यवाही उनके आनेपर ही शुरू होगी क्योंकि यह हिन्दीके सम्मानका प्रश्न है।'

सभापति महोदय शायद कुछ और कहनेवाले थे परन्तु बीच ही में किसीने टोककर कहा, 'क्या प्रसादजीको भी यहाँ बुलाया गया है? उन्हें तो एक बार मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है।'

शर्माजी वग़ैरहने कहा, 'यह प्रतियोगिता तो केवल प्राचीनोंकी ही है। नवीनोंको इनमें नहीं बुलाना चाहिए था।'

और लोगोंने कुछ-न-कुछ कहा परन्तु उस कोवारोरमें कुछ सुनाई न

पड़ा। यह देखकर आचार्य द्विवेदी और आचार्य शुक्ल उठकर जाने लगे। प्रबन्धकोंने दौड़कर उन्हें बिठानेका अनुरोध किया। द्विवेदीजी तो नहीं माने चले गये, परन्तु शुक्लजी शीलवश रुक गये। जब अधिक समय हो गया तो शर्माजी वग़ैरहने फिर आपत्तियाँ उठाई। इस बार प्रकाशकोंके दलमें कुछ सगबगाहट शुरू हुई और देखते-देखते गीता प्रेसने गोस्वामी तुलसीदासको, ब्रजमण्डलने सूरदासको तथा इसी प्रकार सरस्वती बुकडिपोने प्रेमचन्द और ना० प्र० सभाने भारतेन्दुको अपने-अपने पाकेटसे निकालकर रख दिया। शेष सभी लोगोंको एक साथ भारती भण्डारने उपस्थित कर दिया। किताब महलने भी एक अध्ययन सीरीज़की पुस्तकोंका टाल लगा दिया।

अब सरगर्मी आ गयी। इसी तरह सभी लोगोंने अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको मैदानमें एक कतारमें खड़ा कर दिया। दर्शक देख रहे थे कि अनेक महाकवि छोटे पड़ रहे हैं। निर्णायक मण्डलने आज्ञा दी जो चाहे अपने साहित्यकारको ऊँचा दिखानेके लिए पाँच मिनटतक अनेक सहायक साधनोंका उपयोग कर सकता है।'

आलोचकों और प्रकाशकोंने काम शुरू किया। तुलसीको ऊँची एड़ीकी खड़ाऊँ पहनाई गई, तो कबीरके सिरपर लम्बी टोपी रक्खी गई, बिहारीको पगड़ी बाँधी गई तो देवको भी उचकनेके लिए सिखाया गया। गरज़ कि सबको अलग-अलग असली क़दसे कुछ-न-कुछ ऊँचा दिखाया गया। अब संरक्षकोंको अलग कर दिया गया। ज्योंही नाप शुरू होनेवाली थी एक प्रकाशकने पूछा, 'क्या इन महाकवियोंको ऊँचा सिद्ध करनेके लिए उनकी लिखी पुस्तकों तथा उनके संबद्ध आलोचना ग्रन्थोंका उपयोग नहीं किया जा सकता।'

देवके समर्थकोंने सबसे पहले हल्ला मचाया—'ज़रूर ज़रूर।'

निर्णायक मण्डलने विवश होकर यह भी सुविधा दे दी। देखते-देखते मिनटभरके भीतर न जाने कितने रिसर्च स्कालर तैयार किये गये और उन्हें अग्रिम डाक्टरेट भी दे दी गयी। इस तरह बहुतसे महाकवियोंके

पैरों तले तो केवल सादे पन्नोंका ही सजिल्द पुलिन्दा यह कहकर रखा गया कि यह अप्रकाशित थीसिस है। किसीकी हिम्मत न थी जो उसका विरोध करता। कुछ लोगोंको इसपर भी सन्तोष न हुआ। अतः एक समीक्षक महोदयने जो सबसे लम्बे थे, प्रस्ताव किया कि क्या अपने-अपने प्रतियोगियोंको ऊँचा दिखानेके लिए हमलोग अपने कंधोंका सहारा नहीं दे सकते ?'

पहले कुछ विरोध हुआ अन्तमें डंकेकी चोट निर्णायक मण्डलने यह निवेदन भी स्वीकार कर लिया। इस सुविधाके मिलते ही चारों ओर तहलका मच गया। पता न चला कि कौन दर्शक है और कौन प्रतियोगी। फलतः दर्शक कोई न रहा। पहले पुस्तकें रखी गयीं, उनपर खड़े हुए प्रकाशक, प्रकाशकोंके ऊपर आलोचक और आलोचकोंके ऊपर रखा गया स्वयं कविको। परन्तु यह निर्णय इतना जल्दी नहीं हुआ। एक कविके अनेक आलोचकोंमें इसके लिए भी बहुत हुज्जत हुई कि किसके ऊपर कौन रहेगा। अन्तमें यह रास्ता निकाला गया कि ऊपर नीचे रखनेमें तिथि क्रमका आश्रय लिया जाय।

बाज़-बाज़ आलोचक एक ही साथ अनेक कवियोंके आलोचक थे। अतः प्रकाशकोंने उन्हें बाध्य किया कि वे उन सभी कवियोंको अपने ऊपर लादें। ऐसे आलोचकोंका कचूमर निकल गया। एक अध्ययन वाले एक नवीन आलोचकको सबसे अधिक भार वहन करना पड़ा।

इसी बीच कुछ कवियोंको फिर भी छोटा पड़ता देखकर स्वयं निर्णायकोंमें कानाफूसी होने लगी। धीरे-धीरे यह कानाफूसी बहसकी ऊँचाईतक पहुँच गई। प्रतियोगियोंने यह दशा देखकर निर्णायकोंको भी अपनी-अपनी ओर खींचना शुरू किया। खींचतान इतनी हुई कि निर्णायकोंमें-से किसीके तीन या चार टुकड़े हो गये। उस नापनेवाले आदमीके तो सैकड़ों टुकड़े हो गये। फिर भी लोगोंने सबको अपने-अपने स्तम्भोंके नीचे रखा।

इस तरह जब पूरा स्तम्भ तैयार हो गया तो कोई देखनेवाला न रहा कि आखिर सबसे बड़ा कौन है क्योंकि उन्हें आपसमें लड़ते देखकर शुक्लजी

वग़ैरह पहले ही चले गये। अब हर एक स्तम्भ अपने प्रतियोगीको बड़ा कहने लगा। नौबत हाथापायीकी आ गयी। लोगोंने अपने-अपने शीर्षस्थ कवियोंसे पूछा कि बोलो कौन बड़ा है। परन्तु बार-बार पूछनेपर भी कोई आवाज़ न आई। चिढ़कर स्तम्भमें खड़े आलोचकोंने कहा कि अगर नहीं बोलते तो तुम्हीं नीचे आओ और हम स्वयं ऊपर जाकर बतायेंगे कि कौन बड़ा है ?

कहते-कहते स्तम्भके आलोचकोंने कवियोंको पटक-पटक कर स्वयं ही उनपर चढ़ना शुरू किया। अब प्रश्न यह नहीं रहा कि कौन कवि बड़ा है, प्रश्न यह हो गया कि कौन आलोचक बड़ा है ? अब कोई आलोचक किसीको कंधा देनेके लिए तैयार ही न हो, यहाँ तक कि नये-नये डाक्टरोंने भी अपने गुरुओंको शीशपर रखनेसे इन्कार कर दिया। फिर क्या था ? जबर्दस्ती होने लगी। कोई उछलकर किसीके सिर चढ़ जाता और कोई किसीके सर। अन्तमे फैसला न होते देख सभी लोग पारितोषिकके रुपयेकी ओर दौड़े परन्तु वहाँ पहुँच कर देखा गया कि उसे तो लेकर पहले ही कोई भाग गया था।

आलोचक-समुदाय अवाक् खड़ा-खड़ा देख रहा था कि 'माया मिली न राम।' उधर हमारे कवि धूलमे तड़प रहे हैं। परन्तु उनकी फिकर किसको ? धरती रौंदी जाकर काफ़ी धंस गयी थी। चारों ओर गर्द छा गयी थी। उत्सुकतावश जनताकी अपार भीड़ उमड़ी चली आ रही थी। कवियोंकी यह दशा देखकर उसने अपने हृदयकी बाहें बढ़ाकर महाकवियोंको उठाना शुरू किया। सबकी ज़बानपर केवल यही वाक्य था—तुम हमारे कवि हो, यही क्या कम है ! कौन बड़ा है—हमें इससे मतलब नहीं।

आलोचक समुदाय भौंचक खड़ा देख रहा था। एकने कहा—'यही तो हम भी कहते थे।'

उसके बाद क्या हुआ यह तो नहीं मालूम परन्तु अब जब कोई आलो-

चक किसी कविपर क़लम उठाता है तो, सुनते हैं वह कवि दहल जाता है और आवाज़ आती है, हमें अनालोचित ही रहने दो।

जब मैंने सम्मेलनका यह काण्ड अपने एक प्रगतिशील समालोचक मित्रको सुनाया तो वे बोले : 'अवश्य ही यह भारी ग़लती है। यही तो प्रतिगामियोंका स्वभाव है। कवियोंकी जाँच ऊँचाईके अनुसार नहीं बल्कि चालके अनुसार होनी चाहिए। अर्थात् मुख्य प्रश्न यह है कि कौन कवि सबसे तेज़ चलता है।'

मैंने कहा—'तब तो बड़ी मुश्किल है। चलनेकी होड़में लोग दौड़ने भी लगेंगे।'

वे बोले—'ज़रूर-ज़रूर। वह तो होगा ही। होना ही चाहिए। और इसकी जाँचके लिए हम लोग अभीसे कवियोंको दौड़ानेका अभ्यास करा रहे हैं।'

मैंने पूछा—'परन्तु कहीं ऐसा न हो कि कवि लोग इतना आगे दौड़ जाँय कि उनके साथ चलनेवाला आलोचक पिछड़ जाय और निर्णय ही न हो पाये।'

वे बोले—'ऐसा कैसे संभव है ? साथ-साथ चलनेवाला आलोचक यानसे रहेगा। फिर मंज़िले मक़सूदपर यह सब देखनेके लिए मार्क्स दादा तो खड़े ही हैं।'

बहुत दिनों बाद सुना कि उस दौड़के अभ्यासमें मेरे वे प्रगतिशील आलोचक मित्र एक दिन मुँहके बल गिरे फिर भी उत्साह ठंडा नहीं हुआ है। परन्तु तबसे कवियों पर मातम छा गया है कि इस बार न जाने क्या होगा और जनता अपनी फसलकी ओर देख रही है कि न जाने दौड़ किस जगह होगी ?

विज्ञापन युग

•

मोहन राकेश

मेरे पड़ोसियोंकी मुझपर ऐसी कृपा है कि रातको सोने तक और सुबह उठनेके साथ ही मुझे गज़लें, भजन और गीत और उनके साथ-साथ चाय, तेल और सिर दर्दकी टिकियोंके विज्ञापन सुनने पड़ते हैं। अब तो मुझे ये विज्ञापन सुननेका ऐसा अभ्यास हो गया है कि अन्यत्र भी कहीं मैं ग़ालिबकी ग़जल सुनता हूँ, या सूरदासका भजन सुनता हूँ, या कोई अच्छा-सा गीत सुनता हूँ, तो साथ मेरे दिमाग़में अपने-आप ये शब्द गूँजने लगते हैं—क्या आपके सिरमें दर्द रहता है? सिर दर्दसे छुटकारा पाइए! एक गोली लीजिए—सिर दर्द ग़ायब।

परिणाम यह है कि अब मेरे लिए कोई ग़जल ग़जल नहीं रही, कोई

गीत गीत नहीं रहा, सब किसी-न-किसी चीज़का विज्ञापन बन गये हैं। दिनभर ये गीत और विज्ञापन मेरा पीछा करते रहते हैं। पहले बहुत मीठे गलेमे **"रहना नहिं देश बिराना है"** की लय और उसके तुरन्त बाद क्या आपके शरीरमे खुजली होती है ? खुजलीका नाश करनेके लिए एक ही रामबाण ओषधि है—। कर लें। कबीर साहब क्या करते हैं ? खुजली कम्पनी उनकी जिस रचनापर चाहे अपनी मोहर चस्पां कर सकती है।

और बात गीतों ग़जलों तक ही सीमित नहीं है। मुझे लगता है कि मेरे चारों ओर हर चीज़का एक नया मूल्य उभर रहा है, जो उसके आज तकके मूल्यसे सर्वथा भिन्न है और जो उसके रूपको मेरे लिए बिलकुल बदल दे रहा है। कोई चीज़ ऐसी नहीं जो किसी-न-किसी रूपमे किसी-न-किसी चीज़का विज्ञापन न हो। अजन्ताके चित्र और एलोराकी मूर्तियाँ कभी अछूनी कलाका उदाहरण रही होंगी, परन्तु आज उस कलाको एक नयी सार्थकता प्राप्त हो गयी है। उन मूर्तियोंका केश-सौन्दर्य आज मुझे एक तेलकी शीशीका स्मरण कराता है, उनकी आँखें एक फार्मेसीका विज्ञापन प्रतीत होती हैं और उनका समूचा कलेवर एक पेट्रोल कम्पनीकी कलाभिरुचिको प्रमाणित करता है। जिन हाथोंने उन कला-कृतियोंका निर्माण किया था, वे हाथ भी आज एक बिस्कुट कम्पनीकी विकास-योजनाके विज्ञापनके रूपमें सार्थक हो रहे हैं।

देशके कोने-कोनेमें बिखरे हुए जितने मन्दिर हैं, जितने पुराने क़िले और खण्डहर हैं, जितने स्तम्भ और स्मारक है, वे सब इसीलिए हैं कि लोगोंमे यातायातकी रुचि जाग्रत हो, टूरिस्ट ट्रेडको प्रोत्साहन मिले, विदेशसे लोग आकर उनकी तस्वीरें लें और अपनी प्रियतमाओंके पास भेजें। मीनाक्षी और रामेश्वरम्के शिखर और खजुराहोके कक्ष इस दृष्टिसे भी उपयोगी हैं कि एक विशेष ब्राण्डके सीमेंटकी मज़बूतीको व्यक्त करनेके प्रतीक बन सकें। काश्मीरकी सारी पार्वत्य सुषमा, वहाँकी नवयुवतियोंका

भाव सौन्दर्य और वहाँके कारीगरोंकी दिन-रातकी मेहनत, ये सब इस बातको विज्ञपित करनेके उपकरण हैं कि सफ़ेद रंगका वह शहद जो बन्द डिब्बोंमें मिलता है, सबसे अच्छा शहद है। बर्नर्ड शाके नाटक हमे यह बतलाते है कि ब्रिटेनके किस प्रेसमे छपाई सबसे अच्छी होती है, प्रशान्त-सागरमे गिराये जानेवाले अणु बम हमें इस बातकी चेतावनी देनेके लिए हैं कि जब तक हम एक विशेष बीमा कम्पनीकी पालिसी न ले लें तबतक हमारा भविष्य सुरक्षित नहीं और भारत और पाकिस्तानमे काश्मीरके लिए झगड़ा इसलिए हो रहा है कि वहाँके सेबोंका मुरब्बा बहुत अच्छा होता है जिसे सिर्फ़ एक ही कम्पनी तैयार करती है।

विधनाने इतनी बारीक़बीनीसे यह जो धरती बनायी है और मनुष्यने विज्ञानके आश्रयसे उसमे जो चार चाँद लगाये हैं, वे इसीलिए कि विज्ञापन कलाके लिए उपयुक्त भूमि प्रस्तुत की जा सके। उत्तरी ध्रुवसे दक्षिणी ध्रुव तक कोई कोना न बचा होगा जिसका किसी-न-किसी चीज़के विज्ञापन-के लिए उपयोग न किया जा रहा हो। हर चीज़, हर जगह अपने अलावा किसी भी चीज़ और किसी भी जगहका विज्ञापन हो सकती है। गेहूँकी फसल एक कपड़ेकी मिलका विज्ञापन है क्योंकि नयी फसलसे प्राप्त हुए नये पैसेका एक ही उपयोग है कि उससे कपड़ा ख़रीदा जाय। कपड़ेकी मिल डबल रोटीकी बेकरीका विज्ञापन है, क्योंकि मिलके काम करनेवाले तभी काम-पर जा सकते हैं जब वे डबल रोटी खा चुकें। और बेकरी, वाटरप्रूफ जूतोंका विज्ञापन है क्योंकि जब तक वाटर प्रूफ जूते न होंगे तब तक बारिशमें इन्सान डबल रोटी जैसी साधारण चीज़ भी प्राप्त नहीं कर सकता। बहुत-सी चीज़ें एक दूसरेका विज्ञापन हैं; फूल इत्रकी शीशीका विज्ञापन है, इत्रकी शीशी फूलोंका विज्ञापन है। पत्र लेखकका विज्ञापन है लेखक पत्रका विज्ञापन है। सौन्दर्य सौन्दर्यसाधनोंका विज्ञापन है, और सौन्दर्य-साधन सौन्दर्यके विज्ञापन हैं। बहुत-सी चीज़ें अपना विज्ञापन आप देती हैं जैसे उपदेशकता, आलोचकता, नेतागिरी इत्यादि।

मुद्दआ यह कि जहाँ जायें, जिधर जायें, जहाँ रहे जैसे रहें, इन विज्ञापनोंकी लपेटसे नहीं बचा जा सकता। घरमें बन्द होकर बैठ जायें तो विज्ञापन रोशनदानोंके रास्ते हवामे तैरते आते है। क्या आज आपने दाँत साफ़ किये हैं ? सबेरे उठते ही सबसे पहले क्लोरोफिल वाले टुथ पेस्टसे दाँत साफ़ कीजिए। याद रखिए अपने दाँतोंको रोगोंसे बचानेके लिए यही एक साधन है।—घरसे निकलिए, हर दोराहे, चौराहे और सड़कके खम्भेपर विज्ञापन—खतरेसे सावधान—धोखेसे बचिए इसके पढ़नेसे बहुतोंका भला होगा। अखबार उठा लीजिए, विज्ञापन। पुस्तक उठा लीजिए, विज्ञापन। बसमे बैठ जाइए, विज्ञापन। क्या आपका दिल कमज़ोर है ? क्या आपका जिस्म टूटता रहता है ? क्या आपके सिरके बाल झड़ रहे है ! क्या आपके घरमे झगड़ा रहता है ? गोया कि आपकी व्यक्तिगत ज़िन्दगी बिलकुल व्यक्तिगत नहीं है; उसे केवल इन विज्ञापनदाताओंके परामर्शसे ही जिया जा सकता है।

विज्ञापन-कला जिस तेजीसे उन्नति कर रही है उससे मुझे भविष्यके लिए और भी अन्देशा है। मुझे लगता है कि ऐसा युग आनेवाला है जब शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और साहित्य, इनका केवल विज्ञापन कलाके लिए ही उपयोग रह जायगा। वैसे तो आज भी इस कलाके लिए इनका खासा उपयोग होता है। बहुत-सी शिक्षण संस्थाएँ है, जो साम्प्रदायिक संस्थाओंका विज्ञापन हैं। कई कला-केन्द्र कुछ स्वनामधन्य लोगोंकी दानवीरताका विज्ञापन मात्र हैं। अपनी पीढ़ीके कई लेखकोंकी कृतियाँ लाला छगनलाल मगनलाल या इसी तरहके नामके किसी और लाला स्मारक निधिसे प्रकाशित होकर लालाजीकी दिवंगत आत्माके प्रति स्मारक होनेका फ़र्ज अदा कर रही हैं। मगर आनेवाले युगमें कला दो क़दम और आगे बढ़ जायगी। विद्यार्थियोंको विश्वविद्यालयके दीक्षान्त महोत्सवपर जो डिग्रियाँ दी जायँगी, उनके निचले कोनेमें छपा रहेगा आपकी शिक्षाके उपयोगका एक ही मार्ग है—आज ही आयात निर्यातका धन्धा आरम्भ कीजिए। मुफ्त सूची-

पत्रके लिए लिखिए—। हर नये आविष्कारकका चेहरा मुसकराता हुआ टैलीवीज़न सेटपर आकर कुछ इस तरहका निवेदन करेगा—मुझे यह कहते हुए हार्दिक प्रसन्नता है कि मेरे प्रयत्नकी सफलताका सारा श्रेय रबड़के टायर बनानेवाली कम्पनीको है, क्योंकि उन्हींके प्रोत्साहन और प्रेरणासे मैंने इस दिशामे क़दम बढ़ाया था। विष्णुके मन्दिर खड़े होंगे जिनमे संगमरमरकी सुन्दर प्रतिमाके नीचे पट्टी लगी होगी— 'याद रखिए, इस मूर्ति और इस भवनके निर्माणका श्रेय लाल हाथीके निशानवाले निर्माताओंको है। वास्तुकला सम्बन्धी अपनी सभी आवश्यकताओंके लिए लाल हाथीका निशान कभी मत भूलिए। और ऐसे-ऐसे उपन्यास हाथमे आया करेंगे जिनकी सुन्दर चमड़ेकी ज़िल्दपर एक ओर बारीक़ अक्षरोंमे छापा होगा—साहित्यमे अभिरुचि रखनेवालोंको इक्का मार्का साबुन बनानेवालोंकी एक और तुच्छ भेंट। और बात बढ़ते-बढ़ते यहाँतक पहुँच जायगी कि जब एक दूल्हा बड़े अरमानसे दुलहिन व्याहकर घर लायेगा और घूंघट हटाकर उसके रूपकी प्रशंसामे पहला वाक्य कहेगा तो दुलहिन मधुर भावसे आँख उठाकर हृदयका सारा दुलार शब्दोंमे उड़ेलती हुई कहेगी—'बताऊँ मैं सुन्दर क्यों दिखायी देती हूँ? यह इसलिए कि मैं प्रति प्रातः उठकर नौ सौ इक्यानबे नम्बर साबुनसे नहाती हूँ। कलसे आप भी घरमें नौ-सौ इक्यानबे नम्बरका साबुन रखिए। इसकी सुमधुर गन्ध सारा दिन दिमाग़को ताज़ा रखती है और इसके मुलायम झागसे त्वचा बहुत कोमल रहती है। और इसकी बड़ी टिकिया खरीदनेसे पैसेकी भी किफ़ायत होती है।' और इसके बाद उनका नौ-सौ इक्यानबेसे सुगन्धित चेहरा दूल्हाके चेहरेके बहुत पास चला जायेगा।

जहाँतक विज्ञापनके लिए जगहका सवाल है, बहुत-सी जगहें हैं जो अभी तक एक्सप्लायट नहीं की जा सकीं। क्योंकि विज्ञापन कलाकी दृष्टिसे सब चीज़ोंका आपसमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है इसलिए दवाईकी शीशियोंमें मक्खनके डिब्बोंके विज्ञापन होने चाहिए और मक्खनके डिब्बोंमें दवाईकी

शीशियोंके। चित्रकला गैलरियोंमें चित्रोके अतिरिक्त तेलके इश्तहार टाँगे जाने चाहिए और तेलकी बोतलोंपर चित्रकला प्रदर्शिनीकी सूचना चस्पाँ होनी चाहिए। कम्बलों और दुशालोमे चाय और कोकोके इश्तहार बुने जा सकते हैं। नमदे और गलीचे रबड़ सोलके जूतोंके विज्ञापनका आदर्श साधन हो सकते है। बैंकोकी दीवारोंपर लाटरी और रेस कोर्सके विज्ञापन दिये जा सकते है। रेस कोर्समे बचतकी स्कीमोंका विज्ञापन दिया जा सकता है। रेल और हवाई जहाज़के टिकटोंपर बीमा कम्पनियोंका विज्ञापन हो सकता है और अस्पतालोंकी दीवारोंपर मैट्रिमोनियल विज्ञापन लगाये जा सकते है।

यह तो आनेवाले कलकी बात है, वैसे आज भी स्थिति यह है कि मुझे हर जगह विज्ञापन ही विज्ञापन दिखायी देते हैं—जहाँ विज्ञापन हों वहाँ भी, और जहाँ न हों वहाँ भी। मेरा मस्तिष्क हर चेहरे, हर ध्वनि, और हर नामका सम्बन्ध किसी-न-किसी विज्ञापनके साथ जोड़ देता है। मैं सुबह उठकर सामनेकी दुकानके लड़केको चाय लानेका आदेश देता हूँ तो चायका नाम लेते ही मुझे नीलगिरिकी सुन्दरीका ध्यान आ जाता है जिसका चेहरा मैं रोज़ अखबारमें देखता हूँ और नीलगिरिके नामसे मुझे तुरन्त काफ़ी प्रदेशकी ढलानें याद आ जाती हैं। साथ ही एक बुड्ढे राजपूतका चेहरा मेरी आँखोंके आगे फिरने लगता है और मैं अनायास बुदबुदाने लगता हूँ—यह अच्छी काफ़ी और यह अच्छा चेहरा दोनों भारतीय हैं।

खैर, लड़का दो मिनटमें ही चायकी प्याली लेकर मुसकराता हुआ मेरे सामने खड़ा होता है। उसके अधखुले ओंठोंके बीच उसकी सफ़ेद दन्त-पंक्तिको देखकर मुझे लगता है कि वह विशुद्ध क्लोरोफिल मुसकराहट मुसकरा रहा है। अमरीकन मुहावरेमें इसे 'मिलियन-डालर स्माइल' कहते हैं। और वह लड़का है कि रोज़ छः-पैसेकी चायकी प्याली मुझे पकड़ाता हुआ एक मिलियन डालरकी मुसकराहट मुसकरा जाता है। मेरी कई बार ख्वाहिश होती है कि लड़केको किसी क्लोरोफिल कम्पनीके हवाले कर दूँ, जिससे उसके

दाँतोंका सही मूल्य संसारके सामने आ सके। और जब मैं यह सोच रहा होता हूँ, तभी ईथरमे तैरती हुई स्त्री कण्ठकी सुमधुर आवाज़ सुनाई देती है—क्या आपका हाफिज़ा दुरुस्त नहीं है ? अपना हाफिज़ा दुरुस्त करनेकी ओर आज ही ध्यान दीजिए—

मुझे ठीक मालूम नहीं कि मेरा हाफिज़ा दुरुस्त है या नही। मगर मैं किसी बच्चेको किलकारी मारकर हँसते देखता हूँ तो मुझे लाल डिब्बेमें बन्द बेबी मिल्ककी याद हो आती है। किसी सुन्दर दृश्यको देखता हूँ तो उनतीस रुपयेवाला कैमरा मेरी आँखोंके आगे नाचने लगता है। विवाह-मण्डपके पास खड़े होकर मुझे नेशनल सेविंग्ज़ सर्टिफिकेटकी याद ज़रूर आती है। मुहल्लेके लाल चौधरी मुझसे मिलने आते हैं तो मुझे लगता है कि विटामिन बी कम्पलेक्सका विज्ञापन चला आ रहा है। दफ़्तरकी नयी टाइपिस्ट रोज़ीका समूचा व्यक्तित्व मुझे स्कारलेट रंगकी लिपस्टिकका विज्ञापन प्रतीत होता है। और सच कहूँ तो हालत यहाँतक पहुँच गयी है कि मैं आप शीशेके सामने खड़ा होता हूँ तो मुझे लगता है कि लिवर साल्ट-का विज्ञापन देख रहा हूँ।

गीतकी खोज

●

भारतभूषण अग्रवाल

करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
टूटी है जीवन सितार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।

काली घटाएँ, लो, छाया अँधेरा
बिजली लगाती है पल-पलपै फेरा
सहमा है सब संसार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।

करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।

साँसोंकी बाती, है तेल नहीं बाकी
प्राणोंके दीपक पै चोटें हवाकी
झोंके हैं जैसे कटार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।

कवि : कहो सेठ, कैसा लगा ?

सेठ : [**व्यंग्यसे**] कहो सेठ, कैसा लगा ! मै कहता हूँ तुम तीन हफ़्तेसे मुझे उल्टा-सीधा समझाते रहे और आख़िरमें लिखकर लाये भी तो ये ?

कवि : क्यों, इसमें क्या ख़राबी है ?

सेठ : पूछते हो, क्या ख़राबी है ! मैं कहता हूँ इसमें है ही क्या ? आख़िर ये तुमने लिखा क्या है ?

कवि : आपने कहा था न कि एक थीम सौन्ग[१] लिख लाना।

सेठ : तो क्या यह थीम सौन्ग है ?

कवि : और नहीं तो क्या है सेठ ?

सेठ : यह थीम सौन्ग नहीं है, यह वाहियात सौन्ग है। समझे। मैं कहता हूँ, तुमसे कुछ नहीं होनेका !

कवि : क्यों ?

सेठ : पूछते हो क्यों ? तुम बुद्धू हो यों !

कवि : देखो सेठ, मुझे कुछ न कहो....।

---

१. Theme Song

सेठ : क्यों न कहूँ ?

कवि : इसलिए कि मुझे अपनी आलोचना सुनना गवारा नहीं, चाहे वह सच्ची ही क्यों न हो !

सेठ : और मुझे अपनी फ़िल्म चौपट नहीं करनी है, चाहे कम्पनी ही क्यों न फेल हो जाय !

कवि : लेकिन आपको यह गीत पसन्द क्यों नहीं आया ? देखिए न, एक भी भद्दी बात नही है, एक भी संस्कृतका शब्द नही है, बड़ी चलती ट्यून है, और कही-कही तो मतलब भी बिलकुल साफ़ है। अब आप ही बताइए थीम सौन्गमे और क्या चाहिए ?

सेठ : चाहिए मेरा सिर ? तुमने कभी थीम सौन्ग लिखा हो, तब तो समझो। तुम्हे इतनी बार समझाया कि थीम सौन्ग वह कहलाता है, वह कहलाता है, जो—

कवि : पूरी फिल्ममे दो-तीन बार गाया जा सके।

सेठ : बिलकुल ! अब यह दो-तीन बार कैसे गाया जायगा !

कवि : क्यों, यह तो बिलकुल आसान है एक बार शुरूमे गवा दीजिए, एक बार आखिरमे, और एक बार कहीं बीचमें—

सेठ : हाँ, हाँ, यह तो मैं भी समझता हूँ, पर शुरूमें इसे गायेगा कौन ?

कवि : अब यह तो कहानी देखकर ही बताया जा सकता है।

सेठ : फिर वही, फ़िजूलकी बात। मैं कहता हूँ, मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि थीम सौन्ग वह कहलाता है, वह कहलाता है—

कवि : जो हर कहानीमे फिट हो जाय।

सेठ : बिलकुल। अब बताओ, यह कैसे फिट होगा।

कवि : आप करना चाहेंगे तो ज़रूर हो जायगा।

सेठ : कैसे हो जायगा ?

कवि : जैसे आप चाहें। कोई मुश्किल काम तो है नहीं।

सेठ : मैं कहता हूँ, अगर मुश्किल काम नहीं है, तो ज़रा करके बताओ।

कवि : अभी लीजिए, हाँ, तो कहानी क्या है ? ओ। आई एम सौरी—माफ़ कीजिएगा, चमड़ेकी ज़ुबान, ज़रा फ़िसल गई।—हाँ तो, यों समझिए कि अगर हिस्टौरिकल फ़िल्म है तो, क़िलेमे बन्द बाग़ियों-का गिरोह शुरूमे यह थीम सौन्ग गाता है।

सेठ : लेकिन मै हिस्टौरिकल फ़िल्म नहीं बनाना चाहता, समझे।

कवि : कोई मुज़ायका नहीं। मगर माइथौलौजिकल[1] फ़िल्म है तो मन्दिर-की आरतीके बाद भक्त गण यह थीम सौन्ग गाते है।

सेठ : मै कहता हूँ, फिज़ूलकी बात मत करो। माइथौलौजिकल फ़िल्मसे मेरी विलविडको सख्त नफ़रत है।

कवि : ओ। आई एम सो सौरी ! क्षमा कीजिए। आइ मीन—माफ़ फ़रमाइए। हाँ, अगर सोशल फिल्म है तो—

सेठ : तो ?

कवि : तो भी कोई परवा नही। अगर सोशल फिल्म है तो सिनेमा हाल-पर टिकटोके लिए दस आनेवाली लाइनसे यह कोरस गवा दीजिए।

सेठ : फ़ायदा ?

कवि : फायदा यह कि शुरूमे थीम सौन्गको इण्ट्रोड्यूस करनेकी जो बात है वह पूरी हो जायगी।

सेठ : लेकिन अगर कोई पूछेगा कि इनसे थीम सौन्ग क्यों गवाया, तो क्या जवाब दूँगा !

कवि : बहुत सीधा जवाब है।

सेठ : क्या जवाब है ?

कवि : यही कि अगर इनसे न गवाता तो किससे गवाता ? बोलिए, इसके बाद कोई कुछ कह पायेगा—सिवाय मेरे।

---

1. Mythological.

सेठ : तुम भी क्या कह सकते हो ?

कवि : मै तो खैर बहुत कुछ कह सकता हूँ ।

सेठ : मसलन !

कवि : मसलन यह कि अनाथालयके बच्चोसे गवाया होता ।

सेठ : वाह, वाह, शाबाश ! यह है आइडिया । वाक़ई यह तो ग़ज़बका थीम सोन्ग हैं ।—और तीसरी बार गवानेके लिए क्या करेंगे, जानते हो ?

कवि : जी, आप जना दीजिए ।

सेठ : मैं कहता हूँ, तीसरी बारके लिए हिरोइनसे गवा देंगे ।

कवि : पर यह फ़िट कैसे होगा ? यह तो 'धरतीकी पुकार' है न ?

सेठ : तभी तो कहता हूँ, तुम बुद्धू हो—अरे, इतना भी नहीं जानते ? हिरोइनका नाम धरती रख देंगे । बस । पिक्चर कम्प्लीट !—वाह, वाह, भई, क्या थीम सोन्ग लिखा है तुमने, मान गये ।

कवि : थैंक्यू, थैंक्यू ! मैं जानता था कि आप इसे पसन्द करेंगे । शुक्रिया । ···तो फिर दूसरा गाना—

सेठ : दूसरा गाना मैंने कहा था न—फिमेल सोलो होना चाहिए हिरोइन के वास्ते ?

कवि : भला मैं भूल सकता हूँ ।—लीजिए ये भी हाज़िर है ।

सेठ : ज़रा रुक जाओ ।—अरे देखो । ज़रा मिस जुहीको तो बुलाओ । तुम्हें मालूम है, मैं मिस जुहीको इस फिल्ममें लीडिंग रोल दे रहा हूँ ।

कवि : वाह, तब तो बड़ा मज़ा आयेगा ।

जुही : [**फेड इन**] कहिए सेठ । क्या बात है ?

सेठ : कुछ नहीं, कुछ नहीं, ज़रा दो मिनटका काम है । प्रोडक्शन नं० २३ जिसमे तुम हिरोइनका काम करोगी, उसका यह एक गाना लिखकर लाये हैं । ज़रा तुम भी सुन लो ।

जुही : ये !

कवि : जी हाँ, खाकसारने ही लिखा है।—तो हाज़िर है—सुनाऊँ ?

तुम सपनोंमें आये क्यों
आंखोंमें समाये क्यों
बोलो, पिया बोलो !

मुझे प्रीतिका ज्ञान न था
मनमें कुछ अरमान न था
तुमने नयन मिलाये क्यों
जीके तार बजाये क्यों
बोलो, पिया बोलो !

मुझे धूपका सोच न था
जलनेका संकोच न था
बादल बनकर छाये क्यों
रसके कण बरसाये क्यों
बोलो, पिया बोलो !

फूल रही थी फुलवारी
मैं थी धुनमें मतवारी
फूल देख मुसकाये क्यों
तुमने हाथ बढ़ाये क्यों
बोलो, पिया बोलो !

सेठ : कहो डार्लिंग, कैसा लगा ?

जुही : सिली, नौनसैन्स, मैं कहती हूँ, ये भी कोई गीत है, जिसका सिर न पैर !

कवि : जी नही, यह तो आप गलत फरमाती है, क्योंकि इसका सिर भी है और पैर भी। देखिए न, पहली लाइन सिर है—और यह आखिरी लाइन पैर और—

जुही : बकवास मत करो।—तुम हमारा मज़ाक उड़ाते हो। हम यह गाना नहीं गायेंगी।

सेठ : लेकिन डार्लिग आखिर वजह भी तो बताओ। तुम चाहो तो इसमे कुछ रदोबदल कर दिया जाय।

जुही : रद्दोबदलसे काम नहीं चलेगा। देखिए न। इसमें थ्रूआउट एक ऐसी टोन है, मानो मै भीख माँग रही हूँ। बड़ा इन्फीरियोरिटी कम्प्लैक्स है इस गानेमे।

सेठ : लेकिन, यह बात तो सिचुएशनपर डिपेण्ट करती है। अगर इस गानेकी टोन इस तरहकी है, तो हम कहानीमे भी ऐसी सिचुएशन लायेंगे कि यह फ़िट हो जायगा।

जुही : कैसी सिचुएशन ?

सेठ : यही कि—मान लो—आइ मीन—जस्ट सपोज़—कि हिरोइन जो है वह विधवा माँकी ग़रीब लड़की है। और उसे हाल ही मे एक मिडिल स्कूलमे नौकरी मिली है। तब तो ठीक रहेगा।

जुही : और ये गाना विधवा माँ गाती है ?

सेठ : ह्वाट ! ओह डार्लिङ्ग, तुम समझती क्यों नहीं ?

कवि : मैं बताऊँ ?

सेठ : कहो।

कवि : हीरोको बुलाइए, वही इन्हें समझा सकता है।

जुही : नौन्सैस ! सेठजी, इनसे कहिए, अपनी ज़ुबानपर ज़रा लगाम रक्खें। मैं इस तरहका मज़ाक बिलकुल पसन्द नहीं करती।

कवि : तो किस तरहका करती हैं, यह मालूम हो जाय तो—

जुही : शट अप !

सेठ : मैं कहता हूँ, यह क्या गड़बड़घोटाला है। ए पोएट, ज़रा तमीज़से पेश आओ।—डार्लिङ्ग। तुम भी ज़रा एक बार फिर सोचो—मुझे तो यह गीत अच्छा लगा। इसकी ट्यून बड़ी पोपूलर होगी। आखिर और कोई वजह ?

जुही : जो सिचुएशन आप बता रहे है, ये सिचुएशन भी मुझे पसन्द नहीं।

कवि : अगर इजाज़त हो तो मैं कुछ अर्ज़ करूँ।

सेठ : हाँ, हाँ।

कवि : इसके लिए आइडियल सिचुएशन तो यह रहेगी कि यह गीत हिरोइनकी बजाय हीरो ही गा दे।

सेठ : कमालकी बात करते हो!—अरे ये फिमेल सोलो है या मेल सोलो है ?

कवि : जी बात यह है कि यह तो सोलो है। अब ज़रूरतके मुताबिक यह फिमेल सोलो भी बन सकता है, और मेल सोलो भी। वैसे फिमेल सोलो ज़्यादा जँचता, पर जब इनकी मर्जी नहीं, तो मेल सोलो ही सही।

सेठ : यह सहीकी भी खूब रही। भले आदमी, गीतकी पहली लाइन है, **'तुम सपनोंमें आये क्यों'**।—इसका मेल सोलो कैसे बनेगा ?—और इसे यों कर दें—**'तुम सपनोंमें आई क्यों'**—तो बाक़ी सारी लाइनें बदलनी पड़ेंगी।

कवि : जी नहीं, कुछ नहीं बदलना पड़ेगा। ऐसाका-ऐसा ही मेल सोलो हो जायेगा। कवितामें इस तरह भी चल जाता है। और दो-एक फिल्ममें भी ऐसा गीत गाया जा चुका है।

सेठ : गाया जा चुका है। तब तो यह पुरानी ट्रिक हो गई। मैंने तुमको कहा था न कि मैं सारी चीज़ें एकदम नयी चाहता हूँ।

कवि : जी नहीं, गीत तो एकदम नया है, रातको ही लिखा है मैंने। लेकिन हाँ, कहनेका ढंग ज़रा पुराना है। और यह निहायत ज़रूरी चीज़

११

है। क्योंकि अगर कुछ भी पुराना न रहे, तो जो आपके पुराने देखनेवाले हैं, उनके टेस्टका क्या होगा ?

सेठ : हाँ, यह तुम ठीक कहते हो।—तो डार्लिंग ! अब तो कोई औब-जेक्शन नहीं ?

जुही : जब यह मेल सोलो है तो मुझसे पूछनेकी क्या ज़रूरत, हीरोको बुलाइए।

सेठ : लेकिन हीरो तो अभी प्रोडक्शन नं० १८ में बिज़ी है।—यह तो बड़ी मुश्किल है। अब क्या होगा।

कवि : यह तो—

सेठ : डार्लिंग। मैं तो कहता हूँ, तुम एक बार और सोचकर देख लो। मेरी रायमें तो यह गीत बहुत ही ख़ूब है।

जुही : जी नहीं, रहने भी दीजिए। हर लाइनमे 'क्यों, क्यों, क्यों,' सवालोंके मारे नाकमें दम—मानो एक्ज़ामिनेशन हॉलका गीत हो ! नहीं सेठ जी, मैं यह गाना नहीं गा सकती !

कवि : देवी जी, क्यों मेरा नुक़सान करनेपर तुली हुई हैं ? जैसे-तैसे तो एक गीत सेठजीको पसन्द आया है ! और कुछ नहीं तो मेरे लिए ही मंजूर कर लीजिए।

जुही : नो, नो, नो, जो चीज़ मुझे पसन्द नहीं वह मैं हरगिज़ पसन्द नहीं कर सकती। मैं यह गाना नहीं गाऊँगी।

कवि : लेकिन आपको थोड़े ही गाना होगा। गाना तो प्लेबैक सिंगर गायगी। आप सिर्फ़—

जुही : ओह ! यू नौन्सैन्स ! सेठ जी, मैं अपनी तौहीन बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर सकती ! आई कैन नौट स्टेण्ड इट ! आई एम गोइङ्ग—

सेठ : सुनो तो डार्लिंग, सुनो तो ! भई—मैं कहता हूँ, यह तुम कर क्या रहे हो। गीत लिखते हो, या मेरी फिल्म चौपट करनेपर तुले हो ? अब दो दिन मिस जुहीका मुँह टेढ़ा रहेगा।

कवि : इसमें मेरा कोई क़ुसूर नहीं—

सेठ : सरासर तुम्हारा क़ुसूर है, तुम्हींने तो—

कवि : जी नहीं, मैं चाहे कुछ कहता या न कहता, मिस जुहीको नाराज होना था सो वह हो गई।

सेठ : वजह !

कवि : मेरा अन्दाज़ है उनको कोई दूसरा आफ़र मिला है।

सेठ : यह बात है ? तो क्या तुम समझते हो मैं ऐसी छोकरियोंकी परवा करता हूँ ! एक मिस जुही जायेंगी, पचास आयेंगी—

कवि : लेकिन सेठ जी, मेरा गीत तो सोलो है। वी नीड ओनली वन, हमें तो सिर्फ़ एककी ज़रूरत है।

सेठ : अरे ! वह तो चुटकी बजाते मिल जायेगी।—हाँ, तो यह गीत एक दम फ़र्स्ट रेट। पास। अब वह डुएट। यानी डुएटकी बात आप एक दम भूल गये ?

कवि : जी नहीं, डुएट तो बल्कि मैंने इससे भी पहले लिखा था। वह तो मैं फ़िल्मके आर्डरसे ही गीत सुना रहा था। लीजिए, डुएट सुनिए। वह चीज़ लिखी है कि हिन्दुस्तानको सरपर उठा लेगी।

सेठ : सुनाओ ! अरे, हलो मि० नाथ। क्या शूटिंग खत्म हो गयी ?

नाथ : जी नहीं, खत्म क्या शुरू भी नहीं हुई। जिस पुलपर खड़े होकर मुझे खुदकुशीके लिए कूदना था, वह पुल ही टूट गया। अभी रिपेयर हो रहा है।

सेठ : कोई परवा नहीं, तब तक तुम यह डुएट सुनो ज़रा। प्रोडक्शन नं० २३ का है, जिसमें तुम्हें हीरो बनना है। हाँ भई, हो जाय।

कवि : अभी लीजिए—ये रहा युगल गान—

हिरोइन : **उड़ जा ओ मेरी कोयल ! तू दूर कहीं जा**
साजनकी खबर ला

हीरो : उड़ जा ओ मेरे भौंरे ! तू दूर कहीं जा
सजनीकी ख़बर ला ।

हिरोइन : बेदरदीसे जा कहना, क्या हमने बिगाड़ा है ।
दिल लेके जो हमारा, दो टूक यों फाड़ा है ।
कहना कि यह तो कह दो क्या है मेरी ख़ता
साजनको ख़बर ला

हीरो : प्यारीसे जा कहना, मजबूर हुए हैं हम
दिल चूर हुआ जबसे यों दूर हुए हैं हम
उम्मीदके सहारे कब तक जियें बता
सजनीको ख़बर ला

सेठ : वाह, वाह ! क्या कोयल उड़ाई है, क्या भौंरा छोड़ा है ! मान गये दोस्त, तुम सचमुच पोएट हो ।

कवि : थैन्क्यू ! थैन्क्यू !

नाथ : लेकिन सेठ जी । आइ एम सौरी, मेरा मतलब है, आइ बैग टु डिफर, यानी मैं इसको निहायत ल्हीचड़ और दो कौड़ीका गाना मानता हूँ ।

कवि : क्या तीन कौड़ीका भी नहीं ?

नाथ : यू मिस्टर पोएट ! मेरे मुँह मत लगना, समझे । तुम्हें मालूम है मैंने प्रोडक्शन नं० १८ मे विलेनकी कैसी दुर्गति की है ।

कवि : मैंने कहा श्रीमान्जी ! ज़रा होशकी दवा कीजिए । वह दुर्गति तो फोटोग्राफरने की है, आपका उसमें क्या कमाल है ?

सेठ : मैं कहता हूँ, तुम्हारी यह क्या आदत है कि असली बात छोड़कर साइड लाइन्समे उलझ जाते हो ? हाँ, मिस्टर नाथ ! क्या मैं आपका औबजैक्शन जान सकता हूँ ?

नाथ : देखिए सेठ जी, फ़िल्मोंके मामलेमें पब्लिकका टेस्ट बड़ी तेज़ीसे

रियलिज़्मकी ओर जा रहा है। और यह गीत रियलिज़्मके ख़िलाफ़ है।

कवि : किस तरह ?

नाथ : इस तरह, कि ख़बर लाने, ले आनेके लिए तार, चिट्ठी, टेलीफ़ोन, रेडियो जैसे तरीके मौजूद होनेपर बेचारी कोयल और भौरेको जोतना अगेन्स्ट औल इण्टेलैक्चुअल डीसेन्सी, यानी दिमाग़ी शराफ़तके ख़िलाफ़ है।

कवि : वही बात हुई न कि वही बात। अरे साहब, कुछ मौक़ेपर भी तो गौर फरमाया होता।

नाथ : यानी इस गीतका कोई मौक़ा भी है ?

कवि : नहीं तो बे-मौक़े गीत क्या कभी अच्छा लगता है ?

नाथ : तो वह मौक़ा भी सुना डालिए।

कवि : जी, वह मौक़ा यह है कि हिरोइन तो सुसरालमें है, और हीरो—

सेठ : और हीरो—

कवि : हीरो जेलमें।

नाथ : जेलमें। एब्सर्ड !! मैं जेलमें क्यों ?

कवि : अरे साहब ! सचमुचकी जेलमें नहीं, फिल्मी जेलमें।

नाथ : जी नहीं, जेल कैसी भी हो आख़िर जेल है और मुझे जेलसे सख्त नफ़रत है। इसीलिए मैंने अपना पोलिटिकल कैरियर छोड़ा। सेठ-जी ! यह गीत बदलवा दें।

सेठ : हद हो गयी मिस्टर नाथ। इस तरहसे तो मेरा सारा कारबार चौपट हो जायगा। हिरोइनको फिमैल सोलो पसन्द नहीं, आपको डुएट पसन्द नहीं, आख़िर फिल्ममें गीत होंगे भी या नहीं ?

नाथ : मैं तो सोचता हूँ बिना गीतोंके ही फिल्म बन सकती है।

सेठ : आपको हुआ क्या है ? भला बिना गीतोंके स्टोरी कहाँसे आयगी ? और बिना स्टोरीके फिल्म कैसे बनेगी ?

कवि : यही तो यह नहीं समझते। गीतोंपर ही तो सारा महल खड़ा होता है। यानी यों समझिए कि गीत एक तरहसे वे दरवाज़े हैं जिनमें होकर स्टोरी फिल्मके अन्दर आती है। इसीलिए तो गीतोंपर इतना ज़ोर है, और इसीलिए गीतोंकी इतनी तलाश है।

नाथ : तो आप करते रहिए तलाश। मेरे पास वक़्त नहीं, मैं चला।

सेठ : अरे! सुनिए तो मि० नाथ। मि०! लो, यह भी गये। लेकिन भई मि० नाथ एक बात पतेकी कह गये। पब्लिकका टेस्ट तो ज़रूर बदल रहा है। इधर कई पिक्चर फ्लौप हो चुकी हैं। मैं तो सोचता हूँ, तुम अपने गीतोंमें थोड़ा-सा रियलिज़्म लगा लो, तो अच्छा ही रहेगा।

कवि : लेकिन यह कैसे हो सकता है?

सेठ : क्यों नहीं हो सकता?

कवि : इसलिए कि रियल्टी और गीतका मेल ज़रा मुश्किल है। आप ही बताइए आपने रीयल लाइफ़में किसीको गाते देखा है? सो भी डुएट और कोरस?

सेठ : क्यों, तमाम लोग गाते हैं!

कवि : जैसे?

सेठ : जैसे, जैसे मेरा धोबी ही गाता है।

कवि : तो फिर कहिए तो फिलममें एक धोबियोंका गीत भी रख दूँ।

सेठ : लेकिन यह तो बहुत पहले एक फिल्ममें आ चुका है।

कवि : अच्छा, मान लीजिए म्यूजिक स्कूलमें गीतकी रिहर्सल दिखायी जाय।

सेठ : कई बार हो चुका है।

कवि : यूनिवर्सिटीके जलसेमें कोरस?

सेठ : पिट चुका है।

कवि : चैरिटी शोमें डान्स?

सेठ : यह भी हो चुका।

कवि : अच्छा, शादीमें औरतोंका गीत ?

सेठ : बहुत पुराना ख्याल है।

कवि : ऊँटोंका काफ़िला गाता हुआ जा रहा है ।

सेठ : लेकिन मैं कहानी हिन्दुस्तानकी चाहता हूँ।

कवि : मकान बनाते हुए मज़दूर गा रहे हैं ।

सेठ : बहुत बार गा चुके हैं ।

कवि : तो फिर आपही बताइए, मैं कहाँसे गीत लाऊँ ।

सेठ : कोई नई बात सोचो ।

कवि : नई बात तो मि० नाथ बता रहे थे, आपको जँची ही नहीं।

सेठ : क्या ?

कवि : यही कि बिना गीतोंके ही फिल्म बन सकती है ।

सेठ : वाह ! ऐसा कभी हुआ है आज तक ।

कवि : इसीलिए तो नई बात है ।

सेठ : बेकारकी बातें मत करो। तुम्हें मालूम है, मैंने मिस फातिमाको पाँच सालका कन्ट्रेक्ट दिया है, प्ले बैकका। फिल्ममें गीत न हुए तो उसका क्या होगा ?

कवि : सो तो, मेरा भी क्या होगा ?

सेठ : बिलकुल ठीक।

कवि : तो फिर ?

सेठ : तो फिर क्या, कोई नया, फड़कता हुआ रियलिस्टिक गीत लिखो।

कवि : यही तो उलझन है। आजकी लाइफ़में रियल्टी और गीत दोनों एक साथ नहीं मिलते ।

सेठ : ज़रा मिहनत करो, ज़रा तलाश करो। खोजनेसे सब मिलता है। ऐसा गीत भी मिलेगा ?

कवि : यानी अब गीत लिखनेकी बजाय गीतकी खोज करूँ ।

सेठ : हर्ज क्या है।

कवि : यानी गीतकी खोज—गीतकी खोज—वो मारा !

सेठ : क्या हुआ ?

कवि : गीत मिल गया सेठ ! जैसा गीत चाहते थे, बिलकुल वैसा ही—गीतका गीत और रोयल्टीकी रीयल्टी। लीजिए सुनिए—

जीवनकी राहमें गीत कहाँ है।
गीत कहाँ है।
आओ मन ! वहाँ चलें गीत जहाँ है।
गीत जहाँ है।

गीत नहीं है तो फिर जिन्दगी है सूनी।
दर्दकी अंधेरी यह रात हुई दूनी।
चुप न रहो, बात करो।
रातको प्रभात करो।
गीत भी मिलेगा वहीं प्रीत जहाँ है।
प्रीत जहाँ है।

गुलिवरकी तीसरी यात्रा

[एक समुद्री कहानी]

●

धर्मवीर भारती

जब भाई गुलिवरजी लिलीपुट और ब्राडबिगनैगकी यात्राएँ कर इंगलैंड वापस आये तो उनकी उम्र ढलने लगी थी। एक दिन शीशा देखते हुए उन्हें अपने सरमें एक सफ़ेद बाल दीख पड़ा। सफ़ेद बालको देखते ही उनमें आत्मज्ञान जागा और उन्होंने सोचा कि जो कुछ भी करना है वह जल्दी कर डाला जाय। बस झटसे उन्होंने एक शापगर्ल (सौदा बेचनेवाली लड़की) से शादी कर ली। एक छोटा-सा बँगलेनुमा मकान खरीद लिया। दो चार मुर्गियाँ और दो-चार बत्तकें पाल लीं। घरके सामने थोड़ा-सा टमाटर पालक धनियाँ वग़ैरह बो लिया जहाँ सुबह धूपमें आरामकुरसी डालकर वह

धूप खाते थे और पत्रिकाएँ पढ़ते थे जिनमें उनकी कविताएँ छपा करती थीं। एक प्रति तो उन्हें नियमित रूपसे मिलती थी और दो चार प्रतियाँ वे सम्पादककी निगाह बचाकर उठा लाते थे जिससे वे उधार चुकाया करते थे।

बहरहाल, चढ़ता हुआ बुढ़ापा, नई नई बीबी, जाड़ेकी हल्की सुनहली धूप और मुफ़्तकी पत्रिका——ऐसे-ऐसे संयोग जुड़े कि भाई गुलिवरजी एकाएक काव्यप्रेमी हो गये। अखबारकी दूकानपर जाकर वे पत्रिकाएँ उलटते-पलटते कविताएँ पढ़ते और रख देते। इस तरह मुफ़्त काव्य रस पानकर तृप्त होकर घर लौट आते।

एक दिन जब उनकी पत्नी बाग़के कोनेमें शलजम खोद रही थी, भाई गुलिवरजी चुपचाप बैठे अनन्तकी ओर देख रहे थे। एकाएक उनके हृदय-पटलपर अतीत स्मृतियाँ चमक उठीं——कैसा अजब था वह बौनोंका देश! और उससे भी भयावना था वह देवोंका महामानवोंका देश!! लेकिन उनसे एक भयानक भूल हो गयी थी। वह दोनों द्वीपोंमें गये किन्तु उन्होंने लिलीपुट और ब्राडबिगनैग कहींके भी कविके दर्शन नहीं किये थे। यह बात उनके मनमें रह-रहकर खटकने लगी। सहसा उनकी पुरानी यात्रा-प्रवृत्ति उबल पड़ी और उसी क्षण उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे यह यात्रा करके ही रहेंगे।

जब उन्होंने यह निर्णय पत्नीको बताया तो वह रोई और उसने खाना-पीना छोड़ दिया। लेकिन गुलिवर भाई घुमक्कड़ ठहरे। वे तो चल ही दिये। अन्तमें हारकर उनकी जवान पत्नीने आँसू पोंछे, आँखोंके नीचे बैंगनी पाउडर लगाया। परदेशी पतिकी यादमे काले वस्त्र धारण किये और पड़ोसीके साथ सिनेमा देखकर और पिकनिक जाकर किसी तरह विरहकी घड़ियाँ काटने लगी।

गुलिवर भाईने अपनी किश्ती मझधारमें छोड़ दी। पहले दिन तूफ़ान आया, दूसरे दिन नरभक्षी चिड़ियाने उनके जहाज़पर हमला कर दिया। तीसरे दिन उनके रास्तेमें बर्फ़का तैरता हुआ पहाड़ आ पड़ा, चौथे दिन ये

एक चट्टानसे टकराते-टकराते बचे, पाँचवें दिन ह्वेल मछलीने पूँछ मार दी, छठे दिन इन्हे हाई ब्लडप्रेशर हो गया और जब ये अपने जीवनकी सारी आशा छोड़ चुके थे तो सातवें दिन इन्हें किनारा नज़र आया। ये नन्हें-नन्हें हाथ भरके पेड़, दो या तीन बीतेकी ताल-तलैया, दस फीट ऊँचे उत्तुंग पर्वत-शिखर—वह लिलीपुटको खूब पहचानता था। लिलीपुटके बौने सभी इन्हें पहचानते थे। गुलिवरजीने उन्हें छोटी-छोटी आलपीनें बाँटनी शुरू कर दी जिन्हे वे खुशी-खुशी घर लाये।

अन्तमें गुलिवरजीने अपने मतलबकी बातपर आना ठीक समझा। एक बौनेको हथेलीपर उठाकर चेहरेके सामने कर लिया और उससे कविका पता पूछा। यह देखकर कि इस महामानव गुलिवरके मनमें भी काव्य-प्रेम उमड़ा है, बौना बड़ा खुश हुआ। उछलकर उनके कन्धेपर जा पहुँचा और नाचने लगा। अन्तमे इनके कर्णविवरमें मुँह डालकर उसने भाव-विभोर स्वरमें कहा–'तो तुम हमारे कविको देखने आये हो। कैसा स्वर्गोपम रूप है उसका। उसकी आँखें स्वप्नाच्छन्ना हैं। वह बिलकुल देवकुमार है, धूपमें कुम्हला जाता है। वह इन्द्रधनुष है, गुलाबका फूल है, कुम्हड़बतिया है।

'हाँ, हाँ वह रहता कहाँ है। मैं उसके दर्शन करूँगा।'

'दर्शन करोगे?' बौना घबड़ा गया। उलटकर गुलिवरकी जेबमें गिर पड़ा। गुलिवरने निकाला तो वह काँपते हुए बोला—'लेकिन वह बहुत सुकुमार है। लिलीपुटकी अनिन्द्य सुन्दरियाँ भी उसकी कोमलताके आगे लजा जाती हैं। वह तुम्हें देखकर भयसे प्राण त्याग देगा और हम कवि विहीन हो जायँगे।'

खैर, गुलिवरने बहुत समझाया-बुझाया, आश्वासन दिया तो बौना बोला—'बुझे हुए सितारोंकी घाटीमें एक आश्रम है। वहाँ एक महान् सन्त रहता है जो नलीसे पानी पीता है और जिसे झरोखेमेंसे खाना पहुँचाया जाता है। वह नक्षत्रोंसे बात करता है। खरगोश और चूहे उसके शिष्य हैं। उसी सन्तके आश्रममें हमारा कवि रहता है।

गुलिवर साहब वहाँ पहुँचे तो मालूम हुआ कि कविजी यहाँसे लिली-पुटके दूसरे नगरमें पहुँच गये। गुलिवर साहबने सन्तको प्रणाम किया और कविके नगरकी ओर चल दिये। नगर लिलीपुटके दूसरे छोरपर था क्योंकि गुलिवरजीको वहाँ पहुँचते-पहुँचते पूरे बाइस मिनट सात सेकेण्ड लग गये।

उस नगरके समीप पहुँचते-पहुँचते भाई गुलिवरजीको लगा कि वायु-मण्डलमें अनगिनत ध्वनि-तरंगें गुंजन करती हैं। बालूके टीलेके पास झाड़ियोंसे घिरा हुआ समुद्र तटपर कविका नीड़ था। वह नीड़ जिसे गुलिवर लेखक-घर कहेंगे बड़ा ही सुन्दर बना था और चक्करदार था। यानी वक़्त ज़रूरत उसे उत्तर-पच्छिम पूरब दक्खिन किसी ओर भी घुमाया जा सकता था। कविजी जिस तरफ़ हवाका रुख देखते थे अपने नीड़को उधर ही घुमा लेते थे।

गुलिवरको देखते ही कुछ बौने तो डरके मारे भागे, कुछ जो उसके पूर्व परिचित थे हाथ उठाकर दीखने लगे। कुछ झटसे उसके पाँवोंके सहारे चढ़कर उसके दामनसे झूलने लगे और उससे उसका कुशल-क्षेम पूछने लगे। उन्हे यह जानकर बड़ी ही निराशा हुई कि भाई गुलिवरजी अब बहादुर जहाज़ी न रहकर काव्य-प्रेमी हो गये है।

पूछनेपर मालूम हुआ कि कवि अभी प्रभुकी वन्दना कर रहा है। गुलिवरने प्रतीक्षा की और जब कवि प्रभु वन्दना समाप्त कर चुका तब दो बौने एक इमलीकी पत्तीपर थोड़ा-सा नमकीन समुद्रफेन ले आये। कवि इसीसे नाश्ता करता था क्योंकि भारी चीज उसे हजम नहीं हो पाती थी। पहले उसने धरतीसे उत्पन्न होनेवाला पार्थिव भौतिक जीवन-दर्शन आज़-माया और फिर स्वर्ग-नक्षत्रसे झरनेवाला आध्यात्मिक-जीवन-दर्शन लेकिन वह उतना सुकुमार था कि दोनोंको पचा नहीं पाया।

लेकिन कठिनाई यह थी कि वह कविसे बातें करे तो कैसे। जिस घरमें कवि रहता था उसमें तो गुलिवर बैठ भी नहीं सकता था, घुस भी नहीं

सकता था। अन्तमें गुलिवरने दोनों हाथोंसे थामकर उस घरको नींव सहित उखाड़ लिया और सामने एक पेड़पर उसे टिकाकर बैठ गया।

गुलिवरने देखा—कवि शान्तिसे बैठा नाश्ता कर रहा है। कवि सच-मुच बहुत सुन्दर था। जौके बराबर उसकी नन्हीं-नन्हीं आँखें स्वप्नाच्छन्न थी। उसका रत्ती भरका माथा था जिसपर स्वर्ण अलकें क्रीड़ा करती थीं। उसकी बोली, उसका बाल, उसका कोट-पैण्ट, जूता सभी अपने ढंगका अनोखा था।

कविने गुलिवरको देखा और मुसकराकर हाथ बड़े कलात्मक ढंगसे हिलाकर कहा—'आइए।' गुलिवरने श्रद्धासे हाथ जोड़े। कविकी शिष्टता और मधुरता देखकर उसकी आँखोंमे आँसू आ गये। रुँधे गलेसे बोला—'धन्य! आज मेरा जीवन सफल हो गया।'

'जीवन'! कवि बड़े निराश स्वरोंमे बोला—जैसे शामकी उन्मन घण्टियाँ बज रही हों। 'जीवन क्या है? हमलोग तो बौने हैं। हमारा जीवन क्या है? वायुसे भटकती हुई चेतना-तरंगोंका कोई रूप होता है? कोई नाम होता है? नाम और रूपसे बँधे हुए तत्त्वका नाम ही तो तरंग है। और यह क्रियाएँ ही जीवन हैं। जैसे यह बिजली है—उस समय लिलीपुटमें बिजली लग गयी थी—इनमें ज्योति दीखती नहीं, बटन दबाइये तो बिजली जगमगा उठती है।' 'बटन' फिर कहते हुए उसने गहरी साँस ली और अधमुदी पलकोंसे क्षितिजकी ओर देखने लगा। उसके पलकोंपर स्वप्नोंकी घाटियाँ उतर आई। उसका वक्ष श्वास-प्रश्वाससे परिलक्षित होने लगा।

धीरे-धीरे कविने आँखें खोलीं और बहुत धीमे स्वरमें बोला—'मैं बहुत थक गया हूँ।' वह गद्देदार सोफ़ेपर लेट गया और गुलिवरने बिजली पंखा खोल दिया। कविने करवट बदली और कहा—'बड़ी गरम हवा इस पंखेसे आती है।' गुलिवरने पूछा—'दरवाज़ा घुमाकर समुद्रकी ओर कर दूँ?' तो कविने हाथ उठाकर कहा—'नहीं-नहीं! मेरे लघु-लघु गातपर सागर-समीर आघात करती है।'

अब गुलिवरने कविके कमरेकी ओर निगाह डाली। लिलीपुटमें इससे सुन्दर कमरा कोई नहीं था। नीचे सुन्दर फ़र्श-तख्तपर मखमली गद्दे—सुन्दर कलात्मक तकिये। एक कोनेकी मेजपर दर्पण, शृंगार मंजूषा, स्नो, तेल, नेलपालिश, रूज् और भाँति-भाँतिके इत्र। दीवारपर एक उसी स्नो कम्पनीका कलात्मक कैलेण्डर, दूसरे कोनेमें एक कम उम्रकी लड़कीका चित्र।

'यह लड़की'—कवि लजा गया उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बाद गहरी साँस लेकर बोला—'प्रेम मनको तपाकर स्वर्ग बनाता है। प्रेम दिव्य है। पावन है। स्वर्गोपम।'

गुलिवरने कविकी बोली सुनी और अपनी इंग्लैण्ड प्रवासिनी पत्नीकी यादकर उसकी आँखमें आँसू आ गये।

कवि लेट रहा—'यह खिड़की बन्द कर दीजिए। चिड़ियाँ शोर करती हैं।' उसने कहा।

'तो आप जनतामें कैसे मिलते होंगे?' गुलिवरने पूछा।

'जनतामें बहुत घुलमिल नहीं पाता। एकान्त मुझे अच्छा लगता है। कभी-कभी महाराजकी वर्षगाँठपर गीत सुनाने अवश्य जाता हूँ। पर वह बात दूसरी है।' थोड़ी देर दोनों चुप रहे। फिर कविने पूछा—'गीत सुनिएगा?'

गुलिवरके मुँहमे पानी भर आया लेकिन बोला, 'आपको कष्ट होगा।'

कवि बहुत अतिथि-सत्कारी था। बोला—'नहीं, नहीं मुझे स्वयं नहीं गाना पड़ेगा। अलिरेसे काम चल जायगा।'

'अलिरे? अलिरे क्या है?' गुलिवरने पहली यात्रामें काफ़ी लिलीपुटीय भाषा सीख ली थी। पर यह शब्द उसके लिए बिलकुल नया था। 'अलिरे आप नहीं जानते?' कवि मुसकराया। उसने झुककर कोनेमें पड़ा हुआ एक कीड़ा उठाया और उसे टाँग दिया। वह झींगुर जैसा लगता था।

थोड़ी देर उसमेंसे वैसी ध्वनि आती रही जैसे जिन्दा झींगुर झनकारते थे। फिर एकाएक उसमेंसे अजब-अजब संगीत आने लगे।

गुलिवर चकित था। यह कैसा जादूका खेल है। यह मुर्दा झींगुर गाता कैसे है ? विस्मयसे उसके बोल नहीं फूट रहे थे।

'झींगुर ?' कवि हँसा—'यह झींगुर नहीं है श्री गुलिवरजी ! यह 'अलिरे' है।'

'अलि रे ? यानी भँवरा ?'

'नहीं, हाँ इसका कलात्मक अर्थ तो यही है। वैसे अलिरेके अर्थ हैं अखिल लिलीपुटीय रेडियो।—पहले यह एक वैज्ञानिक यन्त्र मात्र था। फिर इसका सांस्कृतिक चेतनासे समन्वय हो गया तो यह अलिरे हो गया।' उसके बाद फिर एकाएक कविकी आँखें स्वप्नाच्छन्न होने लगीं। वह क्षितिजकी ओर देखने लगा और बोला—'यह अलिरे क्या है ? केवल एक देह रूप मात्र। यह चेतना, भू-चेतना, लोक-चेतना किसीमें भी अपनेको व्यक्त कर सकती है। यह अलिरे, मैं, सभी तो उसीकी अभिव्यक्तिके माध्यम हैं। रूप धारण कर लेते हैं तो हम हैं आप है यह अलिरे हैं। अन्यथा सभी एक अव्यक्त चेतना है।' गुलिवरकी समझमे कुछ नहीं आया। लेकिन कविकी वाणीमे सबसे बड़ा सौन्दर्य यही था। उसकी शैली-में अत्यधिक माधुर्य था, चित्रात्मकता थी, बड़ा सौन्दर्य था। उसकी शैलीमें पालिश थी, सोनेका पानी चढ़ा था, भाषा जगमगाती थी लेकिन उसका तात्पर्य समझमें नहीं आ सकता था। गुलिवर इस भाषा शैलोसे मुग्ध तो था, लेकिन फिर भी बोला—

'लेकिन यह झींगुर सरीखो चीज़ तो बड़ी घिनौनी है। कुरूप है। कहाँ यह सौन्दर्य प्रदर्शिनी जैसा आपका कमरा ! आपकी नाज़ुक अभिरुचि और कहाँ यह गन्दा यन्त्र ? नाम अलिरे तो सुन्दर है लेकिन—

'लेकिन परन्तु व्यर्थ है।' कविने बात काटकर कहा—'प्रभुकी इच्छा

है। नियतिकी आज्ञा है। अन्यथा मुझे क्या लेना-देना है ! हाँ, इससे कुछ मित्रोंसे सम्पर्क बना रहता है।'

'कैसे ?' गुलिवरने पूछा।

'बात यह है कि दिनमें तीन बार सभी कलाकारोंके गीत, अपने नाटक, अपने उपदेश, अपनी डायरी, अपनी आत्मकथा, अपनी कहानी, अपने धोबीका हिसाब, अपनी आलोचना, अपना फ़ीचर, अपने उपन्यास विस्तारित होते है। इससे सुननेवालोंका सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होता है। अच्छा अब रूप-स्नानका समय आ गया सुनिए।'

'रूप स्नान'के विषयमें जिज्ञासा करनेपर ज्ञात हुआ कि दिनमें तीन बार कार्य-क्रम होना है। प्रातःकाल 'रूप स्नान', दोपहरको 'स्वप्नविश्राम' रातको 'हृदय स्पर्श।'

जिस प्रकार अलिरेने अपने यहाँके कवियोंको सम्मान दे रखा था उससे गुलिवर बहुत प्रभावित हुआ और उसकी तुलनामे अपने यहाँके बी० बी० सी० के कार्यक्रमोंको गालियाँ देता हुआ कविको श्रद्धासे नमनकर अपने जहाज़को लौट आया।

दूसरे दिन स्वयं कवि उनसे मिलने आया और गुलिवरके भावी कार्य-क्रमके बारेमे पूछता रहा। जब उसने बताया कि वह ब्राडबिगनेगके कविसे भी मिलने जायगा तो लिलीपुटके कविकी आँखें फैल गई और वह दहशतसे देखने लगा।

गुलिवरने कारण पूछा तो वह बोला—'ब्राडबिगनैगका कवि बड़ा क्रूर है। एकबार मैं उससे मिलने गया तो उसने मुझे अपने हृदयसे लगा लिया। मेरा पाँव उसके बटनमें फँस गया और मुझे मोच आ गई। मैं दो माह तक अस्वस्थ रहा।'

'लेकिन यह तो उसके स्नेहका प्रभाव है।'

'सो तो है।' कविने लट छिटकाकर भौं मटकाकर कहा—'लेकिन जब कोई पर्वताकार व्यक्ति मुझ जैसे छोटेसे बौनेको अपने हृदयसे लगाना चाहता

है तो उससे भी मुझे कष्ट हो जाता है। और वैसे भी वे मुझे तंग करते हैं, वे बड़े क्रूर है।'

अन्तमें कवि स्नेह अभिवादन कर चला गया।

एक दिन विश्राम कर दूसरे दिन गुलिवरने ब्राडबिगनेगके लिए जहाज़ खोला। लिलीपुटसे ब्राडबिगनेगका रास्ता काफ़ी सीधा था। छः रोज़में जहाज़ पहुँच गया। ब्राडबिगनेग लिलीपुटका सर्वथा उलटा, देवोंका द्वीप था। ऊँचे-ऊँचे साठ-सत्तर फिटके लोग हाथीकी तरह झूमते थे। सबसे पहले गुलिवरने जहाजोंको पहाड़ोंके पीछे छिपा दिया कि कहीं कोई देव उसे खिलौना समझकर उठा न ले जाय। वह इस पशोपेशमें था कि कविका पता किससे पूछे क्योंकि यहाँके निवासी उसे देखते ही खिलखिला उठते थे, उसे एक हाथसे दूसरे हाथमें उछालने लगते थे या आइसक्रीममें तैराने लगते थे।

ब्राडबिगनेगमें उस दिन बड़ा उत्सव मनाया जा रहा था। वह ब्राड-बिगनेगकी भाषा समझता था। बगलसे जाते एक देवने अखबारमें लपेटे खिलौने रखकर अख़बार नीचे फेंक दिया। गुलिबर चुपचाप खड़ा रहा इतना लम्बा-चौड़ा था वह अख़बार कि उसे उठाना तो दूर रहा जब गुलि-वर दस क़दम चल चुका तब वह शीर्षक तक पहुँचा और एक-एक अक्षर जोड़कर उसने पढ़ा कि आज ब्राडबिगनेगके महाराजके भतीजेका जन्म-दिवस है। 'बस-बस पता चल गया कवि यहीं होगा।' गुलिवर गिरता-पड़ता उसी ओर दौड़ा।

राजमहलमें निगाह बचाकर सिपाहियोंके पैरके नीचेसे होता हुआ किसी तरह अन्दर पहुँचा। अन्दर बड़ी धूमधाम थी। पहले शहनाई बजी, फिर उसके बाद द्वीप-भरके देश-भक्त जिन्हें परिमिट लेना था, हाथके कते-बुने कपड़े पहनकर आये और उन्होंने उसके चित्र लिये, डाकूमेण्टरी फिल्म-वालोंने उसकी फिल्में बनाई, ब्राडबिगनेग रेडियोने रिले किया। लेकिन कवि कहीं नहीं दिखाई पड़ा। गुलिवर कुछ निराश-सा हो गया।

इतनेमें उसे वह किसान दीख पड़ा जिसके यहाँ वह पहली यात्रामें रह चुका था। किसान बहुत बूढ़ा हो गया था। उसकी कमर झुक गयी थी। वह हाँफ-हाँफकर चलता था। गुलिवर एक छलाँग मारकर उसकी जेबमें जा पहुँचा। किसान गुलिवरको देखकर बहुत ख़ुश हुआ। गुलिवरने उससे पूछा—तो उसने कहा—'ब्राडबिगनेगका कवि? तो तुम तो बहुत उल्टी दिशामें चले आये। वह तो वहाँ रहता है द्वीपके उस छोरमें जहाँ ग़रीब गोताख़ोर लोग रहते हैं।'

'वहाँ?'

'हाँ, वहीं एक छोटेसे अस्तबलमें रहता है। परसों मेरे पास आया था। मेरे बीमार बच्चेको कम्बख़्त उठाकर चला गया। तुम उसके पास जाकर क्या करोगे?'

'दर्शन करूँगा!'

'दर्शन करोगे?' गुलिवरको हाथसे दबाये हुए वह बुड्ढा राजमहलमें आया और बाहर आकर ठठाकर हँसा—'तुम उसके दर्शन करोगे? तुम्हारे जैसे कीड़े-मकोड़ेको तो वह चुटकीमें मसल देता है।'

लेकिन गुलिवर अपनी ज़िद्दपर अड़ा रहा। अन्तमें बूढ़ेसे बिदा होकर बह गोताख़ोरोंकी बस्तीकी ओर चल पड़ा। वह ब्राडबिगनेगके उन गोता-ख़ोरोंकी बस्ती थी जो नर-भक्षी मछलियोंसे लड़कर मूँगा और मोती बटो-रते थे। और शामको आकर राजाके सिपाही उनसे मूँगा और मोती छीन लेते थे। ब्राडबिगनेगका सारा वैभव उन्हींके कारण था पर ये चीथड़ोंमें लिपटे रहते थे। ब्राडबिगनेगके कविने राजमहल छोड़कर अपने लिए यही मुहल्ला चुना था।

वह एक छोटा-सा अस्तबल था और उसमें कवि तनकर खड़ा भी नहीं हो सकता था। कवि एक विशाल हिमशिखरकी भाँति था और चलता था तो लगता था पर्वत डोल रहा हो। लगता था वह एक हाथ उठाये तो आसमानसे चाँद और सूरज तोड़ लाये और क़दम उठाये तो

तीन क़दमोंमें वसुधाको नापकर फेंक दे—उसकी सरलता, स्नेह और ममता !

गुलिवरने जाते ही उसके पैरपर सर रख दिया। पहले तो उसने समझा कि कोई कीड़ा मकोड़ा उसके पाँवोंपर चढ़ आया है, और दो दफ़े पाँव पटक दिया। गुलिवर दस फ़ीट दूर जा गिरा। लेकिन फिर धूल झाड़कर उठ खड़ा हुआ और कविके पैरोंपर गिर पड़ा। इस बार कविने नीचे देखा और गरज उठा—'कीड़े तेरी यह हिम्मत ?' और उसने गुलिवरको पकड़कर लटका लिया। थोड़ी देर तक उसे हवामें झुलाता रहा और फिर बोला—'पटक दूँ ? तेरी हड्डी-पसली बिखर जाय ?' गुलिवरकी घिग्घी बँध गयी। कविने उसे एक खूँटीपर टाँग दिया—'कहाँसे आया है ?'

'इंगलिस्तानसे।'

'इंगलिस्तानसे ?'

'वहाँके सम्राट्ने मेरे नाम वारण्ट निकलवाया है। मैं सब जानता हूँ इंगलिस्तानका सम्राट्, मेरे सम्राट् दुनिया-भरका सम्राट् मेरा राज़ जानना चाहते हैं लेकिन मैं यूँ चुटकीसे उन्हे मसल दूँगा।'

गुलिवर कुछ नहीं बोला—उसके प्राण कण्ठ तक आ गये थे। इस हत्यारे काव्य-प्रेमने उसे कहाँ ला पटका ? थोड़ी देरमें कविने उसे उतारकर ज़मीनमें रख दिया। 'तुम भी मेरा राज़ जानना चाहते हो ?' भाग जाओ, अभी भागो वरना'—और इसके पहले कि कवि अपने विचारोंको कार्यान्वित करे गुलिवर जान छोड़कर भागा। चलते-चलते रात हो गयी और वह सड़कके किनारे एक बेंचके नीचे खिन्न मन होकर लेट रहा। उसके घुटने और कोहनियोंमें खरोच आ गयी। वह सोचने लगा कितना सभ्य और शीलवान् था लिलीपुटका कवि।

रात हो गयी थी। गुलिवर जाड़ेके मारे ठिठुर रहा था। करवटें बदलता हुआ अपने भाग्यको कोस रहा था कि इतनेमें उसे लगा कि धरती

काँप उठी हो। किसीने अपनी विराट् उँगलियोंसे फाँसकर उसे ऊपर उठा लिया। गुलिवरने प्राणकी आशा छोड़ दी। उसने देखा। कवि था।

'डरो मत।' कविने कहा—'तुम इतनी दूरसे आये और बिना कुछ खाये-पिये चले आये। अपमान करते हो मेरा। चलो!' और गुलिवरको अपनी हथेलीपर आरामसे बिठाकर वापस ले आया। किसी तरह वह झुक-कर अस्तबलमें पहुँचा और सिकुड़कर बैठ गया। कुछ घास सुलगाकर उसने बगलमे एक चायकी केटली चढ़ा रक्खी थी, उसमे-से चाय सिझाने लगा।

गुलिवरने अपने चारों ओर निगाह डाली। बहुत ही गन्दा अस्तबल था। कहते हैं पहले उसमे राजाके घोड़े रहा करते थे। उनके लिए अब एक नये अमरीकन स्टाइलका अस्तबल बन गया है। यह बहुत दिनोसे खाली पड़ा था और कविको जब कहीं ठिकाना नहीं मिला तो वह इसमें रहने लगा। इस गन्दे अस्तबलमे कवि तनकर तो खड़ा हो ही नहीं सकता था उसके पाँव भी कैसे फैल पाते होंगे यह गुलिवरकी समझमे नहीं आता था। लेकिन इसी अस्तबलका कवि ऐसे गीत लिखता था जिसके स्वर-स्वरमें लपटें धधकती हों और ऐसे गीत लिखता था जिसके बोल-बोलमें अमृत छलक पड़ता हो। कविकी कल्पना कैसे पंख पसारकर उड़ जाती थी, यह आश्चर्यकी बात थी। और इससे भी आश्चर्यकी बात तो यह थी कि गोताखोरोंके इस दरिद्र मोहल्ले और अस्तबलकी इस गन्दगीसे कवि कहाँसे यह रस खींच लेता है? गुलिवरको लिलीपुटके राजकविका वह कक्ष याद आया जहाँ रेशमी परदे लहराते थे—धूपछाँहकी आँखमिचौनी होती थी। कहाँ वह सौन्दर्य-कक्ष कहाँ यह गन्दा अस्तबल? फिर गुलिवरको याद आया कि ऐसे ही गन्दे अस्तबलमें ईसामसीह भी पैदा हुए थे।

इतनेमें कविने कहा—'पीते क्यों नहीं चाय?' गुलिवरने देखा उसके सामने एक गिलासमें चाय रक्खी हुई थी और वह गिलास बालटीसे भी बड़ा था। गुलिवरके प्राण सूख गये। 'लेकिन इतना?' उसने उसे डरते पूछा। 'थोड़ा-थोड़ा करके पी लो।' कविने बहुत स्नेहसे कहा। गुलिवरजी

पशोपेशमे पड़ गये। 'तुम्हें पीनेमें दिक़्क़त होगी। लाओ मैं पिला दूँ।' और कविने जलती हुई चाय चुल्लूमे ली और उसे पिलाने लगा। गुलिवर चीख़ा—'हाथ जल जायगा।' कवि हँसा और बोला—'यह हाथ जलनेका आदी हो गया है। इससे भी ज़्यादा जलती हुई चीज़ मै इन हथेलियोंपर रोप चुका हूँ।'

गुलिवर चाय चखते ही घबरा गया। कड़वी चाय! एक दाना शक्कर-का नहीं। कविने उसका मुँह देखते ही कहा—'शक्कर उसमें नहीं है। पिछले साल भरसे ऐसी ही चाय पीनेकी आदत पड़ गयी है मेरी। तुम अगर कलतक रुको तो दो-एक गीत बेचकर शक्कर ख़रीद लाऊँगा।'

आतिथ्य-सत्कारके बाद कविके मुखपर एक अजब-सा आत्म-सन्तोष झलक आया। उसने गुलिवरसे कहा कुछ नहीं, पर बैठा-बैठा अपना एक गीत गुनगुनाता रहा। थोड़ी देर बाद उसने गुलिवरसे पूछा—'सोओगे अब लेकिन बिस्तरा मेरे पास नहीं है। ख़ैर तुम्हारे लिए तो इन्तज़ाम हो सकता है। उसने अपना कुर्ता उतारकर बिछा दिया। इतना बड़ा था वह कुर्ता कि बिछाने और ओढ़नेका पूरा इन्तज़ाम हो गया। कवि नंगे बदन ही लेट रहा। गुलिवरने कुछ बातें करनी चाहीं तो उसने डाँटकर कहा—'सो जाओ अब। कल बातें होंगी।'

गुलिवरने करवट बदली। कवि भी वहीं लेट गया। हालाँकि उस पर्वताकार कविके बगलमें चूहे जैसा गुलिवर मन-ही-मन काँप रहा कि कवि-ने करवट ली और गुलिवरजीकी हड्डी-पसलीका पता न चलेगा।

थोड़ी देर बादमे पतिंगोंके बराबर बड़े-बड़े ख़ूँखार मच्छरोंने हमला किया। गुलिवर तो कुर्तेमें लिपट गया लेकिन कविके नंगे बदनपर मच्छर टूट पड़े। उनकी ख़ून चूसनेकी आवाज़ इतनी भयानक थी कि गुलिवर चौंककर जाग गया। गुलिवरके उठनेकी आहटसे कवि भी जाग गया। उसने बदनपर हाथ फेरा। जहाँ मच्छरोंने काटा था वह मांस फोड़ोंकी तरह फूल आया था। उसने गुलिवरसे कहा—'मैं बाहर सो रहूँगा। ऐसे तेरी

नींदमें बाधा पड़ेगी।' गुलिवरको बड़ी आत्मग्लानि हुई। कहाँ इन परिस्थितियोंमें आकर वह कविके सिरपर भार बन गया। उसने बहुत विनय की और कविसे कहा—'वह रात जागते-जागते काटी जाय।' अन्तमे दोनों उठकर बैठ गये।

गुलिवर उसे लिलीपुटके कविके बारेमें बताने लगा। ब्राडबिगनेगका कवि सहसा उल्लाससे भर गया—'कैसे है लिलीपुटका कवि अब ? तुम जानते हो वह बहुत प्रतिभाशाली है। ससारमे एक ही कवि है जिसे मैं प्यार करता हूँ वह है लिलीपुटका कवि।'

'हाँ, वह भी आपका ज़िक्र करता था।'

'क्या कह रहा था ?' कविने बड़ी व्यग्रतासे पूछा—जानते हो जिस वक़्त सभी लोग ब्राडबिगनेग और लिलीपुट भाषाका विरोध कर रहे थे। उस समय मैंने उसका और उसने मेरा साथ दिया था। लेकिन अब वह राजपथपर है, स्वर्ण पथपर है; मैं जन-पथपर हूँ, मूल पथपर हूँ, लेकिन वह मुझे प्यार करता है....।'

'लेकिन वह तो आपके बारेमें—'

'चुप रहो। तुम उसकी बातें नहीं समझ सकते।' कविने डाटकर कहा। पर थोड़ी देर बाद वह गम्भीर हो गया और संजीदा आवाज़में बोला—'अब वह मुझसे नाराज़ है। मैं जानता हूँ वह मुझसे नाराज़ है। कभी-कभी विशाल और विराट् होना भी पाप है। बहुतसे लोग जिन्हें तुम प्यार करना चाहते हो, जिन्हें तुम अपने समीप लाना चाहते हो, वे तुम्हारी विराटता समझ नहीं पाते। तुमसे चिढ़ जाते हैं। और अपनी सीमित संकीर्णताकी रक्षा करनेमें तुम्हारी विराटताको तो अस्वीकार करते ही हैं, तुम्हारे स्नेहको भी अस्वीकार करने लगते हैं।' और फिर वह बहुत उदास हो गया। गुलिवरकी समझमें कुछ न आया पर वह कुछ बोला नहीं। कवि कहता गया—'और सच बात है जबतक तुम्हारे साथी विराट् न हों, तुम्हारा वातावरण विराट् न हो, तुम्हारा स्नेह विराट् न हो,

तबतक विराट्‌की कल्पना ही कठिन है। तुम्हें ग्रहण करनेवाली समाज-व्यवस्था ऐसी है कि जिसने इसको समर्पण किया वह लिलीपुटका बौना हो जाता है। अपमानव बनकर रह जाता है। और जिसने भी उसका निषेध किया उसके विरुद्ध विद्रोह किया वह विद्रोहमें अकेला पड़ जाता है। उसे अतिमानव बनना पड़ता है। एक स्वस्थ सन्तुलन हो ही नहीं पाता क्योंकि समाज-व्यवस्थामें सन्तुलन है ही नहीं।' कवि सहसा उठकर टहलने लगा यद्यपि अस्तबलकी छत नीची थी और उसे झुककर चलना पड़ता था। गुलिवरकी ओर देखकर बोला—'कितना छोटा कमरा है! लगता है; इसे मैं ओढ़े हुए हूँ। लेकिन टहलनेकी मेरी आदत है। अच्छी आदत नहीं। जानता हूँ यह ग्रामीणता है, अशिष्टता है। मैं जानता हूँ मैंने विद्रोह न किया होता, समर्पण कर देता तो मुझमें एक पालिश आ जाती। लेकिन ऐसा आदमी आत्म-कायर और निर्वीर्य हो जाता है। वह मन-ही-मन सबसे डरने लगता है। दूसरी ओर जो विद्रोह करता है उसकी आत्मा निर्भीक हो जाती है। वह तूफ़ानोंको सीनेपर झेल सकता है। पहाड़ोंको उखाड़ फेंकता है, ज्वालाओंको पी जाता है। लेकिन उसे अकेले चलना पड़ता है बिलकुल अकेले। धीरे-धीरे अकेलापन उसकी रग-रगमें बस जाता है। वह अपनेसे अपनी भाषामें बातें करना सीख लेता है। सामाजिक जीवनसे उसका सम्बन्ध टूट जाता है, जैसे मैं। सहज सरल मानवीय जगत्‌से मेरा सम्बन्ध टूट-सा गया है। उससे क्या मुझे कम कष्ट है? और इससे भी बढ़कर कष्ट मुझे तब होता है जब मैं देखता हूँ कि लिलीपुटके कविकी अनोखी प्रतिभा कितनी ग़लत दिशामें मुड़ गई। हिरण्यमय पात्रके नीचे ढँका हुआ उसकी आत्माका सत्य कितनी वेदनासे छटपटा रहा है। वह वाणीका अलबेला पुत्र था। मेरी आत्मा एकान्तमें रोती है।' फिर कविकी भृकुटियाँ तन गईं और वह बाहरके अन्धकारमें देखने लगा। 'लेकिन कोई बात नहीं है। मैं भविष्यमें देख रहा हूँ वह दिन आ रहा है जब यह विषमता, यह सन्तुलन समाप्त होगा। जब आदमीकी आत्मा कुण्ठित न होगी सहज सरल मानवीय

स्तरपर उसका विकास होगा। यह दिन मैं नहीं देख पाऊँगा। लेकिन मुझे सन्तोष है कि मेरी हड्डियाँ उस आनेवाली दुनियाकी नींव बनेंगी। मेरी हड्डियाँ।' सहसा किसी अदृश्यकी ओर हाथ फैलाकर अट्टहास किया।—'दधीचि अपनी हड्डियाँ देकर मर गया। वह देवासुर संग्रामका परिणाम देखनेके लिए जीवित नहीं बचा। लेकिन उसीकी अस्थियोंके वज्रने ही इन्द्रको विजय दिलवाई। काफ़ी है। मेरे लिए इतना काफ़ी है।' और कवि घुटनोंमें सिर झुकाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद भरे गलेसे चौंककर बोला—'तुमने आँखें देखी है ?'

'कैसी आँखें ?'

'जिन आँखोंसे मैंने पहली बार उस भविष्यका सपना देखा था। देखोगे ?' और उसने अपने गन्दे तकिएके नीचेसे एक मुडा-मुड़ाया चित्र निकाला। यह एक तरुणीका चित्र था। कितनी करुण थी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें। गुलिवरको याद आया लिलीपुटके कविकी प्रेमिका उससे कुछ छोटी ही थी। 'यह आपकी प्रेमिकाका चित्र है ?'

'प्रेमिकाका ?' कविने रुँधे गलेसे जवाब दिया। 'यह मेरी बेटीका चित्र है। यह बिना दवा और पथ्यके मर गई थी।' कविने अपनी मैली धोतीके छोरसे बूढ़ी पलकोंमें छलक आनेवाला आँसू पोंछ लिया और सूनी-सूनी निगाहोंसे बाहर अन्धकारमें जाने क्या देखने लगा।

थोड़ी देर बाद सहसा वह चौंका। 'सुन रहे हो, यह शोर सुना तुमने ?'

गुलिवरने चौंककर उसकी ओर देखा—'उठो भागो, जल्दी जाओ। तुम्हारी दुनियामे एक भयानक संघर्ष शुरू हो गया है। उनका नारा है कि वे असन्तुलन मिटाकर छोड़ेंगे। धरती ख़ूनकी क़ै कर रही है और नदियाँ और समुन्दरमें आग उड़ेल रही हैं। जाओ जल्दी करो। आग तुम्हारे नगरतक पहुँच गयी है।'

गुलिवर चौंककर उठ खड़ा हुआ। इतनी दृढ़ता थी उसकी वाणीमें

कि जैसे सचमुच अन्धकारमें कुछ देख रहा है। भागा-भागा समुद्र तटपर आया। जहाज़ खोला।

थोड़ी देर बाद ब्राडबिगनेगका कवि बहुत-से फलफूल लेकर आया और रास्तेके लिए उसके जहाज़पर रखकर बोला—'जाओ उनसे कहना कि इस बार ऐसी दुनिया क़ायम करें कि उसमे न किसीको अपमानव बनना पड़े और न अतिमानव। जहाँ सभी इस प्रेत-योनिसे छुटकारा पा सकें। और रास्तेमें लिलीपुटके कविसे मेरा स्नेह-अभिवादन कहना और बताना कि अब नई दुनिया क़ायम होगी जहाँ उसकी प्रतिभा और आत्मापर ढँका हुआ हिरण्य-पात्र भी उठ जायगा! उसकी मुक्तिका दिन भी आ गया है।'

गुलिवर चल पड़ा। इस बार उसने जब ब्राडबिगनेगके कविको प्रणाम किया तब उसे ज्ञात हुआ कि श्रद्धा किसे कहते हैं।

उसे जल्दी थी। वह लिलीपुट न रुककर सीधे घर आया। यहाँ पहुँच कर उसने देखा कि कुछ रक्तपात हुआ ज़रूर था, पर अब शान्ति है, उप-द्रवी नज़रबन्द हैं। सम्राट्के अधिकार सीमित हो गये हैं। अपने देशमें अपना राज है। सामानपर पड़ोसियोंने कब्ज़ा कर लिया है और मकान राशनिंग अफ़सरने किसी दूसरेके नाम एलाट कर दिया है।

इससे भाई गुलिवरजीके भावुक हृदयको इतना आघात पहुँचा कि वे एकाएक प्रकाशक हो गये और टेक्स्ट बुक छापने लगे।

इस तरह बहादुर जहाज़ी गुलिवरकी तीसरी यात्रा समाप्त हुई।

चिमिरखोने कहा था*

•

शारदाप्रसाद श्रीवास्तव 'भुशुंडि'

प्राइमरी मदर्सोंके मुदर्रिसोंकी ज़बानके कोड़ोंसे जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे विश्वविद्यालयके प्रोफ़ेसरों, लड़कों तथा लड़कियोंकी बोलीका मरहम लगावें। जब छोटे-छोटे स्कूलोंमें पढ़नेवाले छात्र, आपसमें गाली-गलौज़ करते, या एक दूसरेके साथ साला बहनोईका रिश्ता जोड़ते हुए नज़र आते हैं, तब यहाँके शिक्षित स्त्री-लिंग तथा पुल्लिगवर्ग 'आइए बहनजी, कहिए कुँमारीजी, सुनिए भाईजी इत्यादि' मधुवेष्टित शब्द बोलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। क्या मजाल जो

---

*'उसने कहा था' नामक प्रख्यात कथाकी पॅरोडी।

बिना 'आप और जी' के एक भी लफ़्ज़ मुँहसे निकल जाय। उनका शुद्ध शिष्टाचार ऐसा सरस, सरल आडम्बरहीन होता है, जैसे छिलका उतारा हुआ केला। उसपर 'प्लीज़ और थैंक यू' तो सुन्दरता बढ़ानेमें बिजलीकी लाइटका काम करते हैं।

ऐसे विमल वातावरणमें पले हुए दो सजीव चलचित्र 'एक सखी दूसरा सखा' दैववशात् साइकिलसे टकराकर हजरतगंजके चौराहेपर गिर पड़े। एकने सारी सम्हालते हुए कहा—'प्लीज़ इक्सक्यूज़ मी' और दूसरा पैंटकी क्रीज़ ठीक करते हुए बोला—'आइ एम सारी'। फिर एक क्षणभर दोनों चुप रहे। लेकिन अन्तमें एकने पूछा :

'आप कहाँ पढ़ती है ?'

'आई० टी० कालेजमें ? और आप ?'

'यूनिवर्सिटीमें। आप यहाँ कहाँ रहती है ?'

'सिविल लाइनमें, अंकिलके साथ।'

'मैं भी मुकारिमनगरमें मामाके यहाँ रहता हूँ। इस बार हिन्दीमें एम० ए० करनेका विचार है।'

लड़कीने साइकिलके हैंडिलको मोड़ते हुए कहा—'मुझको भी हिन्दीसे अधिक प्रेम है। मैंने भी बी० ए० में हिन्दी ही ले रक्खी है।'

कुछ दूर चलकर लड़केने पूछा—'आप कविता भी करती हैं ?'

'आपसे मतलब ?' कहकर लड़की आगे निकल गई और लड़का मुँह ताकता रह गया।

इसके पश्चात् कभी छठे-छमासे वे सिनेमा हाउस या अमीनाबादमें घूमते हुए मिल जाते। लड़का मनोरंजनके लिए छेड़ देता 'आप कविता भी करती हैं ?' और उत्तरमें वह कहती 'आपसे मतलब ?'

एक दिन जब लड़केने वैसे ही हँसीमें चिढ़ानेके लिए उससे छेड़खानी की तब लड़की, लड़केकी भावनाके विरुद्ध बोली—'हाँ, करती तो हूँ, देखते नहीं। इस मासकी 'माधुरी' में मेरी एक कविता प्रकाशित हुई है।'

लड़की चली गई। लड़का भी अपने घरकी ओर रवाना हुआ। रास्ते-मे वह अनेक कवियोंकी कविताओंको उलट-फेरकर नवीन रचना तैयार करनेमें निमग्न हो गया। यहाँतक कि वह अपने घरसे दस-बीस क़दम आगे बढ़ गया और उसे कुछ भी न ज्ञात हुआ। सहसा जब वह एक अन्धेसे टकराया तब उसको होश हुआ कि वह घरसे आगे निकल आया है।

× × ×

'राम-राम ! यह भी कोई कवि सम्मेलन है। एक पहर बीत गया मिठाई और नमकीनकी तो कौन कहे, किसीने एक बूँद पानी तककी ख़बर न ली। भूखके मारे आँख निकली आती है, पेट घुमा जाता है। हमने गवाहियाँ भी दी है। मगर ऐसी लापरवाही कही नहीं देखी। बेईमान न जाने किस इन्तज़ाममे फँसे है कि इधर आनेका नाम तक नहीं लेते। इन्होंने तो कान्यकुब्जोंकी बारातके भी कान काट लिये।'

कवि खंजन बोले 'आपलोग इतना घबराते क्यों है ? अभी तो दो ही तीन घण्टे बीते है। जहाँ इतना सहा, वहाँ थोड़ा और सही। घण्टे आध घण्टेमे भोजन आने ही वाला है। फिर तो पौ बारह है। नमकीन खाना और ख़ुशीके गीत गाना। मैंने सुना है, कुँमारी निबौरीजी स्वय दाना पानी अपने साथ ला रही है। बेचारी बड़ी शरीफ़ है। कहती है कवि हमारे देशकी नाक है। राष्ट्रके उत्थान पतनका भार इनकी पीठपर इतना अधिक लदा हुआ है कि बेचारे खच्चरसे भी गये बीते है।'

'चार दिन बीत गये। पलक नही मारी। कवि-सम्मेलनोंमें जागते ही बीता है और अब भी दावा है कि ऐसे कवि-सम्मेलनोंको तो मै चुटकी बजाते अकेले ही चला सकता हूँ। यदि चलाकर न दिखा दूँ तो मुझको इसके मण्डपकी ड्योढ़ी नसीब न हो। गुरू ! आज्ञा भरकी देर है। एक-बार ऐसे ही एक कवि-सम्मेलनमें कविता पाठ करने बैठा तो हद कर दी। मित्र, कुछ न पूछो, मैं टससे मस न हुआ और आँखें बन्द किये हुए लगा-

तार कविता सुनाता रहा। किन्तु जब मैंने लोचन उन्मीलित किये तब देखा केवल टुटुरूँ टूँ सभापति जी बैठे ऊँघ रहे थे।'

'इसके माने आप झोला-झण्डा लिये हुए कवि-सम्मेलनोंको टोहमें हमेशा चक्कर लगाया करते है?' मुसकराते हुए बगुलेशजीने पूछा।

'ऐसी बात नहीं। जैसे बिना फेरे पान सड़ जाता है, अश्व अड़ियल हो जाता है, वैसे ही बिना सम्मेलनोंमें आये-गये कवि भी अड़ियल हो जाता है, इसलिए कभी-कभी मैं ऐसा कर लेता हूँ, अन्यथा कीचड़में कौन पैर डाले।'

बगुलेशजी बोले—'सच है।' खंजनजीने कहा—'पर क्या करें? नस-नसमें भूख समा गई है। ओंठ अलग सूख रहे है। कुँमारीजी अभीतक अपनी पल-टन लेकर नहीं पलटीं। इस समय यदि भिगोया हुआ चना ही मिल जाता तो गनीमत थी। जानमे-जान आ जाती, हाथ-पैर बोलने लगते।' मजीराजी, जो ज़रा ज़्यादा मसखरे थे, 'कवेण्डर' जलाते हुए बोले—'देखो, मैंने सम्मेलन-की कपालक्रिया कर दी, अब आप लोगोंको मुसीबतका सामना नहीं करना पड़ेगा।' सब लोग हँस पड़े और वे चारो खाना चित्त चारपाईपर लेट गये।

खंजनजी ज़बानसे ओठोंको चाटते हुए बोले—'अपने-अपने सम्मेलनोंकी चाल है। इमरतीजीको लाख समझाया गया कि कवि लोग ग़म नहीं खाते, मगर वे बार-बार खानेके लिए इसरार करती थीं, मार्ग व्यय कम देती हुई कहती जाती थीं कि आप लोग चोटीके बाल हैं। यदि आप लोगोंकी सेवा समुचित रूपसे न की जायगी तो भाषा भामिनीका सौन्दर्य नष्ट हो जायगा और आप लोग हम लोगोंको सरस रचनाएँ न सुनायेंगे।'

एक घण्टा बीत गया। कमरेमें सन्नाटा छाया हुआ है। हाँ, कभी-कभी ओझाजीकी सरौती नीरवताको भंग कर देती है। बगुलेशजी क्षुधाके मारे तड़प रहे है, कहते हैं,'यदि पेशगी ले लिये होता, तो सीधे घरकी राह लेता, फिर मुड़कर भी पण्डालकी ओर न देखता। अब तो चण्डूलकी भाँति आ फँसा हूँ और मज़बूर हूँ अपने संकोची स्वभावपर।'

कवियित्रियाँ बेचारी पेंड की हुई फाइलोंकी भाँति लाचार थीं, किन्तु उनके बिगड़े दिल पतिदेव अवश्य पैंजामेके बाहर हो रहे थे।

इस समय लकड़बग्घाजी चीखे, 'भूख लगी है।'

'भूख लगी है।'

'हाँ, बड़ी ज़ोरकी लगी है।'

'अच्छा याद आयी। मेरे झोलेमें घरके बने हुए कुछ लड्डू रक्खे हैं, तब तक आप उन्हें खाकर पानी पियें, फिर देखा जायगा।'

'सच कहते हो ?'

'और नहीं क्या झूठ ?' यह कहकर खंजनजी लड्डू निकालकर देने ही वाले थे कि कमरेके अन्दर वायुके साथ मिष्ठान्नकी महक आयी और घ्राण इन्द्रिय द्वारा कवियोंके उदरमें समा गई। बेचारोंने एकटक अँखियाँ खोल दीं। मानो मरीज़को पेन्सलीनका इन्जेक्शन लगा। एक महाशयने झुककर, मजीराजीकी ओर तश्तरी बढ़ाते हुए कहा—'श्रीमान्‌जी नमकीन····जैसे उन्होंने जम्हाते हुए उसको लेनेके लिए अपना हाथ बढ़ाया, वैसे ही उनका हाथ तश्तरीमें न पड़कर देनेवालेकी ठुड्डीमे जा पड़ा। उसकी तीक्ष्ण खूटियोंका, उनकी कोमल अँगुलियोंमें चुभना था कि वे 'बर्र-बर्र' कहकर बर्रा उठे। उनके इस ऐक्टिंगसे कमरेके अन्दर काफ़ी कहकहा मच गया और कवियोंके मलिन मुख धानकी खिली हुई खीलोंके समान खिल उठे। इसके बाद सब लोग भूखे बंगालीकी भाँति खानेमें जुट गये। किन्तु जब उनका मुखारविन्द गंगोत्री और यमुनोत्री बन गया तब उन्हें ज्ञात हुआ कि तरकारीमें लाल मिर्च अधिक थे।

भोजन समाप्त होनेके बाद कविगण बे-परकी उड़ा रहे थे। कमरा स्टेशनका मुसाफ़िरखाना हो रहा था। इतनेमें आवाज़ आई :

'बगुलेशजी !'

'कौन ? बमचकजी। आइए महाराज।' कह बगुलेशजीने उनका स्वागत किया और वे छाया-पुरुषकी भाँति अन्दर धँसते हुए बोले :

'अब पण्डाल चलनेकी कृपा करें ! स्थानीय कवि उपस्थित हो गये हैं। देर करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप लोग अपना पेशवाज शीघ्र बदल लें।'

खंजनजी पल्ले नम्बरके घुटे थे। आँख मारते ही भाँप गये कि ये महाशय यहाँपर हम लोगोंको बनानेके लिए आये हैं। अतएव मुँहका भाव छिपाते हुए बोले—'आप तो बड़ी जल्दी चोला झाड़कर आ गये, मगर वह आनन्द यहाँ कहाँ, जो रायबरेलीके कवि सम्मेलनमे था, जिसके संयोजक स्वयं तूफानमेल थे। कितनी सुन्दर रचनाएँ थीं, हुदहुदकी। वाह-वाह, आपने भी उन्हें ख़ूब समझाया था, कि सूरदासकी चौपाइयोंमें टियर गैसका असर है, केशवकी कुण्डलियाँ ऐटमबमका काम करती है, बिहारी वीर रसके रसिक थे। आपकी घनाक्षरीको सुनकर तो जाग्रत श्रोताओंने भी उबाना शुरू कर दिया था।'

बमचकजी बिदुराते हुए बोले 'हे-हें, यह सब आपका प्रोत्साहन है। भला मैं तुच्छ जीव किस योग्य हूँ। वास्तवमे तो कविता वही है, जिसको सुनकर भैंस भी पागुर करना छोड़ दे। यों तो सोहर और दादरा देहातकी दीदीयाँ भी गढ़ लेती हैं, मगर जब छटंकीके ऊपर पव्वा बैठाना पड़ता है तब चोटीका पसीना एड़ी तक आ जाता है। टकसाली चीजोंका लिखना और ही बात है।'

मजीराजीने सुरतीको ओंठके नीचे दबाते हुए कहा—'बात तो सवा सोलह आने ठीक है। इस समय खंजनजी, पैदली मात खा गये।'

खंजनजी सिर खुजलाते हुए बोले—'मात राम राम ! गुरुजी, यह आप क्या बक गये ? एक गीतकार सैकड़ों घनाक्षरी लिखनेवालोंके बराबर होता है। सम्प्रति हिन्दी-साहित्यकी प्रखर धारामें, ऐसे गीतोंका लिखना, जिनमें संचारी भावके साथ-ही-साथ निराला,प्रसादका समागम हो, एक टेढ़ी खीर है। कूपमण्डूक बनना दूसरी वस्तु है, किन्तु जब समयके साथ चलना पड़ता है तब आटे-दालका भाव मालूम होने लगता है। आजकल गीत न

लिखनेवाले कवियोंका जीवन ट्यूबरहित फाउण्टेनपेनकी तरह माना जाता है।'

बीच ही मे बगुलेशजी, नाक-भौं सिकोड़ते हुए बोले—'व्यर्थ बकवाद ही करते रहोगे या चलनेकी भी तैयारी करोगे ?'

कवि सम्मेलन बगुलेशजीके सभापतित्वमें प्रारम्भ हुआ। मञ्च ग्रामोफ़ोन कविगण रिकार्ड थे। सभापतिजी दादकी चाभी देकर चला रहे थे। किन्तु जनताके हूटिंगके कारण स्थानीय कवियोंकी दाल न गल पाती थी। वे फटे दूधकी भाँति जमनेमे असमर्थ थे। कवि सम्मेलन क्या था, कवियोंकी कसौटी। ऐसे-वैसे कवि तो कविता पाठ करनेका साहस ही न करते थे। रंग जमता हुआ न देखकर सभापतिजीने कुछ बाहरी कवियोंको बुलाना शुरू किया, लेकिन लाख हाथ-पैर मारनेपर भी वे असफल रहे, कारण वही दाल और रोटी।

पिपीलिकाजीके द्वारा सम्हाला हुआ सम्मेलन मुँहके बल गिरने ही वाला था कि लकड़बग्घाजीका नाम पुकारा गया। वे दहलते हुए दिलके साथ मंचपर पधारे और बिना शीर्षक बतलाये हुए ताबड़-तोड़ रचनाएँ सुनाने लगे। उनका स्वर टेढ़े पहियेके समान लहरा रहा था। उनके बैठनेका पोज़ देखकर स्कूली लड़कोंने छीटें कसना आरम्भ कर दिया। और वे बेचारे लगे बगलें झाँकने। उनको उखड़ता हुआ देखकर खजनजीने अपनी मधुवर्षिणी वाणी द्वारा जनताके समक्ष लकड़बग्घाजीकी महत्तापर प्रकाश डाला तथा शान्तिपूर्वक कविता पाठ सुननेके लिए सत्याग्रह किया। इस समय उनका व्याख्यान श्रोताओंकी बदहज़मीको दूर करनेके लिए सोडावाटरका काम कर गया। अब उनको, उनकी रचनाओंमें कच्चे आमका स्वाद मिल रहा था। खंजनजीकी दाद पाकर लकड़बग्घा ख़ूब जमे। सारा पण्डाल वाह-वाहकी ध्वनिसे गूँज उठा। किसीने रजतपदक, किसीने स्वर्णपदक देनेकी घोषणा की। यहाँ तक कि एक उत्साही साहित्यप्रेमीने श्वेतपत्र-पदक प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली। क्षणभरके लिए सारा पंडाल ढपोरशंख बन गया। 'सहस्रं

ददामि लक्षं ददामि'की गूँज तो मामूली बात थी। खंजनजी उनकी सफलता-पर फूले नहीं समाते थे। उनका रोम-रोम जनताकी गुण-ग्राहकताकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा था। उन्होंने गर्वसे माँगा :

'मजीराजी, एक कुल्हड़ा चाय, लकड़बग्घाजी जम गये।'

इसके बाद खंजनजीकी बारी आई। वे एक होकर अनेक श्रोताओंके नेत्रमे और अनेक श्रोतागण एक होकर उनकी आँखमे थे, जैसे फिल्म फोकस और चलचित्र। फरमाइशोंकी बौछारें होने लगीं। उन्होंने गीत पढ़ना प्रारम्भ किया। अटलांटिक ओशन प्रशान्त महासागरमे परिणत हो गया। जनता मुग्ध हो गई, किन्तु उसकी काव्य-पिपासा शैशवकी बाढ़की भाँति बढ़ रही थी। अधिक कविता पाठ करनेसे खंजनजी पूर्णतया थक गये थे। उनके गले-में बर्स्ट हो गया था। वह चलता न था। अतएव जैसे ही वह मंचको छोड़-कर जानेवाले थे, वैसे ही बगलमें बैठे हुए दो मुस्टण्डोंने उनको बिठालते हुए कहा—'आपने माँगे थे १०१ रु० उन्हें हमने बड़े परिश्रमके साथ दीन क्लर्कोंके मासूम बच्चोंका पेट काटकर भेजे है और अब उनको पेटभर कविता सुनाकर ही आपको जाने देंगे।'

यह सुनकर उनके चेहरेका रंग फक हो गया, मुँहपर हवाइयाँ उड़ने लगीं, बेचारे कर क्या सकते थे, पेशगी ले ही चुके थे। नाहींकी कोई गुंजाइश न थी। बाँसों उछलता हुआ दिल गरियार बैलकी भाँति बैठ गया था।

इलेक्ट्रिक बल्ब अपनी रजत रश्मियोंके द्वारा उनके मुखकी मलिनता-को ढक रहे थे।

उन्होंने फिर कविता सुनाना शुरू किया, किन्तु इस बार उनके स्वरमें वह सरसता न थी, जिसको सुनकर जनता भेड़ बन गई थी। खमीरा भुर्रा हो गया था। खंजनजीको, इस समय अपनी कविताकी एक-एक पंक्ति सहाराकी मरुभूमि प्रतीत हो रही थी और वे विवश थे किरायेके ऊँटकी भाँति।

श्रोताओंमें खिचड़ी पकने लगी। सम्मेलन उखड़ने लगा। कार्य-कर्ताओं-की प्रार्थनाका मूल्य नष्ट हो चुका था। उकताया हुआ सम्पूर्ण श्रोता समाज भर्र मारकर उठ बैठा और धन्यवादकी लादी लादे बिना ही, 'वियोगमें संयोगका पुट देनेके लिए' चल पड़ा। हाँ, कुछ मनचले युवकोंने अवश्य सभापतिजीकी टिमटिमाती हुई रचनाएँ सुनीं और दाद दी। सम्मेलन करीब दो बजे रातको समाप्त हुआ।

पण्डाल हड़ताली स्कूलकी भाँति सूना हो गया था। परन्तु जहाँ-तहाँ वे कवि, झोला लिये हुए टहलते नज़र आते थे जिनको मार्ग-व्यय मनी-आर्डर द्वारा नहीं भेजा गया था।

स्टेशनमें भीड़ अधिक थी। टिकटका लाना नास्तिकको आस्तिक बनाना था। फिर भी खंजनजी हिम्मत करके आगे बढ़े और कठिन तपस्याके बाद खिड़की तक पहुँचे ही थे कि एक यात्रीने उनको बड़ी ज़ोर-का धक्का दिया, जिसके कारण बेचारे जहाँसे चले थे वहींपर फिर पहुँच गये। (वह उनकी महत्तासे अनभिज्ञ था।) टिकट तो मिला नहीं, मगर भीतरी चोट अधिक मिली। कर्त्तव्यके नाते उन्होंने उस समय उसका कुछ ख्याल न किया और पुनः साहस समेटकर भीड़के अन्दर घुसे। इस बार ईश्वरने उनकी सुन ली।

ट्रेन मुसाफ़िरोंसे खचाखच भरी थी। कहींपर तिल रखनेको जगह न थी। हरएक डिब्बेमें फौजियोंसे मोर्चा लेना पड़ रहा था। अन्तमें उन्होंने लकड़बग्घाजीको सर्वेंट कम्पार्टमेंटमें ही बैठाकर सन्तोषकी साँस ली। गार्डने सीटी दी। गाड़ी चल दी। खंजनजीने नमस्ते करते हुए कहा—'चिमिरखी-जीसे 'जयहिन्द' कहिएगा और कहिएगा कि मुझसे जो कुछ कहा था वह मैंने पूरा कर दिया।'

उधर ट्रेन बढ़ रही थी और इधर खंजनजीकी पीड़ा।

खंजनजी स्टेशनसे लौटकर डेरेमें आये और चारपाईके ऊपर ढेर हो

गये। अब उनमें उठने तककी शक्ति न थी। रह-रहकर चोटकी पीड़ा सालीकी भाँति चुटकी काट रही थी। उन्होंने पुकारा :

'मजीराजी, सिगरेट पिलाइए।'

आधी रात बीत जानेके बाद नींद हल्की आती है। दिन भरकी चिन्ताएँ, मानव जिनमें अधिक लिप्त रहता है, एक-एक करके उसके सामने स्वप्नके रूपमें परिणत होती जाती हैं और वह उन्हींमें वास्तविक सुख-दुखका अनुभव करने लगता है।

खंजनजी यूनिवर्सिटीमें पढ़ रहे है। मुकारिमनगरमें रहते हैं। हजरत-गंज अमीनाबादमें उनको आई० टी० कालेजकी छात्रा मिल जाती है। जब वे पूछते है कि आप कविता भी करती हैं तब 'आपसे मतलब', कहकर वह चली जाती है। एक दिन जब उन्होंने वैसे ही पूछा तब उसने जवाब दिया 'हाँ करती तो हूँ। देखते नहीं इस मासकी 'माधुरी'मे मेरी एक कविता प्रकाशित हुई है।'

सुनते ही खंजनजीको द्वेष हुआ। क्यों हुआ ? राम जाने।

छः वर्ष बीत गये। खजनजी अब विश्वविद्यालयमें हिन्दी लेकचर्र हैं। अच्छी कविता करने लगे हैं। दरवाज़ेपर नाक रगड़नेवालोंकी कमी नहीं रहती। कारण, वे दिग्गज कवियोंमे हैं। अब उन्हें उस छात्राका ध्यान न रहा। समयकी बलिहारी है उनके पास तारके ज़रिए मनीआर्डर पहुँचा और थोड़े समयके पश्चात् लकड़बग्घाजीका पत्र। मैं भी सम्मेलन चल रहा हूँ। जाते समय हमारे घर होते जाइएगा, साथ ही चलेंगे।

लकड़बग्घाजीका मकान रास्तेमें पड़ता था। खंजनजी वहाँपर उतर पड़े। जब चलने लगे, तब उन्होंने कहा—'श्रीमतीजी आपको पहचानती हैं, बुला रही हैं, जाइए मिल आइए।'

खंजनजी भीतर गये। सोचते थे, श्रीमतीजी मुझको जानती है, कब-से ? कवि-सम्मेलनोंमें तो कभी साथ गई नहीं ? आँगनमे जाकर 'जयहिन्द' किया और नमस्ते सुनी। खंजनजी चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं !'

'क्या आप कविता भी करती है ? आपसे मतलब ?'

'देखते नहीं, इस मासकी 'माधुरी'मे मेरी एक कविता प्रकाशित हुई है ।'

भावोंकी टकराहटसे स्मरण हो आया । करवट बदली । पसलीका दर्द बढ़ा ।

'मजीराजी, सिगरेट पिलाइए ।'

स्वप्न चल रहा है । चिमिरखीजी कह रही हैं, मैंने आपको आते ही पहचान लिया । एक काम कहती हूँ । मेरे तो भाग फूट गये, पति 'एम० ए० बी० एफ'★ मिले । फिर भी भारतीय आदर्शके नाते वे मेरे सब कुछ हैं । ईश्वरने धन दिया है, ज़मीन दी है । मगर हम अबलाओंको पुलिस जैसा अधिकार क्यों न दिया, जिससे हम कवि-सम्मेलनोंमें हूटिंग करने-वालोंको बिना वारण्ट जेलमें ठूँस देतीं । मेरे चिरपरिचित आपको याद है ? एक बार आपने हज़रतगंजके चौराहेपर मुझको गिरनेसे बचाया था । आज वैसे ही श्रीपतिजीकी लाज, आपको बचानी है । बेचारे सम्मेलनोंमें हूटिंगसे उखड़ जाते हैं । मेरी यही भिक्षा है । आपके आगे ऐनक उतारती हूँ ।' इतना कहकर वे आँखोंमें 'प्रसादके आँसू' लिये हुए रसोईघरमें चली गई और खंजनजी लोचनोंमें 'झरना' लिये हुए बाहर चले आये ।

'मजीराजी, सिगरेट पिलाइए ।' चिमिरखीने कहा था ।'

खंजनजी चारपाईपर करवटें बदल रहे है । पास ही मजीराजी बैठे हैं । जब माँगते हैं, सिगरेट पिला देते हैं, कुछ देर खंजनजी चुप रहे । बादमें बोले—'इस बार जो कविताका संकलन प्रेसमे जा रहा है, उसमें-से

★ एम० ए० बी० एफ०—मैट्रिक अपीयर्ड बट फेल्ड ।

एक प्रति, मैं अवश्य आपको भेंट करूँगा। भइया, मुझको घर तक और पहुँचा देना।'

पुस्तकका नाम सुनकर, मजीराजीकी लार टप-टप टपकने लगी।

दूसरे दिन समाचार-पत्रोंमे लोगोंने पढ़ा :

बेलीगारद् विराट् सम्मेलनमें गला बर्स्ट हो जानेसे, असफल हुए, प्रथम श्रेणीके महाकवि खंजन।

ग्रीष्म वर्णन

•

मदन वात्स्यायन

मङ्गलाचरण—अष्टयामके कीर्तनोंपर छाई हुई, व्याह-शादी-जनेऊ आदि यज्ञोंमें समाई हुई, 'श्रीगणेशाय नमः' की जगह 'श्री अमुकदेव्यै नमः' के सम्मानके लिए उकताई हुई, मीरा जिनकी धूल नहीं छू पातीं और विद्यापति मीलों पीछे हैं, जिनका नाम लेने मात्रसे दीनसे-दीन जनमानस तर [हो] जाता है, जिनके चित्रोंके दर्शनसे शयनालयमें सुबह और भोजनालयमें शाम होती है; टूथ-पेस्टसे लेकर जूते तक सारे वैभवोंसे वैभव जिनके कृपा-कटाक्षोंपर ही कायम हैं, जिस ऋतुमें वसन्त उजड़ जाता है, कामदेव उखड़ जाता है, और 'स्वकीया', 'परकीया', और 'गणिका' बिसर जाती हैं, उस ग्रीष्मके प्रतापका भी अतिक्रमण कर जो देवी सूफ़ियोंके माशूक-सी

सर्वत्र छहरा रही हैं, 'तारिका' नाम्नी उन मन-नेत्री अभिनेत्रीका मैं अभिनन्दन करता हूँ।

अनावश्यक भाषण—न ही मैं योरप आदि ठण्डे देशोंकी सुकुमारी 'मे' का ज़िक्र कर रहा हूँ, न ही शिमला, दार्जिलिंग और उटीके स्त्रैण 'समर' का। न ही चैताकी रुझान मेरा सहारा है, न ही मैं 'आषाढस्य प्रथम-दिवसे' की सीमा लाँघना चाहता हूँ। दिशाओंके ताप, और हवाकी भाप, के उस स्मर-वर्द्धक संयोगका संयोग भी मेरा संयोग नहीं जिसको लक्ष्यकर, एक ओर समुद्रके पड़ोसी कलकत्तेमें रवीन्द्रनाथ वसन्तका आवाहन करते हुए गाते है 'एशो हे वइशाख !' और दूसरी ओर विलायतके बाइरनका मत है कि—

What gods call love, and men adultery,
Is more common when the weather's sultery.

मैं यह defensive रोना राग भी गाने नहीं जा रहा हूँ कि यदि ग्रीष्मकी कुरूपता न हो तो वसन्तकी याद कौन करे, मैत्री जैसी चरम-मधुर वस्तुकी उपमा लोग यों क्यों दें कि 'मैत्रीकी शीतल छाया,' ! और यह भी मेरा प्लैन नहीं कि एप्स्टाइन और पिकैसो गोत्रीय आधुनिक कलाकारोंकी करामातोंकी तरह, प्राणहर गर्मी और प्राणधर-सूर्य-रश्मि गर्म मुल्कोंमें सभ्यताका प्रथम विकास और विभिन्न देशोंके सूर्य-वंशोंके ज्वलंत इतिहास, may day और बुद्ध-जयन्ती, दीपक राग और फुटबाल सीजन, पर शब्दोंका एक एक्स्ट्रैक्ट और ग्रोटेस्क अनगढ़ लोंदा खड़ा कर दूँ और जब दूसरे दूसनें लगें तो एक फतवा दे डालूँ कि 'Let there be Poetry' (तुलनीय Epstein; Let there be Sculpture) और in any case, मैं आपको भाषणका वह विशुद्ध रूप तो दिखलाने ही नहीं जा रहा हूँ जिसमें दो घण्टों तक सिर्फ़ यही कहा जाय कि मैं अब आपका और वक़्त नहीं लूँगा, लीजिए, यह चुप हुआ, यह हुआ, यह हुआ, और हुआ ! हुआ ! हुआ !

ग्रीष्म वर्णन—जेठके मध्याह्नका सूर्य तप रहा है। अमराइयोंमें आम,

बगीचोंमें लीचियाँ, बनोंमे जामुन, घरोंमें लोग-बाग़—जो जहाँ हैं वहीं तन्दूरकी रोटीकी तरह पक रहा है। सड़कें सुनसान हैं, बगीचे बियावान हैं, बस्तीको आक्रान्तकर सरदार ग्रीष्मने मार्शल ला लगा रखा है। तलवार की धारकी तरह सड़कें लम्बी, उजली और चलनेके लिए कठिन हैं। धूलसे तपे पेड़-पौधे अधवैसकी खिचड़ी दाढ़ी-मूँछसे लगते हैं। लँगोटीकी तरह नदी क्षीण अपर्याप्त है, अस्त-व्यस्त सिरके केशोंमे पसीनेकी गर्म धारा-सी सूखे झरबेरीके बीच उचाट मनसे सँसर रही है। कारखानेकी चिमनीसे निकलकर तप्त धूल-धुआँ सफ़ेद खुली पगड़ी-सा आसमानमें उड़ रहा है। जिसकी पूँछमे बच्चोंने छोटा डण्डा बाँध दिया हो उस कुत्तेकी तरह कभी हवा सड़ककी धूलपर चक्कर काटती है, भेड़ेकी तरह कभी पेड़ोंसे रह-रह कर टक्कर लेती है, होली पियक्कड़ोंकी तरह कभी घरों और बरामदोंपर कूड़ा और मिट्टी डालती है—लगता है, बारह बज गये और ग्रीष्मका होश-हवास दुरुस्त न रहा।

पानी वाली नदियां तो अलग,
उनकी नकलमें बेपानी वाली पगडंडियां भी बिला गई हैं।
जो बेमोल छितराई रहती थीं
वे छायाएँ भी छिप-सिमट गई हैं।
पत्ते झड़नेसे पेड़ मरसे गये हैं,
विडोइग्रामें धूलके खम्भें उनके भूत जैसे इधर-उधर हाहाकार करते दौड़ते हैं।

—उफ, क्या कैपिटलिस्ट शिद्दतकी गर्मी है इस सरकारी शहरमें !

सूर्य ढलने भी लगा पर बढ़ती उम्रमे वासनाकी तरह, त्रास कम न हुआ। दिशाएँ सोशलिज़्मके मांससे रहित दफ़्तर शाही कन्ट्रोलके कंकाल-सी धूसर श्वेत चमक रही है; निकलना तो दूर, बाहर आँख नहीं दी जाती। इन्डाइरेक्ट टैक्स जैसी प्यासी हवा 'हू-हू' करती प्रकृतिके वीरान खण्डहरोंमें चक्कर काट रही है। दिशाएँ ऊपरसे जितनी चमक रही हैं, अन्दरसे उतनी

ही सन्तप्त है, मानो वे साधारण औकातके वह इंडिपेण्डेण्ट एम० एल० ए० हों जो किसी तरह खर्चीले चुनावके पार लगकर अब प्रेस रिपोर्टरोंके सामने दिशा—(विशेष)—विहीन हँस रहे है ।

'अकरम मरे न छुतहर फूटे,'....के एजेंटकी तरह गर्मीका दिन टारे नहीं टरता, भाषणकी तरह खत्म ही नहीं होता, चन्दा माँगनेवालोंकी तरह हटता ही नहीं, अपनी बहादुरी बयान करनेवालोंकी तरह पिण्ड ही नहीं छोड़ता ! हनुमानकी पूँछकी तरह दिशाओंको खाक करके छोड़ेगा, विरह-निशा-सा काटे न कटेगा, आलोचना-सा काट खायेगा ।

महीनेकी पहली तारीखको दूधवाले, अखबारवाले, कपड़ेवाले, राशनकी दूकानवाले, बिजलीवाले, यहवाले, वहवालेकी तरह गर्मीमें बेला ढलते आँधी आती है । बिलके काग़ज़ों जैसे कूड़ा और सूखे पत्तोंको घरोंमे छोड़ती दिनकी गर्मी उसी तरह मिटा जाती है जैसे बिल वाले तलबके पैसोंकी गर्मी-को । मगर, धूल, कूड़ा और सूखे पत्तोंसे भरी होकर भी गर्मीकी रंगीन शाम उतनी ही प्रिय लगती है जितनी तलबके बाक़ी पैसोंसे खरीदी गई नई साड़ीमें नये बिल लिये श्रीमतीजी । मृगकी कस्तूरीकी तरह अपने तलबकी बात ही सुनी जाती है, कुछ अपने हाथ नहीं लगता ।

आँधीके भीषण उत्थान और पन्द्रह-बीस मिनटोंके अन्दर ही सर्वथा शमनपर मेरे मित्रकी 'गरम-नरम' चिट्ठीका क़िस्सा याद आता है । मेरे मित्रके मकानका एक किरायेदार न मकान छोड़ता था न नियमसे किराया देता था । मामला आख़िरी तौरसे तै करनेके लिए उन्होंने उसे एक 'गरम-नरम' चिट्ठी लिखी । 'गरम' इसलिए कि वह ऐसा न समझ ले कि वे कुछ कर ही नहीं सकते । और 'नरम' इसलिए कि कहीं बिगड़ कर वह किराया देना एकदम ही बन्द न कर दे । चिठ्ठी यों थी—

ओरे ओ श्शाला !

श्शाला, तुम्हारा पाशमें चार महीनाका रुपिआ बाकी हाय । हाम फाइनलमें बोलता हाय, श्शाला, तुम पूरा रुपिआ चार दिनका अन्दरमे आके

जामा कोरो। जोदी तुम श्शाला आभी तुरत रुपिआ नाहीं देगा—तो हाम, हाम, हाम, क्या कोरेगा, भूखा मोरेगा, कूछ तो शोचिए !

—श्रीचरणेषु।

बिजली-फ़ैन औ बर्फ़का पानी, खसकी टट्टी और एयरकण्डिशनिंग, हिल स्टेशन और समुद्र-तट के ज़िक्र मुझे नहीं करने। निर्गुणकी लगनकी तरह ग्रीष्मका लोपकर ग्रीष्मका वर्णन असंगत है। यह नहीं कि मैं मायावादी, छायावादी या आयावादी * हूँ और मुझे man-made pleasure से वितृष्णा है। प्रिय बोलनेवाली स्त्रीके कण्ठ-स्वर-सी मधुर कोयलकी कूक नहीं होती, और आदमीकी सिद्धियाँ प्रकृतिके सबसे नायाब फूल हैं।

जिय बिनु देह, सभा बिनु मुरुखा।
तैसेहि मित्र, प्रकृति बिनु पुरुखा॥

मगर प्रकृतिको तलाक़ दे कर made-to-order आनन्दमें unadulterated martialism भले हो, sense of adventure नहीं होता, और यह न हो तो अगतिशीलता आती है, प्रगतिशीलता नहीं—समाजमें, साहित्यमें।

ग्रीष्मके लुत्फ़ोंका वर्णन करनेमें सबसे बड़ी दिक़्क़त यह है कि ऐसी चीज़ें बहुत कम हैं जो ग्रीष्मकी सिर्फ़ अपनी हों। कोयल वसन्तमें आती है, जूही जाड़ेमें जाती है। ढूँढ़नेपर तीन चीज़ें मिलीं पर मुश्किल दूर न हुई।

यदि मैं releaf के, उत्तप्त दिनके बाद शाम, बन्द हवामें कछमछाहट के बाद बयार, पसीना-स्नानके बाद नदी स्नान, तवे घरसे तर पार्क, सूखे कण्ठमें तरबूजेकी तरल मिठासके विशेष आनन्दके लिए उपमा अँग्रेज़ोंसे आज़ादी, बीबी-बच्चोंसे आज़ादी, छन्द और लयसे आज़ादी, '**आगे नाथ न पीछे पगहा**' की आज़ादी आदिसे लेना चाहूँ तो अति-वादी होनेके कारण वह सबको समान रुचिकर न भी होगी ! अति सर्वत्र वर्जयेत्।

*** प्रकृति रूपी आयाके हाथ अपनेको निश्चेष्ट छोड़नेवाला।**

खुली हुई चाँदनीका ज़िक्र करता हुआ अगर मैं उसे प्रौढ़ा स्वकीया कहूँ, तो अपनी 'पतनी कवि जी की, याद कर मेरे कुछ कवि पाठक यों विवर्ण हो उठें कि जैसे आइसक्रीम खाते वक्त दाँतों तले 'कच्' से कोई कीड़ा पड़ गया हो।'

और कहीं यदि मैं ग्रीष्मकी परम खास-ता और चरम आनन्दपर यह कविता कहूँ, कि

'लौट चुके थे धोबी धोबिन लाल अभी तक पर चन्दा था,
कर पूरा निज काम ख़ुशीसे शान्ति सहित चर रहा गधा था
भेद शान्ति सन्ध्याकी सहसा थिरक-थिरक खट-खट घनघोर,
हेंकों-हेंकों छेड़ उठा वह शीश उठा अनन्तकी ओर
गोरजका अन्तिम रजकण था अभी तलक नभमें छाया
देख चांदनी पा सन्नाटा हृदय गानसे भर आया
ताक अवज्ञासे जगपर मस्तीसे गदहा रेंक उठा
पर अभाग्यवश धोबी ग़ुस्सेसे दो मुँगड़े सेंक उठा
फिर गाऊँगा पेट भरा है
कर डाला मैदान सफाया
कितना है यह चन्दा सुन्दर
जैसे मेरा ही मुंह पाया
हेंकों-हेंकों-हेंकों !
रेंकों, रेंकों, रेंकों' *

तो कुछ पुरातनवादी समालोचक कविता देवीकी आसन्न मृत्युकी सम्भावनापर एक बार और उसी तरह व्याकुल हो उठे जिस तरह महीनोंसे बीमार बूढ़ी माँके एक और (सन्निपात) delirium पर भक्त बेटा होता है।

कामदेवकी तीरन्दाज़ीसे बची हुई यह ऋतु व्याह-शादीकी परम ऋतु

---

* मृत किशोर कवि मदन, माघ, १९४४।

है, शायद इसलिए कि हमारा सनातन आदर्श है कि विवाह सिर्फ़ वंशवृद्धि-के लिए होता है—बिना सेक्सके !

डाक्टर कृष्ण शुक्ल अपना बनाया गुलाबजल बोतलोंसे जब सब लोगों-पर ढार चुके तो हमारी मजलिस स्थानीय कलाकारोंके संगीतकी ओर मुख़ातिब हुई। 'गुलाबजल' मे गुलाबकी बूका तो मुझे पता न चला पर बोतलें रेफ्रिजरेटरसे निकाली गई थीं सो गर्दनसे जाँघोंतक उन सब जगहों-पर तरावट मालूम हुई जहाँ-जहाँ कपड़े भीगकर देहसे चिपक गये, और हम-लोगोंने 'यंग इण्डियन टेकनीशियन' का हौसला बढ़ानेके लिए उस स्थानीय गुलाब जलकी यथाशक्ति दाद दी।

मजलिसमें तीन खास व्यक्ति थे—एल० सी० (लिटरेट कौन्स्टेबिल) से बढ़ते-बढ़ते साहब बने एस० पी० (सुपरिण्टेंडेण्ट) साहब, स्थानीय प्रगतिशील पार्टीके नेताजी, और उस शामके मुख्य गायक कारखानेके एक मशीन-औपरेटर। 'सोशलिस्ट पैटर्न औफ़ सोसाइटी' मे सरकारी अफ़सरों और प्रगतिशील नेताओंको 'कल्चर' मे 'इण्टरेस्ट' लेना अपेक्षित है, इस-लिए सरकार और अपनी पार्टीकी हिदायतोंके मुताबिक़ एस० पी० साहब और नेताजी भी हमारी मजलिसके सदस्य थे।

गायकजी मजलिसके बीचमे एक बड़े तूँबे वाले बाजेको अपने ताक़तवर आलिंगनसे आक्रान्तकर तूँबेपर सवारी कसे हुए बैठे थे। मैंने बाजेका नाम पूछा तो एक मित्रने क्या बताया वह मैं बातचीत और हँसी मज़ाकके हल्लेमें साफ़ न सुन सका—शायद उन्होंने 'तानघोड़ा' कहा। हम सब लोग बागेश्वरी, मालकोस आदि प्रचलित रागोंके लिए सिफ़ारिशोंका हल्ला पेश कर रहे थे; मगर एस० पी० साहबका 'जवन कल्यान' के लिए दबाव था। सामन्त-वाद-विरोधी नेताजी 'दरबारी कानड़ा' माँग रहे थे कि इतनेमे गायकजीने चारों ओर वीर-मुद्रामें दृष्टिपात करते हुए, ओठोंको आक्रमणशील भर्त्सनासे मरोड़कर कहा—'देश !'

'देश' नाम सुनते ही मजलिसकी सारी हँसी परदेश भाग गई। चारों

ओर निस्तब्ध सन्नाटा छा गया, मानो बड़ा साहब तशरीफ़ लाये हों या कोई मर गया हो। गायकजीने वीर-मुद्रामे चारों ओर सर घुमाकर जब देख लिया कि कहीं कोई सर नहीं उठा रहा है, तो भैंसके पँड़वेकी आवाज़में शुरू किया—आऽऽऽऽ !

बाज संगीत-शास्त्रियोंका नियम है कि गाते वक़्त उनकी आवाज़ चाहे षोडशीकी आवाज़-सी ही पतली और मधुर क्यों न हो, मगर शुरूमें दो-चार मिनट ठीक पँड़वेकी आवाज़मे 'आऽऽऽ !' 'आऽऽऽ !' कर लेना ज़रूरी है। इनका मत है कि मधुर कण्ठ, सुन्दर कविता वाले शब्द, हृदयको प्रिय लगनेवाले लय और उतार-चढ़ाव, संगीतकी शानमें बट्टा लगाते हैं। कण्ठ हो पँड़वे-सा, शब्द या तो हों ही नहीं या यदि हों तो बेतुके और अत्यन्त पुराने और रूढ़ और वे भी स्पष्ट सुने न जायँ, व्याकरण संगीतपर उसी तरह सवार हो जैसे हमारे गायकजी तानघोड़ाके तूँबेपर थे, नौर ताना-रीरी like a very wild bull in a very congested china shop संगीतके आकाश हड़कम्पमें मचाये हुए हो। इस आकर्षक संगीतकी लम्बाई—डेढ़ घण्टा ! इसका ध्येय—शास्त्रीय संगीतका प्रचार ! इसको सुननेके बाद (ग़ौर कीजिए—'के बाद') श्रोताको वही आनन्द प्राप्त होता है जो सौ वर्षके वैराग्यके बाद मुक्तिकी प्राप्तिसे तपस्वीको।

गायकजीने कुछ क्षण बाद गलेको थोड़ा और उतारकर शुरू किया—आऽऽऽ ! थोड़ी देर बाद कुछ और नीचे—आऽऽऽ ! जब देर हो गई और उनका गलेको उत्तरोत्तर उतारकर 'आऽऽऽ !' 'आऽऽऽ !' करना न रुका, कोई और भी शब्द निकलने लगे हों ऐसा कानोंने नहीं सुना, तो मुझे उनके स्वास्थ्यके विषयमें आशंका होने लगी कि कहीं मेनन साहबकी तरह इनका भी ब्लड-प्रेशर जीरो न हो जाय।

काफ़ी देर प्रतीक्षाके बाद दूसरे शब्द निकले—**'रुमझुम बदरवा बरसे !'** उस ऋतुमें ये शब्द भारतीय नव-मानवकी इस उत्कट आशावादिताके परि-

चायक थे जो ही हमारी पंचवर्षीय योजनाओंकी नावको किनारे (किस किनारे ?) लगायेगी !

उन तीन शब्दोंमें बरसते हुए मेघका जो वर्णन था उसे गायकके स्वरों-ने साकार कर दिखाया। लगा, गानेमे तीन ही स्वर इस्तेमाल हो रहे थे, सा, सा, और सां (यानी, मन्द्र, मध्य और तार सप्तकोंके 'सा') सा से सा, और सा से सां, तक तीव्र गतिसे जाता-आता उनका स्वर-विलास मेघोंके बीच बिजलीकी कौंध और गड़गड़ाहट-सा दिशाओंको थर्रा रहा था—सा सां, सा सां, सा सां····रुम-झूम ! रुम-झूम ! रुम-झूम ! 'तबलोंसे निरन्तर प्रतिध्वनि आ रही थी—धम ! धम ! धम ! बारिशके तुरन्त पहले-की ऊमसके Extreme annoyance का समाँ एस० पी० साहब नेताजी और संगीत-टीमको छोड़कर बाक़ी सारी मजलिसपर व्याप्त था। मुझे तो लग रहा था कि शास्त्रीय रागके इस प्रचण्ड आग्रहकी भी उपेक्षा कर अगर निरभ्र आकाश नहीं बरस रहा है तो मैं ही गायकजीपर बरस पड़ूँ।

महारथी 'देश' के सामने ठहरनेकी किसीकी हिम्मत न रही; हम-सबोंके गाम्भीर्य और स्थिरताके पार्जे-पार्जे उड़ गये। प्रचण्ड झञ्झावातसे चिथड़े-चिथड़े कर दिशाओंमे फेंक दिये गये मेघ-खण्डोंकी तरह हम अस्त-व्यस्त हो उठे। सङ्गीत उत्तरोत्तर भीषण हो रहा था—रुमझूम ! रुमझूम ! रुमझूम····धम ! धम ! धम! मानो भाँगके नशेमे दोनों ओरकी सेनाओंको अपने-अपने शिविरोंमें खदेड़कर महारथी भीमसेन अब दुर्योधनके ख़ाली रथपर अपनी गदा पटक रहे हों—ठायँ ! ठायँ ! ठायँ !

गायकने लक्ष्य किया कि जनतामें utter demoralization व्याप्त हो रहा है। इसलिए वह हमारी ओर भर्त्सनासे मुँह फेरकर जनताके प्रभुओं, एस० पी० साहब और नेताजी, की ओर घूम गये। स्पष्ट था कि वे दोनों उस सङ्गीतमें बड़ा मज़ा ले रहे थे—संघर्ष-पटु होनेके कारण मैदानसे भागे न थे, बल्कि और उत्साहित थे। एस० पी० साहबकी आँखें बन्द थीं और उनके बन्द ओठोंपर पर्मानेण्ट मुसकराहट सटी हुई थी।

स्प्रिङ्गदार गुड्डेकी तरह एक गतिसे सिर हिलाते जा रहे थे। दायें हाथकी उँगलियोंसे यह निरन्तर ठोंढ़ीके पास अपनी तोंद भी सहलाते जाते थे, मानो अहिंसावादके कारण 'झूम ! झूम !' के प्रहारोंको क्षमा करते हुए वह सिर्फ़ घावकी जगह मल्हम लगाते चल रहे हों। नेताजीकी आँखें खुलीं और कलाकारके उस मेघ-श्याम मुख-छविपर जमी हुई थीं जिसके खिंचाव-चढ़ावसे लग रहा था मानो कलाकी सृष्टिमें कलाकारको प्रसवकी पीड़ा हो रही हो। नेताजीके आठ दाँत खुले हुए थे। उनके दाहिने हाथकी उँग-लियोंमे नृत्यकी मुद्राएँ और गति थी, और दूसरे हाथसे वह अपने बायें गालपर उत्तरोत्तर ज़ोरोंसे चपत लगाते चल रहे थे जहाँ बार-बार मच्छड़ बैठ जाते थे।

जब रातका तीसरा पहर आ गया, रात कुछ शीतल हो गई, मनको कल पड़ा और आँखोंमें नींद आने लगी। खुले काले आकाशमें गंगा यों चमचमाने लगी मानो डेढ़ हज़ार रुपये पानेवाले साहबकी घरपर वाली कमरसे घुटनों तककी दुप्प सफ़ेद लँगोटी हो, और पपीहा इस तरह ज़ार-बेज़ार 'पीउ कहाँ, पीउ कहाँ' पुकारने लगा मानो हमारी श्रीमतीजीओंने रिश्वत देकर उसे भेजा हो, तो मजलिस टूटी और हम अपने-अपने घर चले गये।

बोनसके पैसे-सी अति-मीठी ग्रीष्म-ऋतुकी उषा बोनसके पैसे-सी अति-कम भी होती है—लगता है, भूख जागकर रह गई, कुछ मिला नहीं। नन्हीं रातों-सी नन्हीं प्रेयसी कलेजेसे छुड़ाये नहीं छोड़ी जाती—क्योंकि दोनोंमेंसे किसीको खुर्राटेसे फुर्सत नहीं।

हज़ार मक्खियोंसे जुते रथपर, दस हज़ार कौओंकी खुशामदोंके साथ, भगवान् किरण-नेता बिना कामके आदमीकी तरह घण्टेभर पहले ही उदय हो गये और डिप्टीकी तरह पहले दस साल फिसफिसानेके बजाय आइ० ए० एस० की तरह उदय होते ही तपने लगे।

आज़ादीके बाद शास्त्रीय सङ्गीतका प्रचार बढ़ा है, ऐसा सुनकर,

शहनाईपर भैरवीके सपने देखता जब रविवारको कुछ रू से आँखे खोलीं तो फुल औन रेडियोमें दिगन्त-व्यापी भगवद्-वन्दना हो रही थी।

हाय, तेरे दुनियाकी हालत
क्या हो गई भगवान
कितना बदल गया इन्सान !

अगर आपका हाजमा ख़राब रहता हो तो सुबह बिस्तरसे उठते-ही-उठते ईनोज फ्रूट साल्टका सेवन कीजिए ! ज़रूर कीजिए।

हाय, तेरे दुनियाकी हालत
क्या हो गई भगवान
ईनो ! ईनो ! ईनो !
जल्दी जल्दी कीनो !
हाय, तेरे दुनियाकी हालत....

सुबह, पर ग्रीष्मकी। सुमन-वती, फलवती (पर divorced) मेरी इस छोटी नगरीके एक शायरने अपने प्रियको 'शोला-रू' (यानी, आगके शोलेकी-सी मुख-कान्तिवाला) कहा है; माशूकको आफ़ताब (सूरज) तो और लोग भी कह चुके हैं। अपनी-अपनी पसन्द है। वैसे, मेरे एक पड़ोसी-का घरवासी माशूक़ जब चुने हुए विशेषणों द्वारा आकाशको दोलायमान करता हुआ शोला-रू होता है, तो मेरे पड़ोसी साहब तेज़ीसे भागते हुए मेरे घरमे घुस आते हैं और कई-कई दिन लगातार मुझे अपने सहवाससे अनुगृहीत करते हैं। अँग्रेज़ी ज़मानेमें एक गवर्नरके एक अँग्रेज़ ऐडवाइज़र साहब थे, जो मौक़े-बे-मौक़े अपने बँगलेसे रेकर्ड स्पीडसे भागते देखे जाते थे—उनके 'शोला-रू' 'आफताब' के 'करों' से उत्प्राणित रंग-बिरंगकी बेशक़ीमत जनानी जूतियाँ बँगलेके फाटक तक लपक-लपककर उनका साथ देतीं।

गद्यसे अभिन्न मेरी 'प्रयोगवादी कविता' की तरह, अभी दिन उठा

नहीं कि प्रभात और दोपहरमें फर्क न रहा। अन्दरसे विघटित, ऊपरसे विलगित, आजकलके हिन्दी साहित्यके कितने ही नायकोंकी तरह, लोग सरे सुबह ही पसीना बहाते थक-थक कर बैठने लगे।

कामकाजू होकर भी सूर्य असह्य हो उठा, यान्त्रिक प्रशासनकी तरह, कि जिसकी अन्धेर नगरीमें,

'मुंह बाँधे एकत जरत अहि मयूर मृग बाघ।
देश नदी-तट सों कियो दीरघ दाघ निदाघ॥'

धह-धह-धह-धह आग जले !
(राग—'दीपक', यानी उद्दीपक।
आधार-सहगलका
'दिया जलाओ, दिया जलाओ')
आग जले ! आग जले !
धह-धह-धह-धह आग जले !
अनल-किरीट, ज्वलन-मन, हे !
रक्त-कुसुम तन वसन वि-चंचल
अरुण दोल उन्मत्त हृदय नल
लोहित लोल त्रिलोचन हे !
प्रखर-किरण-शर, निर्मम-शासन,
आया ग्रीष्म सुगन्ध गजासन,
मद-गज चण्ड प्रभंजन हे।
जत्र दहले ! व्योम बले !
धह-धह-धह-धह आग जले !
(शास्त्रोक्त राग दीपक
का स्वरूप और समय)
Reference याद नहीं।

बन्द खिड़कीके शीशेसे देख रहा हूँ, गर्म पानीमें पीले केसर और गुलाबी

बदन वाला कमल मुसकरा रहा है। गर्म सड़कोंपर पीले केश और गुलाबी बदन वाली दो-एक अँग्रेज़ महिलाएँ घूम रही है, कोई और नज़र नहीं आता। मसल मशहूर है—

Mad dogs and Englishmen
Go out in the midday sun.

बारह बजनेको आये।

मंगल कामना—शाम जिस ऋतुकी सब शामोंसे नायाब है; चाँदनी जिस ऋतुकी सब चाँदनियोंसे सुहावनी है; नसीम जिस ऋतुकी अंग-अंगमें सुगन्धित है; और प्रियतमाकी लुनाई जिस ऋतुमें खूब खुलकर आती है; उस ग्रीष्मकी छोटी-छोटी रातें आपको और भी छोटी लगें। आपका कल्याण हो।

आपका प्रान्त गुलमोहर, शिरीष और अमलतास-सा समृद्ध हो। आपके पड़ोसी प्रान्तपर पतझड़ आ जाय। आपका हृदय शीतल हो। आपके पड़ोसी प्रान्तमें आग लगे। आपका कल्याण हो। दूसरोंका न हो। आमीन।

प्रोफ़ेसर राही : सौन्दर्य बोधके मूडमें

●

लक्ष्मीकान्त वर्मा

आप कहेंगे कि यह सौन्दर्य बोध कौन-सी बला है ? और इसका हास्य-रससे क्या सम्बन्ध है लेकिन यक़ीन मानिए सौन्दर्य-बोध और हास्यरसकी मिलावट इस युगकी देन है और इस मिलावटके युगमें इसका एक विशेष रस है ! सौन्दर्य बोधका मज़ाक एक नया अन्दाज़ है जिसकी रंग-रंगी और दिल हिला देनेवाली दास्तानमें वह-वह लच्छे हैं कि बस तबीयत ही अश-अश करके रह जाती है और इन सबके नायक हैं हमारे दोस्त जिनसे आप सब परिचित हैं और जिनका पूरा नाम तो मुझे मालूम नहीं बस इतना ही जानता हूँ····प्रोफ़ेसर राही····जी हाँ····वही प्रोफ़ेसर राही ।

वैसे तो प्रोफ़ेसर राही मेरे दोस्त होते हैं किन्तु दोस्तके साथ-साथ वह

एक सौन्दर्यशास्त्रके वक्ता, राजनीतिके कर्ता और साहित्यशास्त्रके घर्ता भी हैं। जब उनके ऊपर सौन्दर्यशास्त्रका भूत सवार होता है तो वह डेढ़ रुपये-की मिट्टीवाली महात्मा बुद्धकी मूर्तिके लिए दस रुपयेकी चौकी बनवाते हैं, मुफ़्त अपने किसी चित्रकार मित्रकी स्टूडियोसे उड़ाई हुई तस्वीरमे मोटा, चौड़ा और पुख़्ता चौखटा लगवाते हैं, विशालकाय पठार रूपी आँगनमें गुलाबका पेड़ लगवाते है और बढ़ियासे-बढ़िया गेबरडीन और सर्जके सूटमें ठर्रेवाला बटन होल लगवाते है ताकि कोई गुलाबकी कली उसमें फाँसी न जाय वरन् उस ठर्रेमें बाँधी जाय ताकि कभी भी किसी भी हालतमे वह छान-पगहा तुड़ाकर भागने न पावे और अगर भागनेकी कोशिश करे भी तो महज़ छटपटाकर रह जाय। लेकिन मुसीबत यह है कि प्रोफ़ेसर राही गुलाबकी कली नहीं फूल लगाते हैं—फूल भी इतना बड़ा कि वह छोटी-मोटी गोभीके बराबर होता है। गलेके नीचे बायीं तरफ़ दिलके ऊपर वह दिनमें कई बार उगाया जाता है। गुलाब भी उनके घरकी पैदावार हैं, इसलिए उसमे किफ़ायत नहीं करते। कहीं भी जाते समय वह डाल समेत उसे उखाड़ते हैं और झाड़-झंखाड़के साथ अपने बटन होलमें खोंसकर इठलाते हुए रिक्शेपर सवार होकर कम-से-कम दिनमें एक बार घरसे ज़रूर निकलते हैं। जूड़ेके फूलके समान उनका फूल भी ऐसा चमकता है कि रास्तेके लोगोंकी निगाह उनपर बरबस पड़ ही जाती है और इस प्रकार उनका सौन्दर्य बोध हर दिशासे सर्वसम्मतिके साथ स्वीकृतका अनुमोदन पाता हुआ 'गद्-गद्' हो जाता है।

आज सुबह-सुबह जब मैं उनके यहाँ पहुँचा तो वह एक दुर्घटनामें उलझे हुए परेशान बैठे थे। प्रोफ़ेसर राहीको इस तरह परेशान होते मैंने दो बार देखा था। एक तो जब उनके कुँआरेपनपर उनके मित्रोंकी बीबियाँ उनकी लिहाड़ी ले रही थीं और वह अपने साथी विवेक—जो केवल ऐसे ही मौक़ों-पर उनको धोखा देकर भाग जाता है—वे अरदबमें घिरे मुहरेकी भाँति

पिटे-पिटेसे बैठे हुए थे और वह महिलाएँ कह रही थीं—'क्या किया आपने राही साहेब····

यह फूलका घण्टाघर दिलके ऊपर लटकानेसे कुछ नहीं होता····इससे थोड़े ही कोई आपको दिल दे बैठेगा····और कुछ नर्माहटसे काम लीजिए···· संगीतसे शौक़ कीजिए····कुछ पत्र-वत्र लिखिए····शायद काम बन जाय···· नहीं तो····नहीं तो····

और राही साहेब पसीनेसे तर-बतर, विचित्र भ्रू-भंगिमासे मुसकराते और कुछ बुदबुदाकर रह जाते, अपने कुँआरेपनपर झख मारते और छतकी कड़ियाँ गिनने लगते····कभी-कभी तो घबराहटमे चाय पिलाने लगते, या अगर उससे भी नहीं बच पाते तो पूछते····आपको कोई उपन्यास चाहिए···· यह लीजिए····यह टेढ़े-मेढ़े रास्ते····पढ़िए····यह पत्रिका पढ़िए····हाँ कहिए श्यामजीका क्या हाल है····हटाइए भी····छोड़िए इस कुँआरेपनकी बात···· लेकिन औरतें भला कब छोड़तीं और खासकर शादी-शुदा पुराँयठ क़िस्मकी औरतें कुँआरोंको ऐसी ही देखती है जैसे भूखा बंगाली भातको देखता है या बिल्ली शिकारमें चूहेको देखती है। उनके लाख कहनेपर भी वह कहती जातीं····'अरे लाला क्या करोगे यह कमरा सजाके, यह बुद्ध मूर्ति, यह गुलाबकी फ़सल, यह रंग-बिरंगा कमरा, यह सुरमई पर्दा····यह सब बेकार है····उमर बीती जा रही है लाला····अब भी ग़नीमत है····कुछ कर गुज़रो ····नहीं तो क्या फ़ायदा····

लेकिन राही साहेब सब सुनते जाते और जब वह बीबियाँ चली जातीं तो ग़ालिबका दीवान उठाते और अपनी क़िस्मतको कोसते हुए बड़े दर्द-भरे लहजेमें गाते····

यह कहां थी मेरी क़िस्मत कि वसाले यार होता,
कुछ और दिन जो जीते यही इन्तज़ार होता
तेरे तीरे नीमकश को कोई मेरे दिल से पूछे
यह खलिश कहाँ से होती जो जिगर के पार होता

ग़जल गूँजती····और गूँजकर रह जाती····कमरेकी ठण्डी मूर्तियाँ सुनतीं और ज़्यादा ठण्डी हो जातीं····मीनाक्षीसे लेकर अपरना तककी पेण्टिंग्स उन्हे दर्द भरी निगाहोंसे देखतीं और फिर खामोश हो जातीं····कोटमे लगा हुआ गुलाब थोड़ा झुकता लेकिन फिर सँभल जाता····यह होता क्योंकि इसके सिवा कुछ भी और नहीं हो पाता····

लेकिन आज जिस दुर्घटनामे वह शामिल थे, वह दूसरे प्रकारकी थी। हुआ यह था कि उनके कोटका वह बटन होल जिसमें वह गुलाबकी झाड़ खोंसकर चलते थे टूट गया था।

उनको बेहद परेशान देखकर मैंने प्रस्ताव किया कि चलिए दर्ज़ीके यहाँ दूसरा बटन होल लगवा लें।

और अन्ततोगत्वा हम दोनों दर्ज़ीकी दुकानपर गये। प्रोफ़ेसर राहीने रास्तेमें बटन होलपर अच्छी-खासी तक़रीर दे डाली। मैं भी सुनता रहा मसलन यह कि सोलहवीं सदीके इंगलैण्डमें कैसे बटन होल्स बनते थे···· फिर सतरहवीं सदीके अंग्रेज़ी साहित्यमें वह बटन होल उस साहित्यमें कैसे पहुँचा····फिर अट्ठारहवीं सदीके पूर्वार्धमे पेरिसमें इन बटन होल्समे क्या-क्या लगाया जाता था····उत्तरार्धमे यह कैसे उनकी पोशाक़के साथ विकसित होकर कैसे-कैसे डिकेडेण्ड तत्त्वोंका प्रतीक बना····ग़रज़ कि साहेब दर्दके मारे प्रोफ़ेसर राहीने उस दिन वह-वह करतब दिखाये कि दर्ज़ीकी दुकान तक पहुँचते-पहुँचते मेरी तबीयत झक हो गई और फिर भी उनकी बटन होल गाथा पूरी नहीं हुई। ज्यों-की-त्यों चलती रही।

दर्ज़ी भी समझिए कि जाना-पहचाना था। प्रोफ़ेसर राहीकी रुचिके बारेमे भी उसने अच्छा-खासा अध्ययन कर रखा था इसलिए पहुँचते ही उसने प्रोफ़ेसर साहबको आदाब अर्ज़ किया और बोला, 'कहिए कैसे तशरीफ़ ले आये ? क्या बटन होल फिर टूट गया ?' प्रोफ़ेसर राहीने ज़रा व्यंगके लहज़ेमें कहा, 'जी हाँ सुना था मुसलमान दर्जियोंमें ज़हनियत ज्यादा होती है····अगर वह रगेगुलसे बुलबुलके पर बाँध सकते हैं तो रँगे रेशमसे

उनको फूल बाँधना तो आता ही होगा ! लेकिन आपने तो वह सुबूत पेश किया है कि बस रँगे रेशमसे फूल क्या काँटे भी नहीं बाँध सके ।'

एक साँसमें इतना कह देनेके बाद जब प्रोफ़ेसर राहीने बात ख़त्म की तो दर्जीने बात शुरू की । बोला, 'अजी साहब लगते तो फूल ही हैं और कुछ फूलके लिए तो महज़ एक इशारेका सहारा चाहिए····यह तो लगता है आप इसमे पूरा पेड़ ही लगा देते है····अगर ऐसा नहीं होता तो इसके टूटनेकी कोई गुंजाइश ही नहीं हो सकती थी ।'

प्रोफ़ेसर राही अबतक काफ़ी ग़ुस्सा पी चुके थे झुँझलाकर बोले, 'आप बकवास मत करिए····मैं जैसा हूँ उस प्रकारका बटन होल बनाइए····क्या आप समझते हैं कि मैं इसमें स्वीटपीका फूल लगाऊँगा····मुझे गुलाब पसन्द है····मै गुलाब लगाता हूँ गुलाब····'····दर्जीसे न रहा गया, झुँझलाकर बोला, 'गुलाब भी कई क़िस्मके होते है····आप कली लगाते हैं कि फूल····'

अबतक मैं सिर्फ़ सुन रहा था बोला, 'बड़े मियाँ कलियाँ तो नसीबवाले चुनते हैं । यह फूल लगाते है, फूल ।'

'जी हाँ इसीलिए मैंने पूछा हुजूर, क्योंकि यह बटन होल दिलके पास-की जगह होती है····गुंजायशका ख़्याल रखना चाहिए····' दर्जीने कहा ।

जीमे आया कह दूँ मियाँ यह बड़ा फूल लगाते इसलिए है कि उससे इनके दिलके विस्तारका सही अन्दाज़ देखनेवालेको लग जाय····अभीतक तो यह वीरान ही है····शायद फूलके पैमानेसे दिलका चमन बाग़-बाग़ हो जाय, लेकिन अभी तो कोई सूरत नज़र नहीं आती । लेकिन मैने राहीजीकी तेवर देखकर कहा नहीं । दर्जी भी काममे लग गया । थोड़ी देर बाद बटन होल बनाकर उसने पेश किया । इस बार उसने रेशमकी डोरीका ठर्रा बनाया था और बट-बटकर उसे इतना तगड़ा किया था कि वह गैबरडीनकी कोटपर उगा हुआ रेशमका कोया लग रहा था । प्रोफ़ेसर राहीने उसमें अपनी मोटी रेड ब्ल्यू पेन्सिल डालकर देखना चाहा और वह फिर टूट गया । उसका टूटना था कि प्रोफ़ेसरने कोटको दर्जीके ऊपर फेंक दिया और

गुस्सेसे काँपते हुए बोले····'तुममें कुछ भी एस्थिटिक सेन्स नहीं है····ऐसे बटन होल बनता है····ज़रा-सा सहारा दिया कि चट्ट टूट गया····'और यह कहते हुए वह उल्टे क़दम घरकी ओर वापिस आ गये।

दूसरे दिन लोगोंने देखा कि उनके गैबरडीनपर उगा हुआ रेशमी कोया अब एक कीड़ेकी शकलका बटन होल बन गया था और उसके बीच गुलाबका एक पूरा गाछ ठुँसा हुआ था। कुछ दिनोंतक लोगोंने टोका लेकिन अब सब चुप हो गये हैं क्योंकि देखनेमे बेढंगा लगनेपर भी अब सबको वही देखनेकी आदत हो गई है। प्रोफ़ेसरने नये सौन्दर्य बोधको जन्म दे दिया है। इस घटनाको भी आज तीन साल हो चुके हैं। पास-पड़ोसके लोग कहते है कि यह नवजवान अकसर गुलबकावलीके नायककी तरह आधी रात गये अपनी गुलाबबाड़ीमें यह गाते हुए पाया जाता है—

यह कहाँ थी मेरी क़िस्मत कि विसाले यार होता।
कुछ और दिन जो जीते यही इन्तज़ार होता॥

सुरख़ाबके पर

•

शान्ति मेहरोत्रा

राम बाबू ऊपरके कमरेमें ही अपना अधिकांश ख़ाली समय बिताते हैं, यह तो उनके सभी परिचित जानते हैं किन्तु कौन-सा ऐसा आकर्षण है जो उन्हें घरके सबसे छोटे कमरेसे बाँधे रहता है इस रहस्यका पता बहुत ही कम लोग लगा पाये हैं। उनके कमरेमें प्रवेश करनेकी अनुमति किसीको भी प्राप्त नहीं है—उनकी पत्नी तकको नहीं। अतः उनके कमरेको लेकर तरह-तरहकी अफ़वाहें लोगोंमें फैली हुई हैं। कोई कहता है कि वे कवि हो गये हैं, किसीका अनुमान है कि वे किसी खोजमें व्यस्त हैं, कोई उन्हें क्रान्तिकारी घोषित करनेपर तुला है तो किसीके विचारसे वे सिद्धि प्राप्त

करनेके चक्करमें है और स्वयं उनकी पत्नीका मत है कि उन्होंने उस कमरे-में अपनी पूर्व प्रेमिकाओंके पत्र छुपाकर रक्खे है ।

होलीकी शामको भोजन कर चुकनेके बाद राम बाबू दबे पाँव ऊपर चले तो उनकी पत्नीने झल्लाकर कहा—

'क्यों जी, त्योहारके दिन भी दस मिनट बैठकर बात करना मुश्किल है ? जब देखो तब मुई कोठरीमे ही बन्द होकर रहते हो।····राम जाने कौन-सा खजाना गड़ा है उसमें !'

'तो बातें करो न, मै कब मना कर रहा हूँ । तुम्हे जो कुछ कहना हो नीचेसे कहती रहो, मैं ऊपरसे जवाब देता रहूँगा !'

'हाँ, हाँ, जवाब तो खूब दोगे ! एक मैं ही पागल मिली हूँ न जो गला फाड़-फाड़कर चिल्लाती रहूँगी !····जाओ, जाओ····तुम्हें तो एक-एक पल भारी हो रहा होगा !' मौक़ा पाकर राम बाबू 'तो फिर तुम्हारी मर्ज़ी !' कहते हुए ऊपर चले गये । ज़ीनेमे उन्होंने चौकन्ने होकर एक बार चारों ओर देखा फिर ताला खोलकर फ़ौरन कमरेको भीतरसे बन्द कर लिया । कमरा छोटा होते हुए भी सुरुचिपूर्ण ढगसे सजा था । एक ओर बेंतकी बुनी हुई लम्बी बेंच पड़ी थी । उसके ठीक सामने शीशमकी लकड़ी-का एक सुन्दर रैक दीवारसे सटा हुआ रक्खा था । उसके छोटे-छोटे खानों-के ऊपर क्रमसे मुण्डन, कनछेदन, जनेऊ, तिलक, विवाह, कवि-सम्मेलन, हास्य-गोष्ठी, कथा-गोष्ठी तथा नाटक लिखा हुआ था । उन खानोंमें रंग-बिरंगे निमन्त्रण-पत्र दीवारोंपर सुन्दर-सुन्दर फ्रेमोंमें जड़े टँगे थे । कमरेके बीचोबीच एक मेज़ और उसके पास एक कुर्सी रक्खी हुई थी । राम बाबू कुर्सीपर बैठकर मेज़पर रक्खे रजिस्टरके पन्ने उलटते हुए तीसवें पृष्ठ-पर रुक गये, जिसकी हूबहू नक़ल इस प्रकार है—

निमन्त्रण-पत्र रजिस्टर १९५७

निमन्त्रणपत्र की तिथि	द्वारा	प्राप्ति-व्यय	आकार	अवसर	समय	विशेष सुझाव
१-५-५७	राम खिलावन दरीवाला	कुछ नहीं। केवल पण्डालकी सजावट में योग देना पड़ा	(मौखिक) निमन्त्रण	संगीत-सम्मेलन	रात्रि दस बजे	सूट पहिनकर गया था जो इस अवसरपर बिलकुल नहीं जमा; अगली बार अचकन ट्राई करूँगा। बहुत तिकड़म लड़ानेपर भी मंच तक पहुँचनेकी नौबत नहीं आई।
५-२-५७	कविवर मुखरेशजी	पान-सिगरेटपर साढ़े सात आना। अपने साथ चाय पिलाई और भोजन भी कराया।	४" × ६" छपाई सुन्दर। पत्र जड़वाने योग्य है।	बसन्त पञ्चमीके अवसरपर कवि-सम्मेलन	सायंकाल आठ बजे	मुखरेशजी द्वारा भविष्यमें भी निमन्त्रण-पत्र मिलते रहनेकी आशा है अतः उन्हें चाय पिलाते रहना चाहिए, विशेषकर जाड़ेमें। किन्तु उनसे छुट्टीके दिन भेंट करनेमें ही कुशल है अन्यथा नौकरीपर बीत जानेकी आशंका है क्योंकि वे जब भी आते हैं, छः-सात घण्टेसे कम नहीं बैठते। पिछली बार उन्होंने अपनी २३ कविताओंका पाठ किया। उनपर रंग जमानेके लिए मुझे भी कहींसे दो-चार कविताएँ जुटानी होंगी।
१६-३-५७	जग्गूमलजी	चाय—तीन आना पान—दो आना	२" × ४"	कहानी सम्मेलन	सायंकाल सात बजे	जग्गूमलजीकी उदारताकी पूरी-पूरी प्रशंसा की; उन्हें इस आयोजनके लिए बधाई दी और यह सिद्ध कर दिया कि संसारमें यदि कोई सच्चा कला प्रेमी है तो वे स्वयं! इससे वे काफ़ी प्रभावित हुए। आगेको इस नीतिसे काम लिया जा सकता है।

अपने विशेष सुझावोंकी दूरदर्शिता एवं सफलतापर राम बाबू विजय-गर्वसे ऐसे मुसकराये जैसे सिकन्दर बन्दी पोरसको देखकर मुसकराया होगा। उन्होने खूँटियोंपर टँगे सूट, अचकन और धोती-कुर्त्तेकी ओर आलोचककी पैनी दृष्टिसे देखा और पूर्व-अनुभवोके आधारपर धोती-कुर्त्तेको चुनकर, रुमालपर और कानोंके पीछे हिनाका इत्र लगाकर कहानी-सम्मेलनका आनन्द लेने चल दिये।

राम बाबूके सन्तुष्ट जीवनमें एक मात्र महत्त्वाकांक्षा थी किसी दिन मंचपर बैठनेकी। किन्तु निरन्तर प्रयत्नशील होते हुए भी वे अब तक इस दिशामें सफल नहीं हो पाये थे। उस दिन कहानीकारोंकी भीड़ देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और यह सोचकर कि सम्भव है झपसटमें उन्हें भी मंचपर बैठनेका अवसर मिल जाय, वे सीधे उसी ओर अग्रसर हो गये। उनका हृदय धक्-धक् कर रहा था फिर भी वे वीरतापूर्वक मुसकराते हुए आगे बढ़ रहे थे किन्तु जिस मुसकानके बलपर वे क़िला फतेह करने चले थे उसने उन्हें ऐन-मौक़ेपर दग़ा दे दी और मंच तक पहुँचते-पहुँचते वे सकपकाये हुए सहमी-सहमी निगाहोंसे इधर-उधर देखने लगे। उन्हें इस दशामें पाकर एक प्रबन्धकर्ता महोदय फौरन उधर लपके और बोले,

'श्रीमान्, क्या आप भी आमन्त्रित कहानीकारोंमें है ?'

'जी ?····जी नहीं····मैं तो एक प्रबुद्ध श्रोता मात्र हूँ !'

अपने वाक्चातुर्यपर प्रसन्न होकर राम बाबूने मंचपर पहुँचनेके लिए बनी सीढ़ीपर पैर रक्खा ही था कि प्रबन्धक महोदय उन्हें रोकते हुए कहने लगे—

'आप कैसे भी श्रोता हों, कृपया मंचपर मत जाइए। यहाँ नीचे बैठिए।'

'क्यों जनाब, आप कौन होते हैं मुझे रोकनेवाले? मैं मंचपर क्यों नहीं बैठ सकता ?' राम बाबूने धमकाते हुए पूछा।

'आप भी विचित्र व्यक्ति हैं ! अरे भाई साहब, कह तो रहा हूँ कि

वहाँ केवल लेखकगण ही बैठ सकते है। आपके कौनसे सुरख़ाबके पर लगे हैं जो वहाँ चढ़कर बैठेंगे?'

राम बाबू खिन्न होकर श्रोताओंमें बैठ तो गये किन्तु सुरख़ाबके परोंको लेकर उनके मनमे हलचल-सी मच गयी। बार-बार वे सोचने लगे कि जैसे भी हो, कहीं-न-कहीसे सुरख़ाबके पर अवश्य हथियाने चाहिए। इस रात घर लौटनेपर उन्होंने अपने रजिस्टरमे लिखा—

'सुरख़ाबके पर ही सफलताकी कुञ्जी है। उन्हें प्राप्त करना आजसे मेरे जीवनका एकमात्र ध्येय होगा।'

उनके इने-गिने मित्र जब उन परोंके प्राप्ति-स्थलपर प्रकाश न डाल सके तो वे अपनी बुद्धिका सहारा ले, शनिवारकी शामको दफ़्तरसे लौटते समय सीधे हैटवालेकी दूकानपर जाकर बोले,

'देखिए, कुछ बढ़िया-बढ़िया हैट दिखाइए।'

दूकानदारने उनके सामने हैटका ढेर लगा दिया। रामबाबूने कुछ झुँझलाकर पूछा—

'आपसे कहा न कि बढ़िया हैट दिखाइए····जिनमें कुछ पर-वर लगे हों। ये सब तो बिलकुल बेकार हैं।'

दूकानदारने परवाले हैट भी दिखाये। इन्हें देखते ही रामबाबू खिलकर बोले,

'अब आपने असली माल निकाला है! इनमें-से किसी हैटमें क्या सुरख़ाबके पर भी लगे है?'

दूकानदार अभी व्यवसायमें कच्चा था; बोला—

'यह सब तो हमें नहीं मालूम। जो माल है, वह आपके सामने है। देख लीजिए, अगर पसन्द हो तो बताइए।'

'पसन्दको तो सभी अच्छे हैं····लेकिन····बात यह है कि मुझे एक ख़ास तरहका हैट चाहिए····अच्छा, फिर किसी दिन फुरसतसे आकर देखूँगा···· अभी ज़रा जल्दीमें हूँ' कहते हुए रामबाबू बाहर आ गये। उन्होंने सोचा

कि अगर हैटमें सुरख़ाबके पर लगते होते तो दूकानदारको ज़रूर मालूम होता; लेकिन उसकी बातोंसे स्पष्ट है कि वह इस बारेमें कुछ नहीं जानता।

इस विषयपर पुनः गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके बाद उन्हे ध्यान आया कि वैद्य लोग सोने, चाँदी, मोती आदि बहुत-सी चीज़ोंकी भस्म रोगियोंको देते रहते हैं, हो सकता है कि सुरख़ाबके परोंकी भस्म भी रखते हों और अगर भस्म उनके पास होगी तो पर भी ज़रूर मिल जायँगे। यह सोचते-विचारते वे वैद्यराज भगवानदासके पास पहुँचे और उनके पास बैठे अन्य रोगियोंको देख कानके पास झुककर बोले,

'वैद्यजी, आपके पास सुरख़ाबके पर होंगे ?'

वैद्यजीने अपनी अनुभवी दृष्टि उनपर टिकाते हुए पूछा,

'काहेके लिए चाहिए बेटा ? कौन रोग है तुम्हे ?'

'जी रोग-ओग कुछ नहीं है। आप बता दीजिए कि वे पर आपके पास है या नहीं।'

वैद्यजीने लपककर उनकी नब्ज थाम ली और मुँह बनाकर बोले,

'मुझे भी यही सन्देह था। यह वायुके प्रकोपका लक्षण जान पड़ता है। ऐसा पहले भी कभी हुआ है ?'

'कैसा ?'

'यही जी घबड़ाना, आँय-बाँय बकना....'

'लेकिन मैं बिलकुल ठीक हूँ, वैद्यजी।'

'बेटा, मुझसे हर रोगी यही कहता है। ख़ैर मैं एक चटनी दे रहा हूँ वह दिनमें तीन बार चाटना और एक चूर्ण दे रहा हूँ उसकी पुड़िया प्रातः और रात्रिमें सोनेसे पहले फाँक लेना। दस-पाँच दिनमें ठीक हो जाओगे। चिन्ताकी कोई बात नहीं है !'

इसबार रामबाबूने गर्म होकर कहा,

'आप व्यर्थकी बातें मत करिए। साफ़-साफ़ बताइए कि पर आपके पास

है या नहीं····आप क्या समझते हैं मैं दवा लेने आया हूँ····मुझे पर चाहिए पर ?'

वैद्यजीके नेत्रोंमें करुणा झलकने लगी, उन्होंने सिर हिलाते हुए अन्य रोगियोंसे कहा,

'बेचारेकी अभी उम्र ही क्या है ! रोग असाध्य जान पड़ता है····

फिर रामबाबूसे पूछने लगे 'कोई तुम्हारे साथ आया है ?'

रामबाबूने आग्नेय नेत्रोंसे वैद्यकी ओर घूर कर कहा, 'मूर्ख कहींका ।' और वहाँसे सीधे घर लौट गये ।

इस घटनासे खिन्न होकर रामबाबूने कुछ दिन सुरख़ाबके परोंके बारेमें किसीसे कोई चर्चा नहीं की । किन्तु एक दिन अपने चिर-परिचित पान-वालेको, तरह-तरहकी चिड़ियोंके पिंजड़े उठाये हुए एक बहेलियेसे बात करते देख मानो उन्हें अपने प्रश्नका उत्तर मिल गया । उन्होंने अपनी चिर-वांछित वस्तुकी माँग बहेलियेके सामने दोहरा दी । बहेलिया नम्बरी काइयाँ था । झट कहने लगा,

'सरकार, एक सुरख़ाब क्या, दस सुरख़ाब आपके चरणोंमें लाकर डाल दूँगा लेकिन उसे पकड़ना बड़े जोखिमका काम है । घने जंगलमें जाना पड़ेगा मालिक, फिर भी तय नहीं कि वह परिन्दा हाथ लग ही जाय । हाँ ! क़िस्मत अच्छी हुई तो बात दूसरी है । यहाँ एक डिप्टी साहब रहते थे सरकार—अब तो उनकी बदली हो गई—वे बड़े शौक़ीन थे सुरख़ाबके परोंके । एक-एक परका पचास-पचास गिन देते थे । बड़े दरियादिल थे सरकार····भगवान् उन्हें खुश रक्खें ।····हाँ तो सरकारको कितने सुरख़ाब चाहिए ?'

दाम सुनकर रामबाबूके होश आख़्ता हो गये । संकोचके साथ बोले,

'भई, मुझे पूरे सुरख़ाबका क्या करना है····बस दो पर मिल जायँ तो काफ़ी हैं । मेरा काम चल जायगा !'

बहेलिया बड़े एहसानके साथ चार दिन बाद पच्चीस रुपयोंके दो पर

लानेकी बात पक्की करके चला गया और रामबाबू गद्‌गद होकर मंचके सपने देखने लगे।

चौथे दिन बहेलियेने पर उनके हवाले किये। क्योंकि इस दिशामें रामबाबूसे 'अथारटी' मान चुके थे इसलिए उन्होंने बिना किसी शंकाके उन परोंको सुरख़ाबका मान लिया। उस अमूल्य निधिको पाकर उन्हे ऐसा लग रहा था मानो वे उनके सहारे ऊपर उड़ते चले जा रहे हों और धरतीके अभागे प्राणी मुँह बाये, आश्चर्यचकितसे टुकुर-टुकुर उन्हें ताक रहे हों।

सौभाग्यसे प्रथम चैत्रको नव-वर्षोत्सवके उपलक्षमे एक विराट् कवि-सम्मेलनका आयोजन हुआ और कविवर मुखरेशजीको घेर-घारकर रामबाबूने निमन्त्रण पत्र भी हथिया लिया। ख़ूब सज-सँवरकर, कोटके बटन होलमें दोनों पर खोंस, हाथमें गुलाबका फूल लिये वे पण्डालमें जा पहुँचे। कार्यक्रम आरम्भ हो चुका था। रामबाबू तीरकी तरह सीधे मंचकी ओर बढ़ चले। एक सज्जनने मंचके पास उन्हें रोककर विनम्र स्वरमें पूछा,

'क्या आप भी आजके कार्यक्रममे भाग ले रहे है ?'

'नहीं' रामबाबूने आगे बढ़ते हुऐ निहायत बेरुख़ीके साथ जवाब दिया।

'तो····सुनिए····आप इधर पीछेकी ओर बैठ जाइए····चलिए मैं जगह दिलवा दूँ।'

'कोई ज़रूरत नहीं है, आप कष्ट न करें। हम मंचपर ही बैठेंगे' रामबाबूने अकड़कर कहा।

'लेकिन वहाँ तो केवल कविगणोंके बैठनेका प्रबन्ध है' उक्त सज्जनने प्रार्थना की।

'होगा। इससे मुझे क्या ? आप अपना काम देखिए, बेकार बकवास मत करिए।'

वे सज्जन भी कुछ गर्म होकर बोले, 'वाह साहब ! आप तो ऐसे बढ़-बढ़कर बोल रहे हैं जैसे सुरख़ाबके पर लगा कर आये हैं कि मंचपर जा बैठेंगे।'

अब रामबाबूसे सहन न हो सका और वे चिल्लाकर कोटपर लगे परों-की ओर संकेत करते हुए बोले, 'ये सुरख़ाबके पर नहीं तो क्या हैं ? अन्धे हैं आप ? दिखाई नहीं पड़ता ?'

और जब तक वे सज्जन परिस्थिति समझें-समझें रामबाबू उचककर मंचपर जा बैठे और विजय गर्वके साथ मुसकराते हुए कवि-गण तथा श्रोता-वर्गकी ओर घूम-घूमकर देखने लगे ।

बक़ौल

•

सैयद शफ़ीउद्दीन

एक (मित्र) समीक्षक :

"....मानना पड़ेगा कि, 'डैश' आजके प्रयोगवादी कवियोंसे दो क़दम आगे हैं—

"अ. जो लिखा है, अजीबो-ग़रीब टेकनीकको अपनाकर। [जिसे देखकर लाज़िमी है बड़ों-बड़ोंके मुँहका खुला रह जाना....और कुछ क्षणोंके लिए दिमाग़में इस तरहके ख़यालातका मँडरा जाना, कि आसमान ऊपर है या ज़मीन; अथवा सूरज डूब गया और दिन नहीं निकला ? ?....]

"ब. विचित्रताकी धुरीपर आधारित और नयेपनकी इस्त्री-तले प्रेस

किये होनेके बावजूद उनकी कविताओंमें छायावादी ख़ुशबूका मिश्रण होता है—यानी बहुत-कुछके अलावा उनमें 'कुछ' ऐसा भी है, जो बहुत नाज़ुक, बहुत प्रिय, बहुत मधुर होता है, जो अन्यत्र नहीं मिलता : सिर खपाने-पर भी !

उदाहरण देखिए ['कोपलें' का]—

अभी फूटीं
कोई बात नहीं
अभाव स्थानापन्न है
—सुहानापन ही···
किन्तु भ्रम है—अमर है भ्रम
रेतके कण भी चमकते हैं
किन्तु रेत···
(इतिहासके पन्ने देखिये !)
सहारा 'होना' है,
जो नहीं होता
अस्तु,
टिके कब तक
खिलेका खिला रहना···?

"है कहीं ऐसा अनबूझ आइडिया, है कहीं ऐसी नज़ाकत, कोमलता, प्रवाह ? !"

चचा 'ग़ुरबत', चाय वाले :

कोई एक—"चचा, बडा ऐंठू ख़ाँ बना फिरता है !"

कोई दूसरा—"मत कहिए साहब, दिमाग़की तो कोई थाह ही नहीं मिलती ! शायरीको दुम क्या हिलाने लगा, समझता है, कि दुनिया बेवकूफ़ है, और सारी अक़्लका पिटारा बेटाके पट्टोंमें छिपा है ।····"

चचा 'ग़ुरबत'—"कोई बात नहीं यारो, 'अपना' ही है !"

भाभी :

"तुम्हारे जैसा ग़ैर ज़िम्मेदार आदमी तो मैंने आज तक नहीं देखा ! यह दिन भर ऊल-जलूल लिखते और फाड़ते रहनेके आखिर क्या मानी ? शादी हो जाती, तो अभी चार बच्चोंके बाप होते; मगर इतनी भी अक़्ल नहीं, कि आदमीको अपने पैरोंपर खड़े होनेकी कोशिश करनी चाहिए। 'भइया' का कोट पहन लिया, 'भइया'का पतलून डाट लिया, चवन्नीका सौदा लाये, तो अधन्ना काटकर सिग्रेट पी लिया·······लानत है !

ज़िला सीतापुर, ज़िला कलकत्ता और मुल्क रूसकी तीन पाठिकाएँ :

नम्बर एक—

"आदरणीय श्रीमान् 'डैश' जी,

सादर प्रणाम। आपकी कविताएँ अक्सर पत्र-पत्रिकाओंमे पढ़नेको मिलती हैं। अच्छा लिख रहे हैं। मेरी शुभ कामनाएँ।

भवदीया

फूलवती 'फूल' "

[**पत्रकी दूसरी बगल—**

"कविताएँ तुम्हें पसन्द आयीं, धन्यवाद। पर यह 'आदरणीय' और 'श्रीमान्' के क्या मानी, प्रिये ?

—**'डैश'** "]

नम्बर दो—

"महोदय,

आपकी कविता-कलाकी मैं क़ायल हूँ। बहुत ही प्रशंसनीय ढंग है, बातोंको कहनेका। और क्या लिख रहे हैं ?

आपकी, [पत्र अंग्रेज़ीमें था]

'प्रेरणा' "

[**हाशियेमें—**

"तुम्हारी चिट्ठीकी ख़ुशबूको सूँघता हूँ, मुहब्बतमें तड़पता हूँ और अनदेखी पलकोंकी तस्वीर खीच रहा हूँ।"]

नम्बर तीन—

'प्रिय बन्धु,

कविता-संग्रह मिला, पढ़ा। निराशा हुई—कुछ समझ न सकी।

आपकी,

विमला हॉव"

[**लिफ़ाफ़ेपर—**

'मूक जो हो, तो
व्यथाका कारण
दूरियाँ अक्सर
समझ नहीं पातीं।

—'**डैश**'—']

एक सम्पादक :

'जी नहीं, हमारे यहाँ पारिश्रमिककी व्यवस्था नहीं !'

झब्बू मास्टर, 'अलबत टेलरिंग साप'

सीना—२७ इंच
कमर—२४ ,,
गर्दन—९¾ ,,
....
....

तैयार देनेकी तिथि—१५
[दिया गया २९ को !]

मुहल्लेकी भंगिन :

'देखो बाबू, हम नीच क़ौम हुए तो क्या, इज़्ज़त हमें भी पियारी है। अबकी-से आँखें मटकायीं, तो ठीक नहीं खायेगा !'

[इस डरसे, कि रसोईमें तरकारी काटती हुई भाभी न सुन लें, हाथ जोड़कर माफ़ी माँग लेना !]

शंकाएँ और समाधान :

'[सच तो यह, कि शंकाका समाधान हो ही नहीं सकता, क्योंकि जिसे एक समाधान समझे, वह औरके लिए कोई समस्या हो—और मेरी शंकाएँ चूँकि व्यक्तिगत नहीं !]

'प्यार ?'

'—सीढ़ियाँ। यह बात और, कि कहीं कुतुबमीनारसे चक्कर हों, तो कहीं काशीके घाटों-सा पातालमें धँसाव और कहीं 'आई० आई० ए०'-सी तड़क-भड़क, कि—

'भर्र-र्र-र्र····

'क्या हुआ ?'

'जहाज़ उड़ गया, धूल उड़ रही है !'

'वादे ?'

'—रुइया बादल।'

'एक आम ट्रेजेडी ?'

'—१ : ९, यानी बहुत दूर तक सफलता रही, पर एक ऐसी कगार है, जो नहीं छुल पाती, नहीं छुल पाती—अस्थायी है बाढ़का पानी····'

'आस्था क्या है ? क्यों है ?'

'—बचपन'

'क्यो, कि कुछ जानना शेष रहता है। [' मेक-अपका सेन्स समझना ज़रूरी है।']

'नवीनता ?'

'—दुनिया इतनी पुरानी है [घिसी हुई !], कि कुछ भी नवीन नहीं

'किन्तु जो कहते हैं ?'

'उन्हे धोखा दिया जाता है।'

क्लब 'रेडरोज़' में ऐडमीशनकी अनुभूति :

'नेम प्लीज़ ?'

'डैश !'

'डैश ?'

'जी हाँ डैश !'

'फ़ुलस्टाप नहीं ?'

'नहीं। आप प्रजेण्टमें चल रही हैं, या फ्यूचरमें ?!'

धीमी-सी खिलखिलाहट।

दिल है, कि भसम, भसम, भसम····

'काम ?'

'काव्य-रचना।'

'यह कौन-सा डिपार्ट है ?'

'झखनेका।'

'बी सीरियस प्लीज़ ! किस डिपार्टमें काम करते हैं ?'

'काव्य-रचना डिपार्ट नहीं।'

'फ़र्म है ?'

'जी नहीं।'

'दूकान है ?'

'जी नहीं।'

'तब क्या है !' सिनेमा-गेटकीपरका ट्रान्सलेशन ?!'

'नहीं। वर्स-राइटिंग !'

'ओ····ह ! तो यूँ कहिए····वर्स-राइटिंग ! पोएट हैं !' खूब, बहुत खूब !'

'क्या मतलब ?'

'मतलब, कि शक्ल भी है !'

'शुक्रिया ।'

वही धीमी-धीमी-सी खिलखिलाहट ।

कान हैं, कि बज रहे हैं—झाँय, झाँय, झाँय····

'ऐडरेस ?'

'५०, रहनुमा बिल्डिग, लालगंज ।'

क्या हसीन उँगलियाँ हैं, क्या हसीन अक्षर—५०—रहनुमा—बिल्डिग····

'बिलकुल पास ही है, ये क्या, ये क्या बिलकुल····। किसी रोज़····'

अरे !

लेकिन मुसकराहट कुछ और उभर आती है····।

× × ×

रात इतनी सुनसान और अँधेरी क्यों है····और ये तारे, ये आँखें····

रेस्टुरेण्टकी दो कुर्सियाँ :

दो प्याली चाय, और दो केक-पीस ।

और बहुत सारी फुसफुसाहटें····।

सिनेमा हाउस :

थर्ड शो ।

'····सरो, कभी तुमने सोचा है, कि हमारी ज़िन्दगी····'

कम्पनी बाग़ :

दूधिया चाँदनी । बेले और रातरानीकी भीनी-भीनी खुशबू, और

अशोककी पत्तियोंकी खामोशी, और दूबपर जमी हुई शबनमकी बूँदें, और ठण्ड····

कम्बख़्त हमदर्द :

'भई, सोचना चाहिए, हमने भी काट-पीट कर दिया था····कुछ नहीं, तो कम-से-कम ५) ही लौटा दो····'

' ? :

कठिन हो
तोड़ती हो; पर न जाने क्यों—शिला
प्रिय तुम ।'

प्लाईमाउथकी पिछली सीट :

'सरो !'
'हूँ ।'
'क्या यह ठीक है ?'
'क्या ?'
'जो मैंने सुना है ।'
'क्या ?'
'कि वह डैश····'

'बस-बस भटनागर बाबू····ह-ह-ह, खूब····! वह डैश····हि-हि-हि···· फुलस्टाप, कामा, सिल्ली····! ह-ह-ह ···

और होटल 'डि-बर्लिन'का कमरा नम्बर २७०—

'ह-ह-ह····भटनागर बाबू····ह-ह-ह····'

और काग़ज़ी सरसराहट—

'ख़ूब ! भटनागर बाबू····हि-हि-हि····'

और शीशेकी टुनक—

'हि-हि-हि····ह-ह-ह····'

'हो-हो-हो····'

(चटाख़ !) :

एक चिट—

'Explain Mr. Poet.

What is O ?

Z-E-R-O ?

Z-E-R-O ?'

यों ही (ज़ख़्मकी गहराई ?) :

पिनकी हकीमजी—'म्यां, कुछ उँखड़े-उँखड़े दिख रिये हो, सब खैर-सल्ला तो है न ?''

'बस दुआ है; ज़रा मौसमकी तब्दीलीकी वज़हसे····'

सम्पादकके नाम एक पत्र

[हैं भी और नहीं भी]

●

चस्वराचार्य

महाशय,

विश्वास कीजिए, यह मेरा प्रथम पत्र है जो मैं किसी अखबारके सम्पादकके नाम लिख रहा हूँ। यह नहीं कि पत्र लिखता ही नहीं या कि मुझे पत्र लिखना अच्छा नहीं लगता। पत्र-व्यवहारमें दफ़्तरी दृष्टिकोण रखनेपर भी मैं उपर्युक्त वर्गके पत्र नहीं लिख सका और आज जो इस प्रकार पत्र मैं लिखने जा रहा हूँ, क्रियाकी दृष्टिसे जिसे मैंने प्रारम्भ कर दिया है, उसका एक विशिष्ट कारण है।

अबतक सामान्य पत्र साहित्यको (अँग्रेज़ीमें कीट्स अथवा लॉरेन्सके

पत्र, हिन्दीमें महावीर प्रसाद द्विवेदी अथवा पद्मसिंह शर्माके पत्र) व्यापक साहित्यका अभिन्न अंग माना जाता था। पर अब मैं देख रहा हूँ कि इस प्रकारके पत्र साहित्यसे प्रायः सर्वथा भिन्न सम्पादकके नाम लिखे गये पत्रों-का साहित्य है। यहाँ शिवशम्भु अथवा विजयानन्द दुबेके छद्म नामसे लिखे गये पत्रों अथवा चिट्ठोंको हमें अलग कर देना होगा। सम्पादकके नाम पत्र उस शृंखलाकी अन्तिम कड़ी है, 'जो नहीं छपेंगे' शीर्षकके अन्तर्गत नामो-ल्लेखसे प्रारम्भ होती है।

आजके युगका सबसे बड़ा जादूगर कदाचित्, उसका कम्पोजीटर है और इसीलिए मानव-जीवनका सबसे बड़ा लक्ष्य आज अपने नामको 'अधिक-से अधिक बार तथा बड़ेसे-बड़े टाइपमें' (तुल० 'द ग्रेटेस्ट गुड ऑफ द ग्रेटेस्ट नम्बर') मुद्रित हो गया है। सम्पादकके नाम पत्र इस दिशामे प्रारम्भका अन्त (End of the beginning) है, जिसे आजके प्रजा-तन्त्र युगने अत्यन्त व्यापक बना दिया है।

सम्पादकके नाम पत्र सचमुच प्रजातन्त्रके जेठ बेटोंमेसे एक है। 'मुहल्ले-का नाला साफ़ नहीं किया जाता'से लेकर 'एटम बम मुझसे पूछ कर क्यों नहीं बनाया जाता' तक इस विशिष्ट कॉलमका क्षेत्र विस्तार है। कभी-कभी इस कॉलमके माध्यमसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद भी सम्पन्न होते हैं, जिनके द्वारा पाठकोंको विषयकी जानकारी चाहे न भी हो पर नामोंकी जानकारी पूरी हो जाती है।

ब्रिटिश प्रजातन्त्रके विकासमें वहाँके सम्पादकके नाम पत्र साहित्यका महत्त्वपूर्ण योग है। एक अमेरिकन पत्रकारके शब्दोंमें 'जैसे ब्रिटिश न्यायका मूल तत्त्व सामान्य क़ानून है और ब्रिटिश रन्धन-प्रणालीकी आधार-शिला उबाली हुई सब्ज़ी है, उसी प्रकार पत्रकारिताके क्षेत्रमें ब्रिटिशका विचित्र तथा महान् योगदान सम्पादकके नाम पत्र है।' यह बात मेरी मौलिक मान्यताके एकदम अनुकूल पड़ती है, कई दृष्टियोंसे यह सम्पादकके नाम पत्र शैली विशुद्ध रूपमें शौक़िया है, प्रस्तुत बहुत की जाती है, उपकारार्थ है और

निर्मूल है। यह पारिवारिक वातावरणकी एक निहायत आरामदेह अभिव्यक्ति प्रणाली है, जिसमें उस अनौपचारिक लेखन-शैलीका रूप देखनेको मिलता है, जो अंग्रेज़ी लेखकोंकी अपनी निजी विशेषता है''''सम्पादकके नाम पत्र लेखन-विधि अंग्रेज़ी मनोवृत्तिमें विशेष रूपसे अनुकूल पड़ती है। पीढ़ियोंके अभ्यासके कारण यह साहित्य-रूप बहुत अधिक विकसित हो गया है, और अब विभिन्न रूपों तथा आकारोंमें प्राप्य है। एक वाक्यीय नोट 'महाशय—इंग्लैण्डको गुणकी आवश्यकता है, समानताकी नहीं। आपका विश्वास भाजन'''''से लेकर गम्भीरतम वाद-विवादतक जो वर्जिन 'मेरीकी कैथोलिक धर्म व्यवस्थामें स्थिति' से सम्बन्ध हो सकता है और जो 'द स्पेक्टेटर' मे सप्ताहोंतक चर्चित रहता है। वस्तुतः अंग्रेज़ी सम्पादकके नाम पत्रोंके विषय विशेष रूपसे आस्वाद्य हैं। उनके लेखक मेरी स्टोप्ससे लॉर्ड एस्टरतक हो सकते है और विषय 'स्वेज क्राइसिस' से लेकर 'सरकसका गोला ४२ फ़ीटके व्यासका क्यों होता है' तक परिव्याप्त रहते हैं।

सामान्यतः अंग्रेज़ीके आधुनिक गद्य-साहित्यमें 'महाशय,—' पत्रोंकी कला विशेष रूपसे तथा प्रायः स्वतन्त्र कृतिपर विकसित हुई है। इस प्रसंगमे प्रसिद्ध ग्रीक विद्वान् स्व० गिल्बर्ट मरेका यह पत्र उल्लेखनीय है, जो उन्होंने छड़ीके घटते हुए प्रयोग तथा फ़ैशनके सम्बन्धमें लिखा था—

महाशय—क्या आपके पत्र-व्यवहारी एक चीनी सन्त पुरुषके अंग्रेजोंके सम्बन्धमें प्रकट किये गये उस मन्तव्यको भूल गये हैं, कि उनमेंसे भद्रसे भद्र पुरुष भी घूमनेके समय छड़ी लेकर चलते हैं ? उनका उद्देश्य क्या हो सकता है सिवा इसके कि वे निर्दोष व्यक्तियोंको पीटें ?'

आपका, इत्यादि इत्यादि

याट्सकोम्ब, बोअर्स हिल ऑक्सफोर्ड गिल्बर्ट मरे

हमारे यहाँ सम्पादकके नाम पत्रकी लेखन-कला अभीतक मुख्यतः सोद्देश्य है। ऐसे पत्रोंमें निजी स्वार्थकी भावनाकी अवश्य ही उतनी प्रमुखता नहीं रहती जितनी कि जनताकी सेवा-भावना प्रधान रहती है। सुना है कि गाजीपुर

तथा कानपुरके दो सम्भ्रान्त नागरिक अपने सम्पादकके नाम पत्रोंका संकलन पुस्तकाकार प्रकाशित करा रहे हैं। पाठकोंकी सुविधाकी दृष्टिसे उसमें वर्गीकृत विषय-सूची तथा नामानुक्रमणिका यथास्थान रहेगी। एक प्रस्तावित संकलनकी विषय-सूची देखी गई है—'अण्डोंके मूल्य'से प्रारम्भ होती है तथा 'सम्यक् ज्ञानकी सम्भावना ?' पर समाप्त होती है।

हिन्दी साहित्यके सन्दर्भमे कुछ नये लेखकोंका 'कैरियर' बनानेमें महाशय, पत्रोंने विशेष योगदान दिया है। इतिहासकार ऐसे लेखकोंको विशेष सम्मानपूर्वक देखेंगे जो किसी पत्र-विशेषमे पहिले सम्पादकके नाम पत्र लिख-लिखकर अन्ततः उस पत्र अथवा पत्रिकाके लेखक होकर ही रहे। पर जैसा मैंने कहा, यह तो महाशय,—पत्रोंकी सोद्देश्य प्रणाली है। आशा करता हूँ कि विकासकी अगली अवस्थामें सम्पादकके नाम पत्रके लिए पत्र—शैलीका अनुसरण होगा और तब इस साहित्य रूप तथा विशेष कलाका समुचित विकास हो सकेगा। हमारी हिन्दीमें पेशेवर सम्पादकके नाम पत्र लिखनेवालोंकी बड़ी कमी है। बिना उसके साहित्यकी समृद्धि घपलेमें है। इस कलाकी उन्नतिके लिए सम्पादकोंको सपारिश्रमिक पत्र छापने चाहिए ! आशा है आप सहमत होंगे।

आपका, इत्यादि इत्यादि

चस्वराचार्य

[आजके बहुतसे हिन्दी लेखक और सम्पादक अंग्रेज़ी ज्ञानको दर्शाना बड़ा बुरा समझते है। इस पत्रमे जितना अंग्रेज़ोका हवाला है, उसे यदि वे न पढ़ें तो भी मेरी बात उनकी समझमे आ जायगी ! शुभमस्तु !]

मारा : एक प्रगतिशील कवयित्री

•

केशवचन्द्र वर्मा

अगर हिन्दी भाषाका एक ढांचा बनाया जाय (जैसा प्राय हाईजीनकी किताबोंमें ढाँचा दिखाई देता है) तो दिलकी जगह मीराबाईको रखना पड़ेगा ताकि ढाँचा धड़क भी सके । मीराने हिन्दी भाषाका साहित्य लायक़ बनानेके लिए उतना ही काम किया है जितना एक माँ अपने नालायक़ बेटेके लिए करती है । आज जब हिन्दी भाषाके साहित्यकारोंका पुनः मूल्यांकन हो रहा है तब इस बातकी ज़रूरत महसूस की जाती है कि जिस प्रकार अन्य कवियोंको उनकी गद्दी दी जा रही है, मीराबाईको भी उचित बैठकी दी जाय । मीराबाईका साहित्य बहुतोंने देखा-भाला है लेकिन फिर भी आजकी

सामाजिक सापेक्ष्यता और प्रगतिशील तत्त्वोंको ध्यानमें रखते हुए किसीने भी उसपर क़लम न उठाई, सो मैं करता हूँ।

पूर्वाभास

मीराके बचपनसे ही उसके जीवनमें एक असन्तोषकी भावना जाग्रत हो गयी थी। मीरा एक सामन्तवादी वातावरणमें पलकर भी जनजीवनके प्रति आकर्षित हो गयी थी और उसे सबके साथ उठने-बैठने, खेलने-कूदने, में मजा आता था। मीराने तय कर लिया था कि वह विवाह नहीं करेगी। यहीं हमें उसके भीतरका नारी विद्रोह जो कि रूढ़िग्रस्त परम्पराओंका विरोधी था, स्पष्ट देखनेको मिलता है। वह अपनी जनवादी विचारधाराको किसी भी जड़तासे बाँधना नहीं चाहती थी। महलोंकी फ्यूडल सभ्यता उसके लिए खास अहमियत नहीं रखती थी। उसके विचार निश्चय ही भौतिक-वादी रहे होंगे।

'सन्तन' पार्टीका विकास और मीरापर प्रभाव

उन दिनों विश्वमें सन्तन आन्दोलन चल पड़ा था और भारतमें भी इस पार्टीका विकासक्रम स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ऐतिहासिक तथ्योंसे पता लगता है कि कोई 'सेंट-एन' साहब थे, जिनके नामपर इस 'सन्तन' पार्टीका अन्त-र्राष्ट्रीय आन्दोलन चल पड़ा था। जनवादी सन्तन पार्टी सदैव साम्राज्यवादी तथा सामन्तवादी शक्तियोंसे दुर्धर संघर्ष करती रही। भारतके अनेक विचारक और कवि जिनमें सूरदास, तुलसीदास और कबीरदास भी थे इसी सन्तन पार्टीकी विचारधारासे प्रभावित थे और अपनी कृतियोंमें प्रायः इस पार्टीका उल्लेख किया करते थे। राजस्थानमें सामन्तवादी रजवाड़ोंका ज़ोर था अतः सन्तन पार्टीने अपना एक ज़ोरदार नेता खड़ा करनेकी बात सोची। पार्टीका संगठन इतने आश्चर्यजनक रूपसे सफल था कि उसने उदयपुरके राणाकी महारानी मीराबाईको ही अपनी जननायिका बनाया और उसीके

नेतृत्वमें सामन्तवादी संस्कृतिका विनाश प्रारम्भ हुआ। पतनोन्मुख सामन्तवादी संस्कृतिके गिरनेमें मीराको पूरा विश्वास था अतः मीराने सन्तनपार्टीका सदस्य होना स्वीकार किया और इस तरह जनसंघर्षमें पहला मोहरा पीट लिया गया। बताते है कि हिमालयके उस पारसे कोई प्रसिद्ध योगी साधक जो इस सन्तन पार्टीके हर पहलूसे वाकिफ़ था, भारत आया था, और उसने मीराको पार्टी कामरेड बनानेमे बड़ी भारी सहायता की थी। मीरा उसे अपना गुरु मानती थी और वह जब पार्टीका संगठनकर वापस जाने लगा तो मीराने उसकी बिदाईमे सहभोजके अवसरपर जो कविता पढ़ी थी उसका पाठ हमे यों मिलता है :—

'मत जा, मत जा, मत जा जोगी
पाँव पड़ूँ मैं तेरे जोगी ।। मत जा ।।
अगर चन्दनकी चिता बनाऊँ
अपने ही हाथ जला जा
अपनी ही गैल बता जा ।। जोगी ।।'

सन्तन पार्टी होते-करते बहुत मजबूत हो गयी। ऐतिहासिक व्याख्या बताती है कि आगे भी सतनामी विद्रोह और बंकिम बाबूके आनन्दमठमें जिन विद्रोहियोंका उल्लेख मिलता है, हो सकता है कि वह सन्तन पार्टीकी परम्परामें रहे हों।

मीराका साम्राज्यवाद और सामन्तवादसे संघर्ष

मीराको स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था कि अगर उसने सन्तन पार्टीके साथ सहयोग नहीं किया तो भारतमें शीघ्र ही मुगल बादशाह अपनी साम्राज्यवादी चालोंसे इन छोटे-छोटे रजवाड़ोंको अपने वशमें कर लेगा और इस प्रकार सर्वहारा वर्गके नाशका अध्याय प्रारम्भ हो जायगा। मीराने अपने कार्यक्षेत्रको अध्यात्मवादी रंग दिया लेकिन वस्तुतः उसका 'एप्रोच' बहुत ही पदार्थवादी रहा। रूढ़िवादी परम्परा तथा नारोके सीमित क्षेत्रको छोड़-

कर वह जनताके बीच आ खड़ी हुई उसने पीड़ित जनताके दुखको पहिचाना ।

'भाई छोड़्या, बन्धु छोड़्या, छोड़्या जगसोई ।
मीरा अब लगन लागि होनी हो सो होई ।।'

यहाँ यह तथ्य कितना उभरकर सामने आता है कि मीराने सबका विरोध करके वह आन्दोलन उठाया था और उसके पीछे वह इतनी दीवानी हो गयी थी कि आगे-पीछे क्या होगा, इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं रह गई थी । मीराके सामने शासक और शासितका वर्ग-भेद बिल्कुल साफ़ था । वह यह जानती थी कि बिना वर्ग-संघर्षकी भावना पैदा किये हुए सन्तन पार्टीका भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता था । पीड़ितों और शोषितोंकी बात समझनेके लिए स्वयं घायल बनना पड़ता था । यथा—

'घायलकी गति घायल जाने कि जिन घायल होय ।'

मीराके कामरेड

जैसा कि पहले ही मै कह चुका हूँ सन्तन पार्टी उस समय सारे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र और विशेषकर भारतमे बहुत ही संगठित पार्टी थी। अनेक कवि, विचारक और कलाकार पार्टी कम्यूनसे सम्बन्धित थे । इतिहासके पन्नोंमें मीराके कॉमरेडोंका ज़िक्र कहीं नहीं मिलता क्योंकि साम्राज्यवादी इतिहास लेखकोंने प्रोलेटेरियट वर्गके इन जननायकोंका नाम मिटा देना ही उचित समझा । तो भी मीराकी रचनाओंमें ही हमें इतने स्पष्ट ढंगसे इन कॉमरेडोंका उल्लेख मिल जाता है कि इसी अन्तःसाक्ष्यके बलपर हम अपनी बात खड़ी कर सकते हैं :—

'जोगी आये जोग करनको तप करने सन्यासी ।
हरीभजनको साधू आये वृन्दावनके वासी ।।'

सन्तन पार्टीके इस देशव्यापी आन्दोलनके फलस्वरूप सभी स्थानके लोग इसमें सक्रिय सहयोग दे रहे थे । पता चला है कि जोगकरन नामक

एक पंजाबी जाट था जो इस सन्तन पार्टीका एक प्रमुख कार्यकर्ता था। हिमालय पारसे जो जोगी आये थे उनके साथ ही यह व्यक्ति आता जाता रहता था। तपकर्णे नामक एक महाराष्ट्र व्यक्ति भी सन्तन पार्टीका नायक था। तपकर्णे एक विशिष्ट जाति हुआ करती थी।★ तपकर्णेका पार्टीपर बहुत गहरा प्रभाव था। कुछ विचारकोंने जिनमें सूरदास भी एक थे तपकर्णेकी हरकतोंको नापसन्द किया था और बताते हैं कि ऊधोके रूपमें उन्होंने गोपिकाओंसे तपकर्णेका ही मजाक बनवाया था। तुलसीदास भी तपकर्णेको बहुत पसन्द नहीं करते थे फिर भी इन्होंने इसका उपहास नहीं किया। तीसरा और सबसे प्रमुख व्यक्ति था हरिभजन, जो अपने नामसे ही पता देता है कि वह उत्तर प्रदेशके गोरखपुर जिलेका रहनेवाला था। हो सकता है कि सन्तन पार्टीका सचेतक वही रहा हो क्योंकि प्रायः हर विद्वान् विचारक लेखक और कविने हरिभजनकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा है। उन दिनों वृन्दावन सन्तन पार्टीका एक महान् हेडक्वार्टर था और हरिभजन स्वयं अधिकतर वृन्दावनमें ही बसा करते थे। समकालीन साहित्यपर विचार करनेसे पता लगा है कि हरिभजनको इसी पार्टीके कामके लिए पकड़े जानेपर फाँसी हो गयी थी।

'अँखियां हरि दर्शनकी प्यासी।
नेह लगाय, त्याग गे तृण सम,
डारि गये गल फांसी॥

इस प्रकार साम्राज्यवादी शक्तियोंने मीराके कॉमरेडोंको मीरासे अलग कर दिया।

लोक-लॉजकी स्थापना

मीराने इस महान् आन्दोलनको सफल ढंगसे चलानेके लिए जो योजना

★ **दे०—भारतकी विभिन्न जातियां—(मुलगांवकर)**

बनाई उसमें पहली बात यह की कि एक लोक-लॉजकी स्थापना की। बताया जा चुका है कि सन्तन पार्टीका आन्दोलन एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन था। अत: लाज शब्द जिसे विदेशोंमें होटल या निवास स्थान कहते हैं भारतमे प्रचलित हो गया। लॉज (Lodge) की स्थापनाके लिए मीराको राणा जीको बहुत ऊँच-नीच समझाना-बुझाना पड़ा लेकिन अन्ततोगत्वा वह सफल रही। आज हमे अनेक होटलों और स्थानोंके नाम 'जनता होटल' 'जनता रेस्तरां' 'जनता क्लब' आदि मिलते है लेकिन इसकी परम्परा मीराने ही शुरू की थी जब उसने अपने लॉजका नाम लोक-लॉज रक्खा। लोक-लॉज वास्तवमे सन्तन पार्टीका पार्टी आफिस था। वही सब लोग इकट्ठा होते थे और महत्त्वपूर्ण निर्णय किये जाते थे। राणाकी दमन नीति जब चली तो सबसे पहले उसने लोक-लाजमे सरकारी ताला डलवा दिया और पार्टी आफिस छीन लिया गया। मीराने बड़ी वीरताके साथ इसका उल्लेख किया है।

'संतन संग बैठ-बैठ लोक-लाज खोई !'

राणाकी फ़ासिस्ट प्रवृत्तियाँ

शोषित जनताकी उभरती हुई आवाज़को दबा डालनेके लिए ऐसा कुछ भी नहीं बचा, जो राणाने न किया हो। मन्दिर उड़वानेके लिए तोप चलानेसे लेकर मीरापर 'स्लो प्वाइजनिंग' (क्रमश: विष देनेकी क्रिया) तकके टेकनीकका प्रयोग राणाने किया। नाजियोंकी तरह राणाकी निगाहोंमे सन्तन पार्टीका हर सदस्य एक यहूदी हो उठा। उन्हें हर तरहसे दबानेके कुचक्र रचे गये। मीराको मारनेके लिए सर्प भेजा गया, विष दिया गया। लेकिन पार्टीने अपना भीतरी जाल महलके भीतर ऐसा फैला लिया था कि मीराके पास पहुँचते-पहुँचते वह चीज़ शालिग्रामकी बटिया या शर्बत बन जाती थी। इस प्रकार दैवी सहायताकी आड़ लेकर मीराको बचाया गया और इसका प्रभाव यह भी हुआ कि राणा मीराकी पार्टीसे डरने लगा।

मीरा और गिरधर गोपाल

मीराका पार्टी-कार्य बिना गिरधर गोपालकी हरकतोंपर प्रकाश डाले हमेशा अधूरा ही रहेगा। मीराकी प्रत्येक रचनामें इस व्यक्तिका नाम इतने ढङ्गसे आया है कि हर आलोचकने अपने ढंगसे उसका मतलब समझनेकी कोशिश की है। जहाँ तक अन्त:साक्ष्य और बहि:साक्ष्यका मेल खाता है तहाँ स्पष्ट पता चलता है कि गिरधर गोपाल नामका व्यक्ति अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व रखता था और उसका भी देशव्यापी दौरा हुआ करता था। सन्तन पार्टीके अनेक लोगोंने गिरधर गोपालको जन-नायक माना है। गिरधर गोपाल हर जगह मौजूद रहता था और एक स्थानका समाचार दूसरी जगह पहुँचाया भी करता था। सम्भव है कि वह एक संवाददाता भी रहा हो। मीरा इस व्यक्तिकी प्रतिभासे बहुत अधिक प्रभावित थी और एक तरहसे यदि समझा जाय तो उसके प्रति उसकी बड़ी ममता-सी हो गयी थी। बताया जाता है कि आगे चलकर सहसा यह व्यक्ति पार्टीसे बिलकुल अलग-सा हो गया और बहुत ग़ैरज़िम्मेदार तरीक़ेसे काम करने लगा। पार्टीसे हटकर उसकी तबीयत कलाकारिताकी ओर चली गयी और वह नाटक-नौटंकीमें भाग लेने लगा। उसने अपनी पार्टीकी वेश-भूषा भी बदल दी और वह मोर-मुकुट पीताम्बर और वैजन्तीकी माला वग़ैरह पहनने लगा। उसके भीतर पतनोन्मुख सामन्तवादी जड़ताके अंश एकाएक आ बसे और वह पार्टीके दृष्टिकोणसे बिलकुल निकम्मा साबित हो गया। मीराकी ममता फिर भी उसपर बराबर बनी रही और यही कारण था कि बहुतसे सन्तन पार्टीके सदस्य मीरासे प्रसन्न नहीं रहते। राणा गिरधर गोपालको पार्टीका प्रमुख कार्यकर्ता मानता ही था इसलिए एकबार उसने गिरधर गोपालका मोर-मुकुट छिनवा लिया और महलमें जाकर सो गया—

'जाके सिर मोर मुकुट—मेरो पति सोई।'

अर्थात्—

जिसके सिरसे मुकुट (लेकर) मेरा पति सो गया (है) मीरा फिर भी बराबर यही कहती रही—

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।
तात मात भ्रात बन्धु अपना न कोई ॥'

गिरधर गोपालके प्रति मीराका यह दृष्टिकोण कभी भी सफल न हो सका और मीराके लाख प्रयत्न करनेपर भी जिम्मेदार तरीक़ेसे गिरधर-गोपाल पार्टीका काम दुबारा न चला सका। गिरधर गोपाल वृन्दावन जाकर रहने लगा और मीराको भी अपने अन्तिम दिनोंमें उसीके हित वृन्दावन जाना पड़ा। यूँ मीरामे व्यक्तिपरक तत्त्व इतना नही था लेकिन सभी नियमोंमे अपवाद सदा होते है।

मन्दिर मूवमेंट और सशस्त्र क्रान्ति

मीराको ऐसा लगा कि उसका आन्दोलन अब अधिक दिन इन साम्राज्य-वादी फौलादी हाथोंसे बचकर नही निकल पायेगा। मीराके कई कॉमरेड अलग हो गये थे। तपकर्णने तो एक अलग पार्टी बनानेकी भी कोशिश की थी। गिरधर गोपालका मन नौटंकीमें लग गया था। 'लोक लाज' पर सरकारी ताला पड़ चुका था। ऐसी हालतमें मीराके सामने बिल्कुल अन्धकार था। लेकिन उसने अपनी हिम्मत नहीं हारी। उसने भारतमें मंदिर मूवमेंट प्रारम्भ किया। मन्दिरके बहुतसे अर्थ आलोचकोंने किये है लेकिन वस्तुतः वह मन्दिर एक भवनका, एक संस्थाका प्रतीक था। भारतकी जनताको यह मन्दिर मूवमेंट बहुत सरलतासे ग्राह्य हुआ। मीराकी सूझ बड़ी पैनी थी और उसने सोच लिया था कि इस मूवमेंटसे वह आसानीके साथ सभी कार्यकर्ताओं और विचारकोंका सहयोग प्राप्त कर सकेगी। सो वही हुआ। भारतके हर भागमें इस मूवमेंटको प्रोत्साहन मिला। सन्तन पार्टीके सदस्य एक बार पुनः सक्रिय हो उठे। साम्राज्यवादियोंकी ओरसे

ऐसी चाल चली जा रही थी कि उस समय धार्मिक सहिष्णुताका प्रचार किया जा रहा था। लेनिनकी जीवनी लेखिका प्रसिद्ध जर्मन क्लेरा ज़ेटकिन-ने लिखा है कि लेनिनका भी मत था कि पार्टीका काम विचारकों और लेखकोंके बीचमें छिपकर करना चाहिए। (जिसके अनुसार शान्ति सम्मे-लनका कार्यक्रम चल रहा है।) मीराने भी वही 'टैक्टिक्स' अख्तियार किया। इस मन्दिर मूवमेंटके द्वारा मीराने सशस्त्र क्रान्ति करके प्रोलेटेरि-यट रोज्य क़ायम करना चाहा। सन्तन पार्टीने अण्डरग्राउण्ड काम करना शुरू कर दिया। इसके लिए सन्तन पार्टीने बहुत ही आधुनिक टेकनीक इस्तेमाल की। पार्टीने रणछोड़जीकी उपासना शुरू की और विष्णुके अनेक आयुधोंकी अर्चना मन्दिरमें एकत्र होकर करना प्रारम्भ कर दिया। घण्टे ऐसे बनवाये गये जैसे स्कूलोंमे बजानेके लिए रक्खे जाते हैं और उन्हें पीटने-के लिए लोहेकी डेढ़ मनकी गदाएँ बनवाई गयी थीं। (मेरा विश्वास है कि आगेके इतिहासकार इस तथ्यको प्रमाणित कर देंगे।) लम्बी-लम्बी पाँच फीटकी बाँसुरियाँ बनवाई गयीं जो बाँसुरीका काम कम, लाठीका काम अधिक देती थीं। झाँझ और करताल भी लोहे और पीतलके बनवाये गये जो वज़नमें इतने भारी थे कि अगर किसीके सिरपर पड़ जाते तो चकनाचूर क़र देते। मीराने इस मूवमेंटका संगठन इतना अच्छा किया था कि लोग प्राय: संन्ध्या समय इकट्ठा हो जाया करते थे और मीरा आसानीसे फासिस्ट विरोधी नीतियोंकी प्रतिपादन किया करती थी। यूँ ये लोग आधी रातको अपने पार्टी लीडरसे मिलकर सलाह-मशविरा भी किया करते थे—**'आधी रात प्रभु दर्शन दीन्हों प्रेम नदीके तीरा।'**

इसके पहले कि इस आन्दोलनकी एक विशाल प्रतिक्रिया हो सकती राणाके फ़ासिस्ट गुर्गोंने इसका पता लगा लिया क्योंकि सन्तन पार्टीके कुछ लोग फूट गये थे और नतीजा यह हुआ कि सन्तन पार्टीके सभी आयुध जो पूजाके काममें रक्खे गये थे जब्त कर लिये गये। खुफ़िया पुलिस हाथ धोकर पीछे पड़ गयी। सन्तन पार्टीका यह आन्दोलन भी विफल हुआ।

मीरा-क्रान्तिकी मूर्ति और जननायिका

मीराके प्रयत्नोंका आकलन करनेवालोंने यही समझा कि मीराके आन्दोलन विफल रहे लेकिन बात ऐसी नही है। भले ही दुर्धर पाशविक फासिस्ट शक्तियोंने साम्राज्यवादियोंसे हाथ मिलाकर जनताकी उठती हुई वाणीको उस समय दबा दिया हो लेकिन वह आवाज़ मर नहीं सकी। मीराकी वाणी जनवाणी बनी। मीरा क्रान्तिकी देवी बनी। मीरापर लांछन लगाया जाता रहा है कि वह प्रतिक्रियावादी आध्यात्मिक शक्तियोंको प्रोत्साहित करती रही लेकिन वह ठोस भौतिक उपादानोंको लेकर जनताको आकर्षित करती रही। वह रूढ़िवादी चिन्तनको तोड़कर पदार्थवादी सर्वहारा वर्गकी भावनाओंको सामने लायी। मीराने बुर्जुआ मनोवृत्तिको नहीं पनपने दिया अपितु उसने नारी-विद्रोह, सामाजिक क्रान्ति और प्रजातान्त्रिक ढाँचेको खड़ा करनेकी पूरी कोशिश की। फासिस्ट एवं सामन्तवादी शक्तियोंको जो अपने वैभवसे जनताको ख़रीदना चाहते थे मुँहकी खानी पड़ी। उसने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शनका मूल रूप अपनी कार्यनीतिके रूपमे स्वीकार किया था। सामाजिक परिस्थितियोंका जैसा डटकर मुकाबला मीराने किया था, वह इतिहास, किसी भी प्रगतिशील लेखकके लिए लेनिनके भाषणोंसे बड़ी धरोहर बन सकता है।